में 'ताल' से नियंत्रित होकर संस्कृत में वर्णवृत्त के रूप में पहुँचा है।'[1]

शृंगार-युग में रचित सभी काव्य संगीतात्मकता से ओत प्रोत हैं। इस काल के कवियों ने अपने काव्य के लिए दो प्रकार के छंद चुने। एक तो वे, जो छंद-शास्त्र के अनुसार मात्राओं तथा वर्णों में बाँधे गए हैं, परन्तु संगीतात्मक हैं। दूसरे प्रकार के छंद वे हैं, जो मात्राओं में नहीं बँधे हैं, परन्तु गेय हैं, अतः ताल बद्ध हैं। संगीत-काव्यकारों के लिए तो काव्य रचना का उद्देश्य ही उसको गेय बनाना था, अतः केवल ऐसे छंदों में रचना की गई है, जिनकी गति और यति में संगीत और नृत्य की मधुरता, ताल और लय स्वाभाविक रूप से निहित है। संगीत काव्य में प्रयुक्त छंद अधिकतर दोहा, सवैया तथा घनाक्षरी अथवा मनहरण हैं, जिसे सामान्य रूप से कवित्त कहकर पुकारते हैं। गेय छंद की गणना मात्रिक और वर्णिक किसी भी छंद में नहीं की जा सकती, परन्तु गति तथा यति दोनों ही का समावेश होने के कारण उन्हें गेय छंद कहा गया है। ऐसे छंदों में कुछ उर्दू में प्रचलित छंदों को लिया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत की शैलियों के आधार पर कुछ छंदों का निर्माण कर लिया गया है। इन छंदों में रेखता, गज़ल, ध्रुवपद, धमार, होली तथा रास आदि का प्रयोग हुआ है।

दोहा

पिंगल शास्त्र में वर्णित छंदों में सर्वाधिक प्रयोग दोहे का है। दोहा छंद की संगीतात्मकता, उसके अत्यधिक प्रचार और उसकी प्राचीनता से ही सिद्ध है। श्री रघुनंदन शास्त्री ने 'दोहा' की उत्पत्ति वैदिक छंद अनुष्टुप् से मानी है। उन्होंने बताया है कि 'अनुष्टुप वैदिक स्वरों से नियंत्रित न होकर ताल संगीत के अनुशासन में बद्ध है। गाया जाने के कारण इसे गाथा कहते हैं। यही गाथा छंद पीछे काल मात्रा से नियंत्रित होकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में 'आर्या' कहलाया है। हिंदी में पहुँचकर यही दोहा बन गया है।'[2] इस दृष्टि से दोहे की गेयात्मकता स्वाभाविक है। आदि काल के 'रासो' में भी गाया जाने के लिए दोहे को चुना गया। उपदेश देने वाले संतों और भक्तों ने भी जब गाकर अपनी वाणी जनता के हृदय तक पहुँचानी चाही, तो दोहे का आश्रय लिया।

संगीत के क्षेत्र में दोहे का एक अलग स्थान है। दोहे की यति और गति को दृष्टि में रखने पर यह पता चलता है कि दोहे की प्रकृति में गंभीरता है। चंचल गायन अथवा द्रुत लय के गीत के पश्चात् यदि गायक विलंपित में गाना चाहता है, तो दोहे का प्रयोग करता है। गीत को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए भी बीच बीच मे दोहे का प्रयोग होता है। विशेष रूप से कीर्त्तन और भजन की गायन शैली के अनुसार एक पंक्ति को बहुत अधिक तेज़ लय तक बढ़ाते जाना, और उसी में विभोर होकर थोड़ी देर तक ताल बद्ध गाते रहना, उसके पश्चात् लय एकदम विलम्पित करके ताल छोड़कर गम्भीर पद कहना प्रचलित रहा है। ऐसी धीमी लय में गाने के उपयुक्त छंद दोहा ही है। ऐसा प्रयोग अधिकतर भक्त

---

१. हिंदी छंद-प्रकाश रघुनंदन शास्त्री, पृ० ६।
२. वही।

कवियों के अनुकूल था। कुछ देर कीर्तन करने के पश्चात् बीच बीच में इष्ट की विशेषता बताने के लिए या कोई नीति-धर्मोपदेश देने के लिए दोहा गाया जाता था। ऐसा ही प्रयोग शृंगार युग में भी पाया जाता है। कृष्ण भक्ति के गीतों में बीच बीच में दोहों का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण के लिए—

'लाडलो बनो जी म्हारो नवल बनो
हूं नौधीलो बनो जी म्हारो नवल बनो।
नगरालो बनो जी म्हारो नवल बनो।
रूपालो बनो जी म्हारो नवल बनो।

दोहा— रूप उमग सन्यो रहे माहन प्रीत धनाह।
उपमा को अटकत फिरै लोभी नवल बनाह।'[1]

उपर्युक्त गीत में 'लाडलो बनो जी म्हारो नवल बनो' आदि पंक्तियाँ द्रुत लय म गाई जाएँगी। ताल बद्ध गीत का आनद लेने के पश्चात गायक विलंबित लय में दोहा गाता है। फिर द्रुत लय की स्थायी पर लौट आता है। दोहा गाते समय ताल बन्द कर दी जाती है। छन्द शास्त्र के लक्षणानुसार तेरह, ग्यारह मात्राओं म ही गाया जाता है। ताल म गाने के लिए चौबीस मात्राओं को कहरवा म गाया जाता है। कहरवा आठ मात्राओं का होता है। उसकी तीन आवृत्तियों में एक पंक्ति गाई जाती है। चौबीस मात्राओं का आलाप से बढ़ाकर बत्तीस मात्राएँ कर लेने का भी प्रचलन रहा है। ऐसी दशा म तीन ताल में भी गाया जा सकता है।

गीत में दोहे का महत्त्व इतना अधिक है कि गीत तो कवि के मौलिक होते हैं, परन्तु दोहे प्रसिद्ध संगीतज्ञों के गाए जाते हैं, इसका कारण स्पष्ट ही है कि उस समय गीत में भाव की अभिव्यंजना अधिक महत्त्वपूर्ण थी, फलस्वरूप जवानसिंह जी की रचनाओं में नागरी दास, मुबारक अथवा हरिदास के दोहे लिए गए हैं। अधिकतर स्थायी, कवि की होती है और अन्तरा के रूप म दोहे अन्य कवि के। उदाहरणार्थ,

'धमार तामैं अस्थाई श्री जवान सिंह जी कृत अन्तरा का दोहा
श्री नागर दास जी कृत मजलस मन्डन का।
अहो छवि देखिये हो चलो सुन्दर स्याम सुजान।

दोहा— भीने विमल कपोल पर लगी छूट लट साफ
पुसनवीस मुनसी मदन लिख्यो काच पर काफ।

— —

नैन कथक वाचन कथा मोहन सैन विलोक
पीवन श्रोता नागरी इह रस इकटक ओक।'[2]

---

१ जवानसिंह जी कृत 'रस-तरंग' मुनि कांति सागर,संग्रह, उदयपुर।
२. वही।

उपर्युक्त गीत में पहली अन्तरा के मुबारिक में दोहे का रूपांतर किया हुआ दोहा[1] और दूसरा नागरी दास का है।

इसके अतिरिक्त दोहे में फ़ारसी के शेरों के समान ऐसी क्षमता है, जो थोड़े स्थान में अधिक उक्तियों को अभिव्यक्त कर सकता है, अतः इस चामत्कारिक युग में उसका बड़ा योग दान रहा। दोहे का सर्वाधिक प्रयोग 'रास' के गीतों में रहा।

इन कवियों ने अन्य रीतिकालीन कवियों के समान लक्षण लिखने के लिए सदैव ही दोहे का प्रयोग किया है। अतएव, शास्त्रीय ग्रन्थों में दोहे का प्रयोग अधिक है। उदाहरण के लिए—

'राम करी में मिलत है गौड अड़ानो जाय
ताहि कहत हैं गुन कली गुनी कलावत गाय।'[2]
+ +
'हाथ पिता है ताल को, माइन देपी जाइ।
मिलि संयोग वाज्यो शवद, ताल गयो कर आइ।'[3]
+ +
'प्रीतम चाल्या है सपी ललिता करै विलाप
हिरदा ऊपर हीडतों भो विरहन को हार।'[4]
+ +
'आदि नाद अनहद भयौं ताते उपज्यो वेद
पुनि पायो वा वेद तै सकल सृष्टि कौं भेद।'[5]
+ +
'वीर और उत्साह मैं रौद्र भाव रस आनि
पुरुप करै नृत्यहि वहै, तांडव नृत्यहि जानि।'[6]

कवित्त

दोहे के पश्चात् इस काल में कवित्त सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। छंद शास्त्र की दृष्टि से कवित्त और मुक्तक दंडक एक ही माने गए हैं।[7] मुक्तक दंडकों के तीन भेद मुख्य रूप से किए गए हैं। इकतीस अक्षरों के, वत्तीस अक्षरों के तथा तैंतीस अक्षरों के मुक्तक दंडक।

---

१. "अलक मुवारक तिय वदन लटकि परी अति साफ़।
पुस नवीस मुनसी मदन लिख्यों काच पर काफ़।"
अलक-शतक, मुवारक, मिश्रवंधु-विनोद, भाग एक प्रथम संस्करण, पृ० ३९८।
२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. राग-माला, कवि उस्तत, श्री अभय जैन ग्रंथालय, वीकानेर।
४. राग माला, सागर कवि, श्री अभय जैन ग्रंथालय, वीकानेर।
५. होय हुलास, म्यूजियम, अलवर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
६. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. हिंदी-छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० १०३।

इनमें भी प्रभेद करते समय इकतीस अक्षरो के मुक्तक दडको के तीन प्रकार हो जाते है। एक, घनाक्षरी या मनहरण—इनके प्रत्येक पाद मे इकतीस वर्ण होत हैं। अन्तिम वर्ण गुरु होता है।

दो जनहरण—इसके प्रत्येक पाद मे इकतीस वर्ण होने हैं, जिनमे तीस लघु वर्ण और अतिम वर्ण गुरु होने का नियम है।

३, कलाधर—प्रत्येक पाद मे इकतीस वर्ण होते हैं, जो क्रमश गुरु लघु के पद्रह युग्मका मे रखे जाते हैं। इकतीसवां वर्ण गुरु होता है।

इसी प्रकार बत्तीस अक्षरो के मुक्तक दडक मे प्रभद रूप घनाक्षरी, जलहरण, डमरू, कृपाण, विजया और तेतीस अक्षरो के मुक्तक मे देवघनाक्षरी, प्रभेद माना गया है।'

यहाँ पर रास के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन न करके केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि माधुर्य भाव की भक्ति म रस का चरम पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाला 'रास' नृत्य था। अत, उस दिव्य आनद को प्रदान करने वाले नृत्य के साथ संगीत का माध्यम दोहा ही क्यों चुना गया, इस का सबसे बडा कारण यह ज्ञात होता है कि रास म जिस रस व्याप्ति की प्रारभ से अन्त तक आवश्यकता होती है, वही दोहो के निरतर गाने से प्राप्त हो जाती है, यों दूसरे शब्दो म, जिसे साहित्य में 'प्रबधात्मकता' कहा जाता है, वही 'प्रबध-गीतात्मकता' इस नृत्य मे अपक्षित है, जिसकी पूर्ति दोहा करता है।

रास नृत्य करते समय नर्तक और नर्तकी धीमी लय से प्रारभ करके निरन्तर ज्यो ज्यो रस मे डूबते जाते हैं त्यो त्यो लय भी बढाते जाते हैं। नृत्य कला के दृष्टिकोण से इसी बढती हुई गति के साथ गोपियाँ कृष्ण से अधिकतर काल्पनिक सामीप्य का अनुभव करती चली जाती हैं, इसी अनुभूति के साथ ही कृष्ण का स्वरूप उसका सौंदर्य, उनका प्रेम उद्दीप्त होता चला जाता है। उनके अग सचालन, गति, अभिनय और रस की अभिव्यक्ति मे नवीन भावों और हावो का समावेश होता चला जाता है, जिसकी पूर्ति दोहे के समान सरल और स्वाभाविक छद ही कर सकता है, तभी सूरदास, नददास तथा अन्य कृष्ण भक्तो ने भी रास मे गीत के लिए सदैव 'दोहा' ही अपनाया है और सभी रास गीतों मे एक ही प्रकार की तन्मयता दिखाई देती है। कृष्ण से तादात्म्य करते ही एक अलौकिक आनद मे नर्तक डूब जाता है और तब साधक साध्य और साधन सभी का एक ही स्वर हो जाता है, जिसका प्रमाण प्रत्येक रास मे दिए गए मृदग के बोल हैं, जिनमे गोपी के पैरो से निकलने वाले मृदग के बोल स्वय कवि गाने लगता है।

> 'सरद उजारी रैनि तामधि रच्यों है रास मडल
> पियारी चले ठुम ठुम चाल है।
> ता थेई ता थेई थेई तत तत थेई ता ता थेई झनन कनन
> बाजे झम झम ताल है।
> धिधिकट धिधिकट धिकना ता न थुंग थुंग धर धर

---

१. हिन्दी-छंद प्रकाश, रघुनदन शास्त्री, पृ० १०३।

तन न न जाल है ।
ताडिगिडि तथुंडिगिडि था गिडि गिडि ता ता कु ता उघटत
गोपी संग नाचत गुपाल हैं ।"[1]

संगीत-काव्य में राग रागिनियों के उदाहरण स्वरूप लिखे गए छंदों में लगभग हर स्थान पर कवित्त अथवा मुक्तक दंडक का आश्रय लिया गया है, अतः लगभग सभी प्रकार के मुक्तकों का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। अन्तिम वर्णों के लघु और गुरु वर्णो के वैभिन्न्य से अधिकतर घनाक्षरी का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण के लिए, 'राग रत्नाकर' में देसकार का स्वरूप वर्णन करते हुए कवि राधाकृष्ण कहते हैं:—

'कंचन सो गात तामैं चंदन चरचि राख्यो,
फैल्यो है प्रकाश मुप चंद की उजारी को ।
कारे सटकारे अति सोभित सुदेस केस
मोतिन की माल भाल व्यंदा छवि भारी को ।
प्रीतम कै संगि रति रंग में अनंग भरी
दूनी दुति अंग अंग फूलि गयो प्यारी को ।
कंचन कलस कुच केशरि की क्यारी माझि
देख्यो गुलजारी यह रूप दे सकारी को ।'[2]

यहाँ इकतीस वर्णों का कवित्त है, सोलह और पंद्रह पर यति है और अन्तिम दो अक्षर गुरु हैं, अतः घनाक्षरी छंद है।

रागिनियों के उदाहरण अधिकतर इसी छंद में दिए गए हैं।

'भावै भेद करि हरि वल्लभ यो हिय हरि
पंभावती पिन पिन भावै सव जन कौं ।
सुंदर सरस तन जोवन वनाउ वनी
पूजति विरंचि को सजति मोद मन को ।
कंठ सुर मृदु कल कोकिल ते कमनीय, तान
गान मे प्रवीन जानै गुन जन कौं ।
मीठें मीठें वैन चित चैन दैन कहि, कछू
मुस्क्याइ उपजावत मदन कौं ।'[3]

पंभावती के इस उदाहरण में भी इकतीस अक्षर हैं, सोलह और पंद्रह पर यति है, अतः घनाक्षरी छंद है, परंतु अंत में लघु गुरु है। अन्तिम वर्णों में लघु गुरु है। अन्तिम वर्णों में लघु गुरु के भिन्न प्रयोगों से भी छंद में विचित्रता आ जाती है। कवि भोलानाथ का राग 'परज' का एक उदाहरण है—

---

१. संगीत-पच्चीसी, गहर गुपाल कृत, याज्ञिक संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२. राधाकृष्ण कृत राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. संगीत दर्पण, हरि वल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

'आनन अनूप रूप राशि दोऊ भोलानाथ,
विद्रुम से ओठ हास बीजुरी सो सोहिये।
खंजन निवारियत वारिज विसारियत,
मीन मृग तारियत हेरि हंसि जोइये।
मोरन चकोरन के मान मद गारियत,
वारियत देखि तनु काम मन मोहिये।
भरि भरि अगनि विनोद मिलि लेत,
हरषित गाननि अनत गति पोहिये।'[1]

इन मुक्तकों में कहीं कहीं उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार दोष दिखाई देता है, परन्तु उसका कारण इनकी गीतात्मकता है। गाने में कहीं स्वर का विस्तार और कहीं लोप स्वाभाविक रूप में आ जाता है।

सवैया

सवैया छंद भी शृंगार युगीन कवियों का प्रिय छंद रहा है। इस छंद की गति और यति भी संगीतात्मकता लिए है, अतः राग और रागिनियों के स्वरूप वर्णन के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया। 'आकृति से लेकर उत्कृति जाति तक के (बाईस अक्षर पादों से लेकर छब्बीस अक्षर पादों तक के) बड़े छंदों को प्रायः सवैया कहते हैं।'[2] यों तो सवैया छंद को वर्णों की गिनती के आधार पर भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त कर दिया गया है, और रूप भेद के परिणाम स्वरूप लगभग अड़तालीस सवैयों का उल्लेख किया गया है,[3] परन्तु संगीत-काव्यकारों ने उनमें से कुछ का प्रयोग किया है।

इस काव्य में मदिरा सवैया सर्वाधिक प्रचलित है, जिसके 'प्रत्येक पाद में सात भगण और अन्त में दो गुरु अक्षर रखे जाते हैं।'[4]

'नील सरोज की पांति लसै, ललना जब ही दृग कोर चहै।
ताके मनोज के बान खिंचौं जु लगैं तिन कैं हिय पीर गहै।
ढक्यो दृग बुद्धि समानहिं सौं उर छेदति नैकु न बार लहै।
हरि वल्लभ और कहा लौं कहौं मुनि के मन में नहिं धीर रहै।'[5]

दुर्मिल सवैया में आठ सगण होते हैं।[6] इसका प्रयोग भी अधिकाशतया किया गया है।

'पट लाल प्रवाल की जोति जगै तन कुंदन की दुति दूरि करी।
गज मोतिन माल विसाल गरैं अंगिया उर राजत रंग हरी।

---

१. पद-संग्रह, भोला नाथ, पुरातत्व मंदिर जोधपुर।
२ हिन्दी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० ६२।
३. वही, पृ० ६६।
४. हिंदी छंद प्रकाश रघुनंदन शास्त्री।
५ संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
६. काव्य कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृतीय भाग चतुर्थ आवृत्ति पृ० २६३।

तिय बैठि विलोकत वालम को मग सुंदर सेज विछाय धरी।
यह सोहनि नारी सबै मन मोहनि सोहनि सूरति मैन भरी।"[1]

मत्तगयंद सवैया में सात भगण तथा अंत में दो गुरु होते हैं।[2] संगीतात्मक होने के कारण यह भी एक प्रचलित सवैया है।

'बोलत कीर सुकोकिल वानी हरयारी लता नित ही सुप साजै।
नित वसंत रहै छवि सो सुनि रंगहि अंग धर्यो रति राजै।
सोभित स्फटिक शृंग शिला नग रूप वस्यो श्री नगवर काजै।
नीलम को रचि हार मनो गिर राजत रे जमुना छवि छाजै।"[3]

इस प्रकार से लगभग सभी प्रकार के सवैया प्राप्त हो सकते हैं। गाए जाने के कारण सवैयों में भी छंद शास्त्र के नियमों के अनुसार कहीं कहीं दोष आ गया है।

संगीत-काव्य में कुछ ऐसे प्रयोग किए गए, जिनमें वे रचनाएँ, जो अभी तक संगीत में 'ताल' के नाम से प्रसिद्ध थीं, अब साहित्यिक छंद बनकर प्रस्तुत हुईं। साहित्य और संगीत का ऐसा सुन्दर समन्वय केवल संगीत-काव्य में ही प्राप्त है। इन छंदों को यहाँ 'गेय छंद' कहा गया है, क्योंकि इनका सौन्दर्य गति के अनुसार पठन-पाठन में नहीं, वरन् रागानुसार गायन करने में है। इन छंदों को दो भागों में बांटा गया है।

कुछ छंद इस प्रकार के हैं, जो उर्दू के छंदों से लिए गए हैं। उर्दू में छंद विभाजन वर्ण्य विषय के अथवा शैली के आधार पर होता है, मात्राओं तथा वर्णों के अनुसार नहीं। जैसे गजल, स्त्री से बात करने के ढंग पर की गई शृंगार रचना को कहते हैं।[4] किसी धार्मिक या राष्ट्रीय नेता, बादशाह या किसी महान पुरुष की प्रशंसा को 'कसीदा' कहते हैं।[5] स्त्रियों के पारिवारिक जीवन और सामाजिक बन्धनों का वर्णन करने के लिए 'रेपती' का प्रयोग होता है,[6] आदि। इनमें से गजल और रेपती छंद इन शृंगार-प्रिय संगीत-काव्यकारों के विषयानुकूल उपयुक्त थे, अतः इन्हीं को हिंदी में ले लिया गया है।

दूसरे प्रकार के गेय छंद वे हैं, जो संगीत में प्रचलित गायन शैलियों के आधार पर विशेष ताल (मात्राओं) में गाए जाने के कारण छंद के समान प्रयुक्त हुए। इनमें ध्रुवपद, धमार, होली तथा रास का नाम लिया जा सकता है।

रेपता

गेय छंदों में उर्दू से लिए गए छंद रेपता तथा गजल अधिक प्रचलित हैं। लगभग

---

१. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. भासत दो गुरु को रख के रचते कवि मत्तगयंद सवैया, हिंदी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री पृ० ६६।
३. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. उर्दू साहित्य का इतिहास, सैयद एहतिशाम हुसैन।
५. वही।
६. वही।

सभी राजा-कवियों ने तथा अन्य कृष्ण लीला के संगीतकारों ने इनको अधिक स्थान दिया।

स्त्रियों की भाषा में, स्त्रियों ही के सम्बन्ध में जो कविताएँ लिखी गई हैं, उनको 'रेखती' कहते हैं। उनमें स्त्रियों के पारिवारिक जीवन और सामाजिक बन्धनों का वर्णन होता है। कहीं कहीं इसका रूप अश्लील भी हो गया है। इसका रूप अधिकतर गजल का होता है यद्यपि और रूपों में भी लिखी जाती है।" 'रेख्ता' उर्दू का ही नाम है अतः प्रारंभ में उर्दू में लिखा गया शेर और गज़ल 'रेख्ता शेर' और 'रेख्ता गजल' कहलाया। धीरे धीरे प्रयोग में गजल या शेर के स्थान पर 'रेख्ता' का प्रयोग होने लगा। रेख्ता' का फारसी में अर्थ होता है—'ढालना',[१] परन्तु कालांतर में जब 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग गज़ल और शेर के अर्थ में होने लगा, तो गज़ल के विषय में भी कुछ जान लेना आवश्यक है।

गज़ल का वर्ण्य विषय प्रेम होता है। पुरुष का स्त्री से प्रेम प्रदर्शन, प्रियतमा के रूप में वर्णन, उससे मान आदि करना, उसके विरह में अपनी भावनाओं को व्यक्त करना ही, गजल का विषय है। कृष्ण-राधा का प्रेम व्यक्त करने के लिए 'रेख्ता' या 'गजल' संगीत-काव्यकारों के लिए उपयुक्त छंद था। गजल में तीन शेरों से कम और पच्चीस से अधिक नहीं होने चाहिएँ। लगभग सभी ऐसे कवियों ने जिन्होंने उदाहरण ग्रन्थ लिखे हैं, और गीत संग्रह, गाने के लिए लिखे हैं, उन सभी ने कुछ 'रेख्ते' अवश्य लिखे हैं।
उदाहरण के लिए, महाराज प्रताप सिंह का रेख्ता —

> 'जिसके नहीं लगी है वह चश्म चोट कारी।
> हैवान क्या करेगा वह मद के मे यारी।
> इस्तेमाल इश्क का जहान बीच होवै।
> दीन औ कुफर की बदबोई दिल से धोवै।
> महबूब के मिहर का हर रोज रहे दिवाना।
> आसान कुछ न जानो यह आसकी का बाना।
> गोविंद चंद 'ब्रजनिधि' की अर्ज सुनो प्यारे।
> टुक छवि भरी नजर करि सब दुख हरो हमारे।"[२]

गजल

गजल का प्रयोग हिन्दी में, फ़ारसी और उर्दू कविता के प्रभाव के कारण हुआ, अतः इस छंद का नियम वही रखा गया, जो उर्दू कविता में था। इसमें भी कम से कम तीन शेर रखे जाते हैं। अधिक से अधिक पच्चीस शेरों को जोड़ कर गजल बनाई जाती है। गजल की विशेषता उसके वर्ण और मात्राओं के प्रयोग में नहीं है, वरन् उसके वर्ण्य विषय में है। गज़ल का वर्ण्य विषय प्रेम होना चाहिए। पुरुष स्त्री से प्रेम प्रदर्शित करता है। 'गज़ल

---

१. उर्दू साहित्य का इतिहास, सैयद एहतिशाम हुसैन, पृ० ३१७।
२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, भूमिका।
३. ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६६।

अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—'स्त्री से बात करना'। गज़ल में अधिकतर आंतरिक भावों का उल्लेख होता है। प्रेमिका की सुन्दरता का वर्णन भी इसमें होता है। हर शेर अलग अलग पूर्ण अर्थ रखता है और पूरी गज़ल में आदि से अन्त तक एक ही विचार भी हो सकता है। हर शेर में पहिले शेर के तुक की पाबन्दी की जाती है।'[1]

इस दृष्टि से शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष पूर्ण रूप से इसमें वर्णित रहते हैं। पुरुष और स्त्री का प्रयोग लौकिक से अधिक अलौकिक अर्थ के लिए किया जाता है।

'गज़ल' बहुत अधिक प्रचलित छंद रहा, अतः इसके दो रूप देखने में आते हैं। एक साहित्यिक तथा दूसरा लोक-व्याप्त। साहित्यिक रूप के अनुसार उर्दू के ही माप-दण्ड पर छंद लिखा गया। इसका प्रयोग अधिकतर उन कवियों ने किया, जिन्होंने गेय काव्य लिखा। इस काव्य का वर्णन उदाहरण काव्य के नाम से किया गया है। यह छंद ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिए बड़ा अनुकूल था, अतः हिन्दी भक्त कवियों ने भी इसे अपनाया। संगीत-काव्यकारों की रचनाएँ भी अधिकतर कृष्ण प्रेम में विभोर हो कर गाए जाने के लिए ही लिखी जाती थीं, अतः ऐसे कवियों के काव्य में इस छंद का सर्वत्र प्रयोग प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, प्रतापसिंह जी महाराज, जवान सिंह जी तथा मान सिंह जी आदि की रचनाओं में गजल का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

'शादिए मर्ज हुआ यार का जो मुपड़ा देखा
जाफरा यार को हंस हंस के यह मरता देखा।
हुआ दिल बेखबर मुझ दाश दीदे जर्व ज्यो आई।
जुदाई यार से गाफिल पुदाई कहर सरमाई।
फिरा के यार में हरदम तसवुर उसका रहता है।
देषे बिन सांवला दिलवर वो नगवर याद आता है।'[2]

* * *

'सलौने स्याम प्यारे, क्योंन आवों।
दरस प्यासी मरे तिनको जिवावों।
कहां हो जू, कहां हो जू कहां हौं' आदि।[3]

गज़ल का दूसरा रूप प्रचलित है, उसे हम लोक प्रचलित रूप इसलिए कह सकते हैं कि उसका छंदात्मक स्वरूप इससे भिन्न है। सर्व साधारण में गाए जाने वाले 'आल्हा' छंद के समान उसकी गति है। उसका अपना रूप है, परन्तु उसे एक विशेष ढंग पर गाए जाने के कारण गज़ल का नाम दे दिया गया है। लोकप्रियता के कारण यह छंद गांवों में गायन का एक प्रकार बनकर प्रचलित हो गया। ग्रामीण-तत्त्व लिए, इस गज़ल छंद में उर्दू काव्य की गज़ल से न तो बाह्य रूप में कोई साम्य है और न

१. उर्दू साहित्य का इतिहास, एहतिशाम हुसैन, पृ० ३५५।
२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वियोग बोली गजल, नंददास, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

वर्ण्य विषय मे हो। इसमें आठ वर्णों की एक पंक्ति होती है, जिसमें चार चार वर्णों पर यति होती है। गाया जाने के कारण यति के लिए चार वर्णों से अधिक चार मात्राओं पर ध्यान दिया जाता है। तीसरे वर्ण पर बल दिया जाता है, अत. यदि पाँच या छ वर्ण भी प्रस्तुत हो गए या उन वर्णों की मात्राएँ छद शास्त्र की दृष्टि से चार से अधिक भी हो जाती हैं, तो भी गायन कला की दृष्टि से ताल की चार मात्राओं मे उन वर्णों को गाया जा सकता है।

इसमे गाँव, नगर आदि का वर्णन अधिकतर हुआ है। उदाहरण के लिए, अर्जुन कवि की 'दुगोली गाँव री गजल', कल्याण कवि कृत 'गिरनार गज़ल', सेतल कवि की 'चित्तौड़ गज़ल', 'उदयपुर की गज़ल' और मोज कवि की 'उदयपुर गज़ल' आदि।

लगभग सभी गज़लो म नगर का वर्णन किया गया है। यहाँ गज़ल शब्द, छद विशेष के लिए प्रयुक्त है।

'गढ चीतौड है बका
कि मानु समद मे लका
कि बेडलपुर तल बहतो
कि अरु गभीर भी रहतो
कि अल्ला देत अल्लादीन वाधो
कि पुल बडी परवीन
गैंबी पीर है गाजी
कि अकबर अवली या राजी।' आदि[1]

– – –

'कूवा खूब मजेदार
पाणी भरत है नर नार
मिदर देख मन मोहे
क मूरत मोहनी सोहै
क स्वामी करत है सेवा
क मालक मेल सी मेवा
क रहना राज का माणी
क मीठी बालना वाणी
क मारग मोकला भावै
क मींदर देख मन भावै।
क सब ही लेन है विश्राम
आछा वरायानी का धाम।'[2] आदि।

---

१. चित्तौड़ गज़ल, कवि सेतल, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
२. दुगोली गाँव री गज़ल, अर्जुन कवि, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति के बीच में 'कि' का प्रयोग करके, दूसरी पंक्ति को उसी लय और ताल में पकड़ लेना गायन के एक विशेष ढंग की अपेक्षा करता है। इन पंक्तियों के पाठ करने में यद्यपि एक दो वर्ण यत्र तत्र अधिक और कम मिलते हैं, परन्तु गाए जाने के उद्देश्य से ही लिखे जाने के कारण उन वर्णों को आवश्यकतानुसार घटा और बढ़ा कर गा दिया जाता है, और छंद ठीक ही रहता है। उदाहरण के लिए, पहले उदाहरण में 'अल्लादैत अल्लादीन बांधी में 'अल्लादीन' शब्द अधिक जान पड़ता है। गाते समय इस पंक्ति के पूर्व 'कि' कह कर और अल्लादीन का 'अल्ला' जल्दी कहकर मात्रा तथा लय में ठीक किया जा सकता है। इसी प्रकार 'पुल बड़ी परवीन' पंक्ति में 'बड़ी' शब्द के अक्षर 'ब' पर बल दिया जाना चाहिए।

गज़ल का प्रयोग आज भी लोक-गीतों में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

ध्रुवपद

ध्रुवपद छंद छियालीस मात्राओं का होता है, जिसमें बाहर, बारह, बारह, दस पर यति होती है। उदाहरण के लिए—

'है यही अनादिनद निर्विकल्प निर्विवाद, भूलते न पूज्य पाद वीत राग योगी।
वेद को प्रमाण मान अर्थ योजना बखान गा रहे गुणी सुजान साधु स्वर्ग भोगी।
ध्यान में धरें विरक्त भाव से भजें सुभक्त त्यागते अघी अशक्त पोच पाप रोगी।
शंकरादि नित्यनाम जो जपे विसार काम तो बने विवेक धाम मुक्त क्यों न होगी।'[1]

इस छंद का काव्य में अधिक प्रयोग नहीं मिलता है, परन्तु संगीत में 'ध्रुपद' बहुत अधिक प्रचलित है। अभी तक काव्य के 'ध्रुवपद' छंद और संगीत के ध्रुवपद' को दो अलग अलग वस्तुएँ समझा जाता रहा है। दोनों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि वास्तव में संगीत में प्रयुक्त गायन का एक प्रकार ध्रुपद, इसी शब्द 'ध्रुवपद' का बिगड़ा हुआ रूप है। कहीं कहीं तो 'ध्रुवपद' शब्द भी ध्रुपद के लिए लिखा मिलता है। श्याम-सुन्दर दास जी के अनुसार ध्रुपद की व्याख्या इस प्रकार है, 'ध्रुपद एक गीत है, जिसके चार भेद या तुक होते हैं, अस्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। कोई मिलातुक नामक इसका एक पाँचवाँ भेद भी मानते हैं। इसके द्वारा देवताओं की लीला, राजाओं के यज्ञ तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग रागिनियों से युक्त गाया जाता है। इसके गाने के लिए स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यकता नहीं। इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है, किन्तु यह विस्तृत स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला मालूम होता है। किसी किसी

---

१. हिंदी छंद-प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री।

ध्रुपद में अस्थायी और अन्तरा दो ही पद होते है। ध्रुपद कान्हड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। ये सब के सब चौताल पर गाए जाते है। इस राग को संस्कृत में 'ध्रुवक' कहते हैं। 'संगीत दामोदर' के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार का होता है। जयंत, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुंतल, कमल, सानंद, चन्द्रशेखर, सुखद, कुमुद जायी, कदर्प, जयमंगल, तिलक और ललित। इनमें से जयंत के प्रति पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं, फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक अक्षर अधिक होता जाता है इस प्रकार ललित में छब्बीस अक्षर होते हैं। छः पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम और चार का अधम होता है।"[1]

जिस प्रकार 'गजल' छंद, विशेष प्रकार से गाने के कारण गायन का एक प्रकार बन गया, 'धमार', ताल बोधक शब्द होते पर भी उसमें अधिकतर होली गाए जाने के कारण, होली का पर्याय हो गया, इसी प्रकार 'ध्रुवपद' सदैव चारताल में गाया जाने के कारण एक प्रकार से चारताल का पर्यायवाची बन गया। यहाँ पर ध्रुवपद छंद और 'ध्रुपद' (संगीत) में गति और यति का साम्य बताने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

'राग गोरी-चौतालो।

बेर गोधूरिक भई, रोकी लै मग माझ, छाड देहा अवरा गृह,
सासु सुन पाय हो।
नगधर रसिक लाल, प्रेम मतवारे प्यो, रूप रस भीजे जो,
दान हट लाए हो।
साच हू कहू हूं स्याम, मेरी यह मानो बात, आगे दधि चोखे मे,
ऊजल बधाय हो।
बल हु पै माग दान, वामन भए हो देखो, हम हु पै दान लैके,
कौन छवि पाय हो।"[2]

उपर्युक्त अंश में बारह मात्राओं के तीन विभाग तथा अंतिम विभाग दस मात्राओं का किया जा सकता है। गेय होने के कारण मात्राओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। गायन में दस मात्राओं को बारह बनाकर तथा बारह को दस बनाकर गाना स्वाभाविक ही है। संगीत के इस 'ध्रुपद' को साहित्यिक छंद 'ध्रुवपद' कहा जा सकता है।

ध्रुपद चार ताल में अर्थात् बारह मात्राओं की ताल में गाया जाने वाला गीत है। इस ताल की गति धीमी है। विलंबित लय में इसे बजाया जाता है, अतः इसमें गाया जाने वाला गीत भी विलंबित लय में गाया जाता है। विशेष चमत्कार दिखाने के लिए गायक गीत के शब्दों को दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी, अठगुनी, आड़ तथा कुआड़ आदि विभिन्न लयों में गाता है। ध्रुवपद छंद में बारह, बारह, बारह पर यति होने के कारण पंक्ति के तीन

---

१. हिंदी शब्द-सागर, तृतीय भाग, श्याम सुंदर दास।
२. रस-तरंग जवान सिंह जी महाराज, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

विभाग बड़ी सरलता से चार ताल में गाए जा सकते हैं, और अंतिम दस मात्राएँ विस्तार के साथ बारह बना कर गाई जाती हैं। ध्रुवपद छंद की गति भी धीमी है।

प्रारंभ में संगीत ईश्वरोपासना का एक माध्यम था। ईश्वरस्तुति के लिए गंभीर पदावली ध्रुवपद में लिखकर उसे चार ताल में गाया गया। यही कारण है कि अधिकतर ध्रुपद में गाई जाने वाली रचनाएँ गंभीर होती हैं। विषय या तो ईश्वर सम्बन्धी होता है अथवा राज दरबारों में गाए जाने वाले राजा की प्रशंसा से संबंधित।

कालांतर में ध्रुवपद छंद ने ही 'ध्रुपद' और 'चार ताल' का स्थान ग्रहण कर लिया। धीरे धीरे गायक या कवि 'ध्रुवपद' छंद को भूल कर केवल चार ताल में गाई जाने वाली रचना को 'ध्रुपद' कहने लगे, परिणामस्वरूप इस छंद में बँधी रचना को ताल की बारह मात्राओं में बांधना आवश्यक नहीं रह गया। संगीत-रचना को ताल में बांधने के लिए निश्चित वर्णो का ही होना आवश्यक नहीं है, बल्कि एक ही वर्ण के साथ कितनी भी मात्राओं का आलाप लिया जा सकता है। एक शब्द 'देखियत' चार वर्णो का होने पर भी 'देऽ खि यऽ त' गाए जाने के कारण छः मात्राओं का हो जाता है। इस प्रकार 'ध्रुवपद' छंद संगीत में प्रविष्ट होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध न रह सका और यह केवल संगीत का ही एक अंग बन गया।

श्रृंगार युग में आकर ध्रुवपद के दो रूप हो गये। एक शास्त्रीय ध्रुपद, दूसरा दरबारी ध्रुपद। बहुत सी रचनाएँ ऐसी पाई जाती हैं, जिनमें विषय की गंभीरता न होकर श्रृंगारी प्रवृत्ति पाई जाती है। भावों में चंचलता भी है। यही दरबारी ध्रुपद हो गया, जिसमें या तो आश्रयदाता की प्रशंसा होती थी या श्रृंगारी पद लिखे जाते थे। खयाल और ध्रुपद में केवल लय और ताल का भेद रह गया। शब्दों में कोई भिन्नता न रही। मानसिह का बनाया हुआ ध्रुपद उदाहरण स्वरूप उद्धृत है।

'राग कामोद कल्याण—ताल चौतालो।
गरवा लाग मिलूंगी पीयरवा में तोरे।
रसराज तोरे कारण मैं रही हुं
सारी रेण भर जाग जाग।"[1]

फलस्वरूप श्रृंगारयुगीन संगीत काव्यकारों ने चार ताल में लगभग उतनी ही चंचल प्रवृत्ति की बंदिशें बांधी हैं, जिन्हें ख्याल और ठुमरी जैसी चंचल गायन शैलियों में स्थान मिलता।

धमार

धमार चौदह मात्राओं का ताल होता है, जिसके बोल हैं 'क धिट धिट धा ऽ, क तिट तिट ता ऽ।' इस ताल में गाया जाने वाला गीत भी 'धमार' कहलाता है। अधिकतर 'धमार' में होली विषयक रचनाएँ गाई जाती हैं। इसको विलंपित लय में, दुगुनी, तिगुनी,

---

१. मानसिह कृत ध्रुपद और ख्याल, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

चौगुनी, अठगुनी, आड़, कुआड आदि लयों में गाकर गायक विशेषता दिखाता है। शृंगार युगीन कवियों ने धमार का एक नया स्वरूप सामने रखा। विलंबित लय में एक छंद गाकर गायक कुछ अंश चंचल गति से गाता है, उसके पश्चात् फिर विलंबित में लौट कर आ जाता है। विलंबित लय का गीत समूह द्वारा और चंचल गति का एक व्यक्ति द्वारा गाया जा सकता है। चंचल गति का अंश 'कहरवा' या 'चलती' में गाया जा सकता है। पूरे गीत में दो तालों तथा दो लयों का सम्मिश्रण कर के यह विशेष प्रकार का धमार गीत बनाया गया। इसमें जन्म, विवाह होली अथवा किसी भी प्रकार के उत्सव को विषय बनाया गया। ऐसे धमार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

'धमार राग काफी
सरस सुहाइया वे रितु छबि देत है रितुराज।
सुंदर सरस सोभावे गोभी काम जन्म सुराज।
अति मन भाइयां व समधी मिलत हेत अकाज।
उनयो मान मंदिर व सुंदर सुघर समाज।

सुंदर समधन आई। वाह वा।
संग दोउ धोटा लाई वाह वा।
सब जन हरष बधाई। वाह वा।
समधी नोत बुलाई। वाह वा।
कीरत सनमुख आई। वाह वा।
मंगल कलस बढाई। वाह वा।
भीतर भवन लिवाई। वाह वा।
अद्‌भुत गारि सुनाई। वाह वा।

सुनाई गारि अद्‌भुत व श्री नंद राय का ब्रज नार।
संग बल राम मोहन वे मन दा भावदा दिलदार।
आगम सरस सोभा वें श्री वृष भान के दरबार।
सरसो सी फूल रहिया वे भुडन भूमनी सुकुमार।
भुडन धूमत आवें। वाह वा।'[1]

यह गीत छंद-शास्त्र की दृष्टि से 'विजात छंद' कहा जा सकता है। विजात छंद चौदह मात्रा का मानव जाति का होता है।[2] उपर्युक्त गीत चौदह मात्रा में गाया जाता है, परन्तु इसके वर्णों की गणना करने पर, प्रथम पंक्ति में ग्यारह अथवा बारह मात्राएँ मिलती तथा द्वितीय पंक्ति में चौदह। इसका कारण है कि 'वे' शब्द पर गायन शैली के अनुसार दो या तीन मात्राओं का विश्राम होना आवश्यक है। छंद शास्त्र तथा संगीत-शास्त्र दोनों

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. 'करो रचना विजाता की। कला चौदह सपू आदी।'
हिंदी छंद-प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, पृ० ५१।

की दृष्टि से उसको निम्न प्रकार से लिखा जाना चाहिए ।

। । । । ऽ । ऽ ऽ । । ।
'सरस सुहा इयां वे ऽऽऽ ,
- - - - - - - - - - - - - -

। । । । ऽ । ऽ । । ऽ ।
रितु छबि देत हैं रितु राज ।'
- - - - - - - - - - - - - - -

प्रत्येक पंक्ति के 'वे' पर रुकना होगा । चंचल गति के अंश, 'सुन्दर समधन आई, वाह वा' को 'कहरवा' की दो आवृत्ति में ठीक विठाया जा सकता है ।

सुं द र स म घ न आ ई वा ह वा ऽ।
- - - - - - - - - - - - - - -
संग दो उ घो टा ला ई वाह वा ऽ ।
- - - - - - - - - - - - - - -

छंद-शास्त्र की दृष्टि से यह अंश 'पादाकुलक वर्ग' के चतुष्कल नियम का छंद कहा जा सकता है, जिसका अंतिम 'चौकल' 'ऽऽ' का है, संगीत में इन्हीं गुरु वर्णों को लघु वना कर, एक एक मात्रा वढ़ा कर चार मात्राओं में गाया जाएगा ।

इस 'धमार-गीत में 'विजात' तथा 'पादाकुलक' छंद का निर्माण कर लिया गया है । संगीत-कला में भी एक नवीन शैली का प्रचार हो गया, जिसमें अभी भी होली आदि गाई जाती हैं ।

इस प्रकार मिश्रित छंदों के अनेक प्रकार संगीत-काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें से कुछ गीत उदाहरण स्वरूप यहाँ दिए जा रहे हैं ।

सोलह और ग्यारह मात्राओं की दो पंक्तियों के वीच में 'आली' और 'प्यारी' जोड़ कर तथा पंक्ति के प्रारंभ में 'अरी यह' अधिक वढ़ाकर गाने से छंद-शास्त्र की दृष्टि से एक नवीन पद सम्मुख आता है ।

'अरी यह छैल छवीलो नागर पेलत सरस सुहाय ।
अरी यह रंजित सुभग सावरो । हेली । मोतन निरप लुभाय ।
अरी यह अलक छवीली सोधे वोरी । आली । प्यारी । मनहु चंवर फहराय ।
अरी यह भृकुटी वंक रसीली की सोभा । आली । प्यारी । दरसत है इहि भाय ।
अरी यह नैन कुरंगन से रस माते । आली । प्यारी । छवि सो चलत सुहाय ।' आदि ।

उपर्युक्त गीतों में पंजावी के लोक-गीतों का प्रभाव है । एक पंक्ति गाकर समूह 'वाहवा' अथवा 'शावा' की ध्वनि करता है । अन्तरा एक व्यक्ति के द्वारा गाई जाती है। वीच के अक्षर समूह द्वारा । इसी प्रकार यहाँ भी 'वाहवा', 'हेली', 'प्यारी', 'अरी यह' आदि शब्दों

के गाने से गीत अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है। लोक-शैली को साहित्यिक रूप देने का श्रेय इन संगीत-काव्यकारो को दिया जाना चाहिए।

इस काव्य में कुछ ऐसे छंद प्राप्त होते है, जिनका उल्लेख छंद शास्त्र मे कहीं नही मिलता, परन्तु गाए जाने के लिए लिखा जाने के कारण अत्यन्त संगीतात्मकता मिलती है। सभी नवीन छंदो का वर्णन करना तो संभव नही होगा, परन्तु उदाहरण के लिए कुछ गीतो को लिया जा सकता है, जिनको विशेष ढंग से गाने के कारण नवीन छंद का निर्माण हो गया है।

एक छंद प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे पद के समान प्रारंभिक पंक्ति स्थायी रूप मे कही गई तथा अन्तरा मे सोलह, बारह, बारह की यति पर पंक्तियाँ रखी गई है। बारह, बारह के दो छोटे छोटे अंश गाने मे एक विशेष सौन्दर्य आ जाता है। यद्यपि मूलत गेय होने के कारण बारह के स्थान पर ग्यारह, दस और तेरह मात्राएँ भी प्राप्त हो जाती है, परन्तु स्वरो के योग तथा लोप से उसे मात्राओं म बाँध लिया जाता है।

'पेलत डोलत ग्वालिनी दधि का दो माती।
ले मटकी भारत सिर पर हरषी
हरी जनम सुहाती।
अभिमन मन भाती।
प्रेम उमग सभी मिलि आवत
नंद भवन मे जाती।
आनद की राती।
निरषि निरषि छबि कवल नैन की
रही हरषि हरषाती।
सब रग बढाती।
सोभित रतन सुदेश सुभग तन
उर पदिकन की पाती।
अग जोबन उफनाती।
भावें नाचन रग सू
नगधर जनम सुगाती।
हिय प्रेम सुराती -'[1]

एक छंद मे दोहे के समान तेरह, ग्यारह पर यति रखकर दो दो पंक्तियों को गाया गया है, परन्तु प्रत्येक पंक्ति के बीच में तेरह मात्राओं के बाद 'हो' शब्द कुछ विभिन्न स्वरों मे गाने से उसके रूप और गति दोनों ही मे परिवर्तन आ जाता है। दोहे के कठोर बंधन को तोड़कर गेय बनाने के लिए 'हो' का प्रयोग किया गया है।

'गिर गोवर्धन की ओर गोरस लै चली।

---

१. रस-तरंग, जयानसिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

चलत डगन भर भांवती । हो । कटि लचकत स्तन भार ।
ऊवट वाट चली कहूं । हो । संग मोहन रिझवार ।१।
गोरस मागत गोरसिक । हो । चलन देत मग रोक ।
झगरत है मिस दान के । हो । पी रस नैनन ओक ।२।
वदत नाहीं ग्वालिनी । हो । अंग जोवन उफनात ।
मुसकनि महर मजेज सूं । हो । शोभित सुंदर गात ।३।
जोवन माती फिरत है । हो । दान हमारो मार ।
गरव गहेली ग्वालिनी । हो । वोलत वचन सम्हार ।४।"

इस प्रकार एक गीत में अनेक अन्तराएँ होती हैं ।

एक अन्य गीत है, जिसमें प्रत्येक दो पंक्तियों के वाद चार पंक्तियों का एक झूमका गाया जाता है, जिसके कारण लय में अन्तर आ जाता है और वार वार उसके प्रयोग से छंद में गीतात्मकता वढ़ जाती है ।

'हेली नंद घरन आज वधायो ।
गोकुल गली अली घर घर तैं नूपुर शब्द सुहायो । टेक ।
गोकुल रंग रंगे व्रजवासी आनंद ओप अलेलें ।
गोकुल सकल मही लैं लैं कैं दधि कादो भरि पेलें ।१।

झूमका —

अंगन साज सुवास जरी हैं ।
मुप वेंदी सिर तिलक करी हैं ।
मूपन साज सिंगार उजेरी ।
वाजत चली चरनन में जेरी ।
यह मंगल शब्द सुहायो ।२।
गोकुल नंद महोत्सव सुंदर मंदिर सरस सुहायो ।
गोकुल घर घर वजत वधाई मंगल अति मन भायो ।३।

झूमका—

करन फूल प्रतिविंव कपोलन ।
अलक मोहिनी करत कपोलन ।
तन सुप सारी नील निचोलन ।
सुंदरता सागर मृदु वोलन ।
यह मंगल शब्द सुहायों ।४।
गोकुल गांव सकल व्रज वासी आनंद उर न समावे ।
गोकुल प्रकट भए मन मोहन सुंदरता उफनावे ।५।

---

१. रस-तरंग, जवानसिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

भूमका—

अंजन साज सिंगार चली है।
मुख बीरी छवि अधिक फुली हैं।
हाथ लियें उपहार अली हैं।
गावत सब मिलि नंद गली हैं
मह मंगल शब्द सुहायो।६।
गोकुल निगम पुरान बखाने सुंदरता को सार।
गोकुल प्रेम दुहाई फिर रहि मानंद हृदय अपार।७।"

आदि।

इस प्रकार के गीतों या छंदों मे बहुत विविधता है, क्योंकि प्रत्येक गायक और प्रत्येक गीत की अनुकूलता के अनुसार इनका निर्माण होता है।

यह वास्तव मे कृष्ण भक्ति के माधुर्य और शृंगार युगीन चमत्कारी प्रवृत्ति की ही देन है। कृष्ण भक्ति मे विभोर होकर भक्त, भजन या कीर्तन करने लग जाता है। सामूहिक गीतों म इस प्रकार, छोटी छोटी पंक्तियों को जोडकर रसोद्रेक करना स्वाभाविक हो जाता है।

संगीत-काव्य मे प्रयुक्त 'रास' छंद भी विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखता है, अत 'रास' पर सक्षेप म विचार कर लेना उचित होगा।

रास

'रास' शब्द छंद बोधक, गीत बोधक तथा नृत्य बोधक, तीन रूपों म प्राप्त होता है। 'रास' शब्द की व्युत्पत्ति तथा पारंपरिक प्रयोग की विवेचना अनेक प्रकार से की गई है। अत संगीत-काव्य मे प्रयुक्त 'रास' का स्वरूप देखना पर्याप्त है।

डा० हरीश ने विरहांक के अनुसार 'रास' को अनेक अडिल्लों, दुवहवों, मात्राओं रड्डाओं और ढोसाओं का सम्मिश्रण बताया है,[1] तथा डा० हरिवल्लभ भायाणी के अनुसार रास दोहा, छडुणिया, पद्धडिया, घत्ता, चौपाई, रड्डा, ग्रोडला, अडिल्ल आदि अनेक छंदों का मिश्रित रूप है।[1] सोरठा, चउपद, वस्तु आदि छंदों के योग को भी 'रास' कहा गया है।[4]

इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'रास' शब्द एक शैली विशेष का बोधक है, प्रबन्धात्मक गीत गाने के लिए एक ही छंद मे अथवा विभिन्न छंदों मे संगीत तथा

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पु. रातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. वृत्त जाति समुच्चय—४।२६-३७, विरहांक।
आदि काल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य, डा० हरीश, पृ० १३।
३ वही, पृ० १४।
४ वही, पृ० ३५।

काव्य में लय का साम्य रखते हुए गाया गया गीत 'रास' है। अपने अपने विषय तथा रुचि के अनुसार कवियों ने छंदों का प्रयोग किया। यह निश्चित है कि यह गेय काव्य था। 'हरएक रास में गेय तत्त्व व रसमय तत्त्वों की प्रधानता रही थी और इस गेय तत्त्व ने जब अनवरत वृद्धि पाई, तो यह समस्त रास ग्रंथ एक रास छंद के लिए ही रूढ़ हो गए।'[1]

साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर रास या रासक संगीत, नृत्य, लय, ताल, छंद, क्रीड़ा, तथा अभिनय सभी अंगों का समन्वय है। रास में गीत, लय और ताल का महत्त्व अधिक होने के कारण संगीत की दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक बढ़ जाता है।[2]

'रास' का नृत्य से सम्बन्ध बहुत प्राचीन और प्रगाढ़ है। आज भी उसके विभिन्न स्वरूप, राजस्थान, मणिपुर, महाराष्ट्र तथा गुजरात आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। रास का जो चित्र खींचा जा सकता है, वह वास्तव में नृत्य, गीत तथा छंद तीनों से समन्वित हैं। समूह में पुरुष और स्त्रियां, गीतों के शब्दों के अनुसार भावों के साथ ताल में नृत्य करते हैं। गीत छंद तथा ताल बद्ध होता है, वह दूसरे समूह द्वारा वाद्य-यन्त्रों के साथ गाया जाता है। अभिनयात्मक अथवा नृत्यात्मक होने के कारण शब्दों में भी भावात्मकता होती है। 'रास' संगीत तथा काव्य के सम्मिश्रण का बड़ा सुंदर उद्धरण है।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में 'रास' का सर्वोत्तम रूप प्राप्त होता है। इस काव्य में 'रास' नृत्य विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए कवियों ने अधिकतर पद शैली का प्रयोग किया है। पद-शैली में भी कुछ विचित्रता है। प्रारंभ की एक पंक्ति कम मात्राओं की तथा स्थायी रूप में होती है। अन्तरा में 'दोहे' का प्रयोग किया जाता है। दोहे के निरन्तर प्रयोग से प्रबंधात्मकता आ जाती है। उन्हीं से सम्पूर्ण 'रास-नृत्य' का वर्णन होता है। दोहा तेरह तथा ग्यारह मात्राओं में ही बांधा जाता है, परन्तु संगीत-काव्य में तालों के आधार पर बांधे गए दोहों के नए-नए रूप प्राप्त होते हैं। ताल की मात्राओं के अनुसार दोहों में मात्राओं को बढ़ा दिया जाता है। इसके लिए कवि 'हो', 'अरी' आदि का प्रयोग करता है, अतः दोहा तेरह तथा ग्यारह मात्राओं की पंक्तियों के अतिरिक्त चौदह, चौदह का; चौदह, बारह का; तथा बारह, चौदह का मिल जाता है। यहां एक उदाहरण 'रास' के गीत का है, जो धमार ताल में गाया गया है। धमार ताल की चौदह मात्राओं में ठीक बिठाने के कारण दोहे की प्रत्येक पंक्ति चौदह चौदह मात्राओं की बनाकर उसको अन्तरा रूप में गाया गया है। अन्त में 'हो' की ध्वनि करके लोक-तत्त्व तथा उत्साह की वृद्धि की जाती है।

'अथ अस्ताई। राग विहागरो ताल धमार।
अति रस भरी ब्रज सुंदरी नृत्यत रास सुबंगा हो।
निस सर्वोत्फुल मल्लिका ककुम कांत राकेसा हो।१।
पूरब ससि निस सरद की चलि बन मलय समीरा हो।

---

१. आदि काल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य, डा० हरीश, पृ० ११।
२. वही, पृ० १२।

होत बैंण रव रास हित तरनि तनैंया तीरा हो ।२।
बंसी धुनि दूबो पठै बोली हैं ब्रज बाला हो ।
समर विजैं आरंभ रस रास करन नंद लाला हो ।२।
परम प्रेम आरूढ़ रथ विषम पथ धुनि बैंना हो ।
रास केलि संग्राम हित चली मदन गढ़ लैंना हो ।४।
विमल जुन्हैया जगमगी रही बैंन धुनि छाया हो ।
प्रेम नदी तिय रंग मगी वृंदा कानन आया हो ।५।
रुकी न कापैं तिय गई छाडि काज गृह चाहा हो ।
मिल्यो स्याम रस सिंधु मन सलिता प्रेम प्रवाहा हो ।६।
जुरे करनि कर कंवल बिच अमल जुन्हैया जोती हो ।
हाव भाव बही गान गति रास रंग अति होती हो ।७।
नूपुर कंकन किंकिनी मिलेरा झमकि झकारा हो ।
कोटि काम दल दलमलति पायन गति बिसतारा हो ।८।
अति दरसैं सरसी जु छवि दै तिय मधि नंद लाला हो ।
कंचन मणि बिच स्याम मणि मनौं मैंन की माला हो ।९।
पदन्यास उठि रास म कुसुम सुगंधित धूरा हो ।
रह्यो नूपुर निनाद सौं नव वृंदावन पूरा हो ।१०।
लगे होन रस रास मे बह्यो संगीत प्रकारा हो ।
गांन तान अति गतिन के कहि न सकत बिसतारा हो ।११।।
रास करत नंद लाल तिय संग सरद की राता हो ।
लाघवता तन फिरन की मनौं मैंन आलाना हो ।१२।
फुरत हरवई पगनि की नचत माझ दरसाया हो ।
बाला लाला फूल पर उर पति रूप लजाया हो ।१३।
लखि उपजत चपलानि चित सखिन की ललचाना हो ।
लोक लक ललनानि की अलग लाग लैं जाना हो ।१४।
निकसि निकसि मडलनि तै लेत ललित गति लाला हो ।
देखि देखि अवनि भरति रीझि रीझि बस बाला हो ।१५।
मुकट लटक पट फरहरनि भृग भरहरनि संगा हो ।
मुख मुरली धुनि घर हरनि नृत्यत स्याम सुघंगा हो ।१६।
ग्रीव दौरि गति लैं चलनि हलनि अलक उरहारा हो ।
पायनि मनमथ दलमलनि नचत ललनि छवि मारा हो ।१७।
कबहू प्रिय मंडल कढ़न अनि गति बढ़त सुघगा हो ।
हरि के मन लोचन फिरत उर के पायनि संगा हो ।१८।
बैंनी चला नितंब पर छनक छला अगुरीना हो ।
नचैं चंचला सी कला कोविद प्रिया प्रवीना हो ।१९।
लाल लई उर लाइ लखि रीझे गनि सरसानी हो ।

मंडल में सुरझै नही अंक माल उरझानी हो ।२०।
उत अत अरुझी कुंडल अलक इत बेसर बनमाला हो ।
गउर स्याम अरुझे दोऊ मंडल रास रसाला हो ।२१।
गर बहियां गति लेत मिलि श्रम बस सियलत पाया हो ।
डारे मन ले सबनि के डगमग डगनि डुलाया हो ।२२।
लेत बलैया रीझ दोऊ दोऊ पोंछत श्रम बारी हो ।
नचत सनी अति रंग सौं बनी मदन मनुहारी हो ।२३।
उतैं झुकीं हौं नव मुकुट इतैं चंद्रिका चारा हो ।
भये रास रस मगन तन सर के सकल सिंगारा हो ।२४।
खूंटि खूंटि अंचर गए, छूटि छूटि गए बारा हो ।
श्रमित रास रस रंग मैं टूटि टूटि गए हारा हो ।२५।
कहत कहत कहां लगि कहैं कवि मति मंद प्रकासा हो ।
तिनके भौंह बिलास में कोरि कोरि कैं रासा हो ।२६।
नागरिया दये रास मैं अनगिनत कलप बिताया हो ।
मनमय हू को मन मथ्यो कथ्यो कौन पैं जाया हो ।२७।

इति श्री नागरी दास जी कृत रास रस लता सम्पूर्णम् ।"[1]

यहां पर 'रास' के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन न करके केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि माधुर्य भाव की भक्ति में रस की चरम पराकाष्ठा पर पहुंचा देने वाला 'रास' नृत्य था। उस दिव्य आनंद को प्रदान करने वाले नृत्य के साथ संगीत का माध्यम दोहा ही क्यों चुना गया, इसका सबसे बड़ा कारण यह ज्ञात होता है कि रास में जिस रस व्याप्ति की प्रारंभ से अंत तक आवश्यकता होती है, वही दोहों के निरंतर गाने से प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में जिसे साहित्य में 'प्रबंधात्मकता' कहा जाता है, वही 'प्रबंधगीतात्मकता' इस नृत्य में अपेक्षित है, जिसकी पूर्त्ति 'दोहा' करता है।

रास नृत्य करते समय नर्तक और नर्तकी धीमी लय से प्रारंभ करके निरन्तर ज्यों ज्यों रस में डूबते जाते हैं, त्यों त्यों लय भी बढ़ाते जाते हैं। नृत्य-कला के दृष्टिकोण से इसी बढ़ती हुई गति के साथ गोपियां कृष्ण से अधिकतर काल्पनिक सामीप्य का अनुभव करती चली जाती हैं। इसी अनुभूति के साथ ही कृष्ण का स्वरूप उज्ज्वल होता जाता है। उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है तथा उसके प्रति प्रेम उद्दीप्त होता चला जाता है। उनके अंग संचालन, गति, अभिनय और रस की अभिव्यक्ति में नवीन भावों और हावों का समावेश होता चला जाता है, जिसकी पूर्त्ति दोहे के समान सरल और स्वाभाविक छंद ही कर सकता है, तभी नंददास, सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्तों ने भी रास के गीत के लिए सदैव 'दोहा' ही अपनाया है और सभी रास गीतों में एक ही प्रकार की तन्मयता दिखाई देती है। कृष्ण से तादात्म्य स्थापित करते करते एक अलौकिक आनंद में नर्तकी डूब जाती है और साधक साध्य और साधन सभी का एक ही स्वर हो जाता है, जिसका प्रमाण प्रत्येक रास में दिए

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

गए मृदग के बोल हैं, जिनम स्वय कवि गोपी के चरणो से निकलन वाले मृदग के बोल गान लगता है।

'सरद उजारी रेनि ता मधि रच्यौ है रास मडल
पियारी चले ठुम ठुम चाल हैं।
ता थेई ता थेई थेई तक तक थेई ता ता थेई झनन कनन
बाजें भम भम ताल है।
धिधिकट धिधिकट धिक्ता ता न धुंग धुंग थर थर
तन न न जाल है।
तागिडि तयुगिडि था गिडि गिडि ता ता कु ता उघटत
गोपी सग नाचत गुपाल है।'[1]

साराश यह है कि यद्यपि ढूँढने पर सभी छदो का प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त हो जाता है,[2] फिर भी सगीत-काव्य मे सगीत विषयक अथवा सगीत सबधी काव्य रचना के उपयुक्त तथा अनुकूल छदों का ही अधिक प्रचार रहा। ऐसे छदो म कवित्त, सवैया, दोहा, गजल तथा पद ही कवियो के प्रिय छद रहे। गेय रचनाओ म सगीत तथा छद शास्त्र के योग से अनेक नवीन छद बनाए गए, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार श्रृगार-युगीन सगीत-काव्य छन्द-शास्त्र की दृष्टि से भी उत्कृष्ट कोटि का कहा जा सकता है। सगीत के तीन अग गायन, वादन तथा नर्तन तीनो के समावेश स छदो का सु दरतम स्वरूप उपस्थित हो गया है।

---

१. सगीत-पच्चीसी, गहर गुपाल, धार्मिक सग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२. उदाहरणार्थ कुछ छ द यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—
शार्दूल विक्रीड़ित छद
'माथे च द कलाय गति करे मातग की सो
सदा सारी सेत अनूप रूप पहिरे श्रीखड चर्चा धरे।
ठाढ़ी कत समीप मत्त हृदया गौरी कटाक्षा चले।
कामी मानस मोहिनी सिव कह्यो धनाश्रिनी रागिनी।'
राग विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती मदिर, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

+ + +

मधुभार छद—
'हम कह्यो बात। सुनि नृप सिद्दात।
कछु तरक लाइ। उचर्‌यो सुभाइ।
जान्यो अनूप नहि ब्रह्म रूप।
सुदर ललाम। कमनीय काम
केवल सुदाम। घनस्याम धाम।
सेयो सुजानि। प्रति हित्तु मानि।'

'वाद्यों द्वारा वाहर से आए स्वर की समचाल में कण्ठ से निकली हुई स्वर-लहरी जव समभूत होती है, तब गाने, बजाने तथा सुनने वाले के शरीर के स्नायुतन्त तथा अंग अंग इस सम से स्वतः आंदोलित हो उठते हैं। मन की यह समीभूत एकाग्रता आनन्दानुभूति की अवस्था है और अंगों की फड़कन उस आनंद के अनुभाव हैं।'[1]

इसी अनुभूति से उद्भूत संगीत काव्यकारों की कृतियां संगीत से सर्वथा पूर्ण हैं।

रास-पंचाध्यायी, वटुनाथ कृत, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

+ + +

मोदक छंद—

'धैवत सुर ग्रह ताको जानी।
शिव मूरति संगीत वखानी।
कंकन उरग और शशि भाल।
सुरसरि जटा गरे रुंड माल।
सेत वसन नैन पुनि तीन।
सिद्ध सरूप अरु महा प्रवीन।'

रागमाला, अहमद, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, वीकानेर।

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सं० २००४, पृ० ५६४।

महत्त्व और उपलब्धियां

शृंगार युगीन साहित्य में संगीत विषयक अथवा संगीतात्मक रचनाओं की प्रचुरता तथा उत्कृष्टता से परिचित होने के पश्चात संगीत-काव्य का महत्त्व द्विगुणित हो उठता है। साहित्य, समाज तथा संस्कृति का व्याख्याता है। संगीत-काव्य एक ओर तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों तथा रुचियों का निर्देशन करता है दूसरी ओर देश के सांस्कृतिक विकास से परिचित कराता है। इस प्रकार शोध प्रबंध में चुना गया विषय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि साहित्य तथा संगीत वैदिक काल से ही परस्पर अन्योन्याश्रित तथा सम्बद्ध समझे जाते रहे, फिर भी साहित्य का क्षेत्र लेखनी में तथा संगीत का क्षेत्र कण्ठ में सीमित रहा। संगीत से प्रभावित साहित्यकार का काव्य सदैव स्वर माधुर्य से प्लावित होता रहा तथा साहित्यकार की कविता से संगीत अपने भीतर भाव भरता रहा, परन्तु संगीत तथा साहित्य का मिश्रित रूप जिन रचनाओं में प्राप्त हुआ, वे यद्यपि दोनों क्षेत्रों को समृद्ध बनाने में समर्थ थीं, तथापि साहित्य तथा संगीत दोनों स्थानों पर समादर न पा सकीं। साहित्य ने संगीत की सामग्री समझ अपने जगत में गौण स्थान दिया तथा संगीत ने साहित्य की निधि समझ उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखा। कल्पना से युक्त भावुक हृदय भावोत्कर्ष में स्वयं मग्न हो झूमने लगता है। भावाभिभूति के उपरान्त प्रस्फुटित रचना आनंदानुभूति के कारण स्वयं ही लयात्मक तथा संगीतात्मक हो जाती है। काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में संगीत कला तथा चित्रकला बहुत अंशों तक सहायक होती हैं,[1] अतः साहित्यिक तथा सांगीतिक तत्त्वों से पूर्ण काव्य रचनाओं का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में शृंगार युग (सं० १७०० से १९००) के उन कवियों तथा रचनाओं का अध्ययन किया गया है, जिनका काव्य इन दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। इस प्रकार 'शृंगार युग में संगीत-काव्य' का अध्ययन साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दोनों पक्षों पर प्रकाश डालता है।

---

१. 'काव्य, संगीत एवं चित्रकारी के प्रगाढ़ संयोग ही से उत्कृष्टतम रूप में स्थिरता पा सका, मानवीय संवेदनाओं का सार्वभौम हो जाना केवल आभ्यंतरिक धार्मिक व्यवस्था की बात नहीं है, जो अलौकिक शान्ति एवं निर्विकारिता ले आए। चित्रकला को संगीत एवं काव्य से संयोजित कर चित्रकार द्वारा यह उद्देश्य और भी सुसाध्य किया जा सकता है, ताकि काव्य के विषय के चाक्षुष-मूल्यांकन करने में उसे सजीवता प्रदान कर सके।' 'ललित कलाओं का समन्वय' (लेख), डा० राधा कमल मुकर्जी विक्रम स्मृति ग्रंथ २००१, पृ० ८४७।

साहित्यकारों तथा संगीतज्ञों दोनों वर्गों के द्वारा उपेक्षित होने के कारण प्रबंध में वर्णित रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकी थीं, अतः इस विषय पर शोध करने से एक ओर तो अप्रकाशित सामग्री विद्वद्जनों के समक्ष प्रस्तुत की जा सकी और दूसरी ओर हिंदी साहित्य के इतिहासों का एक मूक पृष्ठ मुखर हुआ।

आज जब बुद्धिवादी जिज्ञासु मानव विषय के सूक्ष्मतम कण का गहनतम अध्ययन करने का प्रयास कर रहा है, तब विविध विषयों पर लिखे गए साहित्य का प्रकाश में आना अत्यन्तावश्यक है। ऐतिहासिक, नैतिक, धार्मिक तथा काल्पनिक आधारों पर की गई रचनाएँ यदि साहित्य का कोष भर सकती हैं, तो सांगीतिक आधार पर रचित साहित्यिक रचनाएँ तो साहित्य को और भी अधिक सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

हिंदी साहित्य का अध्ययन जितना ही संपूर्ण होगा, उतना ही स्वतन्त्र देश तथा स्वभाषा को गौरव प्राप्त होगा। विश्व के समक्ष भारतीय साहित्य को प्रस्तुत करने के लिए तथा भाषा की समृद्धता का परिचय देने के लिए इस प्रकार का अध्ययन अनिवार्य है।

यह माना कि संगीतज्ञ की स्वर-लहरी में, चित्रकार की तूलिका में, नर्तक के पायलों में तथा मूर्तिकार की छेनी में कला जीवित रहती है, परन्तु ये कलाएँ, स्थायित्व प्राप्त करने के हेतु अन्ततः साहित्यकार की शरण लेती हैं। शृंगार युग में संगीत पर आधारित अनेक काव्यात्मक रचनाएँ की गईं, अतः उनका अध्ययन हिन्दी साहित्य में एक रिक्त स्थान की पूर्ति करता है।

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल तथा रीतिकाल (शृंगार युग) में साहित्य तथा कला का सर्वाधिक तथा सर्वोत्तम समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। डा० राधा कमल मुकर्जी ने अपने एक निबन्ध 'ललित कलाओं का समन्वय' में बताया है कि मुख्य रूप से सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक काव्य, संगीत तथा चित्र कलाएं भारत में साथ ही साथ विकसित होती रहीं।[1] भक्ति-काल में भक्ति भावना की प्रधानता होने के कारण साहित्य-सौन्दर्य भी आदर्शों की मर्यादा में बँधा रहा, परन्तु शृंगारयुग में अवकाश प्राप्त कर, साहित्य में

---

१. 'प्रायः तीन शताब्दी १५ ई० सन् से १८ ई० सन् तक लोक-कला के तीन रूप, काव्य, संगीत एवं चित्रकला भारतवर्ष में साथ-साथ विकसित हुई एवं विभिन्न रूढ़ियों द्वारा एक ही अवैयक्तिक भावना की अभिव्यंजना भी की। वे सब श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों से ली गई गाथाओं के धार्मिक अभिप्रायों से अनुरंजित थीं, और सन्त कवि संगीतज्ञ एवं चित्रकारों की ज्योति-गंगा के द्वारा जन-जन के मन तक पहुँचती रही। कला रूपों में राष्ट्र एवं युग की सम्यक कल्पनाओं एवं कला-स्वप्नों की जैसी अभिव्यंजना तब के उत्तर भारत में पाई गई, विश्व संस्कृति के इतिहास में कलाओं का वैसा समन्वय कदाचित् ही अन्यत्र हो।'
ललित कलाओं का समन्वय (लेख), डा० राधा कमल मुकर्जी, विक्रम स्मृति-ग्रन्थ २००१, पृ० ८४६।

कलात्मकता, विकास की चरमावस्था पर पहुँच गई। इस दृष्टि से शृंगार युगीन काव्य का कलाम्रो से समन्वित अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक हो गया।

निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि शृंगार युग मे राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियाँ ऐसी बन गई थी, जिन्होंने सगीत को राज-दरबारो म तथा लोक-जीवन मे समान रूप से प्रश्रय दिया। फलस्वरूप दो प्रकार से सगीत विषयक रचनाम्रो का निर्माण हुआ। सगीतज्ञ कवियो ने कुछ ग्रथ राजा अथवा आश्रयदाता की आज्ञा से लिखे तथा ग्रन्थ स्वेच्छा से लिखे। आज्ञानुसार लिखे गए ग्रन्थो मे प्राचीन ग्रथों का अनुसरण तथा सैद्धान्तिक विवेचन हुआ। स्वेच्छा से लिखे गए ग्रन्थो मे मौलिकता को स्थान मिला, अत राग-रागिनियो का शृगारिक स्वरूप चित्रण किया गया। मौलिक ग्रथो मे सगीत के तत्कालीन क्रियात्मक रूप पर भी प्रकाश पडा। प्राप्त सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस समय नियमो मे आबद्ध शास्त्रीय सगीत का प्रचार उतना अधिक नही था, जितना रागबद्ध भजन, कीर्तन, गजल तथा रेखता आदि का। शास्त्रीय सगीत म भी ध्रुपद का स्थान धमार, ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा आदि ने ले लिया था। ध्रुपद की शब्दावली मे गभीरता नष्ट हो गई थी। प्राचीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी केवल ग्रन्थो तक ही सीमित था, अधिकाश सगीतज्ञ उन कठोर नियमों के ज्ञाता नही थे। जो जानते भी थे, वे विदेशियो के हाथ अपनी कला बिकने के भय से मूल स्वरूप को प्रच्छन्न रखना चाहते थे। इस प्रकार तत्कालीन सगीत का वास्तविक स्वरूप इन ग्रन्थो मे प्राप्त है। सगीत के क्षेत्र मे राग तथा रागिनियो का चित्रण काव्यात्मकता को उद्भूत करता है, अत सगीतज्ञ कवियो न 'रागाध्याय' को विषय बनाकर अनेक 'राग-ग्रन्थ' तथा 'रागमालाम्रो' का निर्माण किया। ऐसे वर्णन मे साहित्यिक सौन्दर्य सहज रूप से आ गया है। सगीत के ज्ञाता होने के नाते काव्य मे लालित्य तथा माधुर्य आ गया है। एक प्रकार से हिन्दी साहित्य मे ब्रज भाषा को जा सुदर स्वरूप इन रचनाओं मे प्राप्त है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार शृगार-युगीन सगीत-काव्य साहित्यिक तथा सागीतिक दोनो दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। विषयान्तर होने के भय से इन ग्रन्थों का सगीत के सिद्धातो की दृष्टि से विस्तृत विवेचन नही किया गया है। सागीतिक महत्त्व का सकेत मात्र कर के साहित्यिक महत्ता तथा सौन्दर्य प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की गई है।

रागमालाओ का चित्रकला से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के नाते सक्षेप मे चित्रकला की दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है। सगीत-काव्य मे साहित्य, सगीत तथा चित्रकला का अद्भुत समन्वय है।

सगीत तथा साहित्य की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा महत्त्वपूर्ण लगभग तीस ग्रन्थों का मूल्याकन यहाँ किया गया है। इनमे लगभग बारह ग्रन्थ साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। प्रतापसिंह के 'राधा-गोविंद-सगीत-सार,' हरिवल्लभ का 'सगीत-दर्पण', राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर', पूर्ण मिश्र का 'सगीत-नादोदधि', 'उस्तन की राग-माला', यशोदानदन की 'रागमाला', कृष्णानद व्यास देव का 'राग-कल्पद्रुम', जवान सिंह का 'रसतरग', मानसिंह का 'ध्रुपद और ख्याल', कल्याण मिश्र, हरिश्चद्र तथा बेनीराम की रागमालाएँ आदि कुछ ऐसे प्रमुख ग्रन्थ हैं, जिनका अभी तक या तो उल्लेख ही नहीं हुआ

सहायक पुस्तकें

हस्तलिखित ग्रंथ

पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (अब जोधपुर में है)

अबा री आरती
आनन्दघन के कवित्त
आनन्दघन कृत चौबीसी
आलाप पद्धति
उत्तराध्ययन गीत
उदयपुर गजल भोज
उद्धव संदेश—रूप गोस्वामी
कवित्त गीत संग्रह—जवानसिंह
काली जी की आरती
कीसन बावनी बारामासा
कृष्ण बारामासा
गिरनार गजल
चित्तौड़ गजल खेतल
चित्तौड़ री गजल
चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता
छत्तीस अध्ययन गान-सागर चंद्रसूरि
तालिमु सितार
तुरसी सखी पदावली तुरसी
दुगोली गाँव री गजल
नागरीदास पदावली
नेम जी का बारामासा
नेम राजुल बारामासा—उदयरतन
नेमीश्वर रागमाला—मेरु विजय
पद संग्रह
पार्श्वनाथ स्तवन रागमाला भय-जय विजय
प्रस्ताविक गीत
फाग रंग, रमक झमक बत्तीसी आदि
अठारह कृनिया का संग्रह प्रतापसिंह
फाग विहार—नागरीदास
बाजीत फाग
बारहमासा आदि—अगम कवि
बावन-पद विविध रागनाम बद्ध
भक्तमाल नाभाजी, टीका लालदास
भगवत गीता भाषा छंद—हरिवल्लभ
भजन संग्रह
भैरूजी का गीत—माधव
भंडारी सविचंद जी री गीत
मजलस
मुहता बालीदास जी री गीत
मुहणोत सिरदारमल री गीत
मंगल कलश फाग
रस प्रबोध—दौलत कवि
राग कोष्टक रागमाल
राग पद संग्रह—ईश्वर पंडित
राग पद संग्रह
राग रत्नाकर व फुटकर रागमाला
चरचर पाकी कृष्ण कवि
रागमाला
रागमाला
रागमाला—कल्याण मिश्र
रागमाला-व्रजनाथ
राग मंजरी
राग सागर
राधा विलाप बारामासा
राग सवैन—रस राशि
राग संग्रह

राठोड़ां री वंसावली
राय अमृत जी कृत ग्रंथ
वस्तु पाल रास
वियोग बोली गज़ल, नंददास
विरुदावली
विविध भजन पद संग्रह चैनाकृत
शत्रुंजय रास
स्फुट पद संग्रह—कवि भोलानाथ
स्वर पंच शिला
संगीत दर्पण—हरिवल्लभ
संगीत की पुस्तक
संगीत रत्नाकर चतुर्थोध्याय
संगीत राज—कुंभकर्ण नृप
सुमति नाथ के गीत और ढाल
हरिदास जी का पद
हिंडोलणा—मेघ कुमार संभाय
होली हजारा

सूचियाँ

कवि भट बदरीनाथ पुस्तक संग्रहालय, जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची
गंगांबर जोशी, सीकर निवासी के ग्रंथों की सूची
देवकीनंदन खंडेवाल, फतेहपुर के ग्रन्थों की सूची
पुरोहित हरि नारायण के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची
महाराज मंगलदास जी स्वामी के संत-साहित्य की सूची
महाराज सार्वजनिक पुस्तकालय की हिंदी पुस्तकों की सूची
महाराज संस्कृत कालिज पुस्तकालय की सूची
यति बालचंद्र जी वैद्य पुस्तक संग्रहालय चित्तौड़ के हस्त लिखित ग्रन्थों की सूची
राज गुरु श्री चंद्रदत्त जी ओझा, जयपुर के हस्त-लिखित ग्रन्थों की सूची
वैद्यराज किशनलाल जी कालू, बीकानेर उपासरा स्थित हस्त लिखित ग्रंथों की सूची
श्री पर्वणीकर ग्रथ-संग्रह, जयपुर के हस्त-लिखित ग्रंथों की सूची
सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर, शेखावाटी की सूची
हकीम साहब श्री मोहन लाल जी पापड़ेवाल, का संग्रह

पोथीखाना, जयपुर

पद मुक्तावली-नागरीदास
प्रेम प्रकाश—प्रतापसिंह
ब्रजनिधि-बीसी प्रतापसिंह
विजय मुक्तावली—छत्र कवि

उदयपुर

प्राचीन शोध-साहित्य शोध-संस्थान, हिंदी विद्यापीठ

ब्रज राज—पदावली—जवानसिंह जी

मुनि कांति सागर जी का संग्रह

कृपा-पचीसी-गोविंद देव स्वामी
गुटका-कल्याण मिश्र
जलवय शहनशाह इश्क (सटीक)-जवानसिंह जी
जानकी मंगल—अलग्न महताव सिंह
जुवारिया दिवालिया का किस्सा
ध्रुपद और ख्याल—महाराज मानसिंह
नेम चउमास
नेमिनाथ बारामासा
बारामास-कल्याण सागर सूरि
रस तरंग—जवानसिंह जी

राग कौतिक्पुर नवधा भक्ति शिव सुवश
शिवराम कविराज
राग-बत्तीसी—दयाचद पाडे
राग-माला—दयाचद पाडे
राग माला—हरिचद
रास-पचाध्यायी—श्री वट्नाथ कृत

जोधपुर

श्री गोवर्धन प्रसाद कावरा का व्यक्तिगत सग्रह

काव्य प्रभाकर—भानु कवि
कासिम रसिक-विलास
राग रत्नाकर—राधा कृष्ण

बीकानेर

अनूप सस्कृत लाइब्रेरी

अनूप सगीत-रत्नाकर—भावभट्ट
अनूप सगीत विलास—भावभट्ट
अनूप सगीताकुश—भावभट्ट
आनद सजीवन—आनदपाल
कुचेलोपाख्यान—कुचेल मुनि
गमक-मजरी—भावभट्ट
दत्तिलम्—दत्तिल
ध्रोपद टीका—भावभट्ट
नर्तन-निर्णय—पुडरीक विट्ठल
नष्टोदिष्ट प्रबोधक—भावभट्ट
नाट्य-शास्त्र—भरतमुनि
प्रणव भारती—ओकार नाथ ठाकुर
प्रेम-रत्नाकर—रत्नपाल भैया
भाव-मजरी—भावभट्ट
मेल राग मालिका—महावैद्यनाथ शिवा
मुत्तादीचालीर विचार—वेदभट्ट
मुरली प्रकाश—भावभट्ट
राग-चद्रोदय—पुडरीक विट्ठल
राग काव्य-रत्न—सवलदास भवानीसुत
राग-कौतुक—रामकृष्ण भट्ट
राग-तत्त्व-विबोध—श्रीनिवास
राग-माला—पुडरीक विट्ठल
राग-माला—क्षेमकर्ण
रागमजरी—भूधर मिश्र
राग-मजरी—पुडरीक विट्ठल
राग-रत्न-काव्य-सुमन
राग विचार—लछीराम
राग विबोध—सोमनाथ
रागकरण समय सूचनिका कवित—जसराज
रुद्र डमरुद्भव—नारद
श्री ठानाग सूत्रवृत्ति (जैन ग्रथ)
सुर तरग—सिरदार सिह जी
सगीत-कलाधर
सगीत—कल्पतरु—पक्षधर
सगीत-चूडामणि—प्रतापचन्द्र
सगीत-दर्पण—दामोदर
सगीत-पारिजात—अहोबल
सगीत-प्रस्तार
सगीत-मकरद—कल्ल
सगीत-मकरद—नारद
सगीत मालिका टीका—महमदशाह
सगीत रघुनदन—विश्वनाथ सिह
सगीत-रत्नाकर—शार्ङ्गदेव
सगीत-रत्नावली—सोमराज
सगीत विनोद
सगीत-शिरोमणि
सगीत-सारकालिका—मासदेव
सगीत-सूत्र
सगीतराज—कुभकर्ण
सगीतराज रत्नकोष
सगीत-सार—गोपाल पडित
सगीतोद्दय
सगीतोपनिषद सारोद्धार-सुधाकलश
सगीताकुश-कुतुपाध्याय-भावभट्ट
सगीतादित्य-आदित्य राम

संग्रह चूड़ामणि—गोविंद
स्वर-लक्षण—जनार्दन
स्वर-मेल कलानिधि
हृदय-कौतुक—हृदय नारायण देव

श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर

रागमाला—अहमद
रागमाला—अज्ञात कवि
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—उस्तत
रागमाला—गिरधर मिश्र
रागमाला—सागर कवि
रागमाला—हरिश्चन्द्र कवि
राधा-गोविंद संगीत-सार—प्रतापसिंह

श्री मोती चंद खजांची-संग्रह

आनंद घन-चौबीसी—आनंदघन
आनंद घन सवैया—आनंदघन
गायन स्वर-विचार
गीत-पत्र—समय-सुंदर
गीत-संग्रह—जैतसी मुनि
गीत-संग्रह—अज्ञात
गीतावली—विश्वनाथ सिंह
पद-संग्रह—आनंदघन
पद-संग्रह—जैमल
फल-कौतूहल—राग-कौतूहल-जैतश्री
बारहमासी—अहमद
बारहमासी—खैराशाह
बीकानेर की गजल
राग टंक-बत्तीसी—आनंदघन
रागमाला—पद्म नंदन मुनि
राधा गोविन्द संगीत-सार (तालाध्याय)—प्रतापसिंह

राधा गोविन्द संगीत-सार (वाद्याध्याय तथा नृत्याध्याय) प्रतापसिंह
हीय हुलास ग्रंथ तथा रागमाला की टीका
होरी संग्रह

अलवर

म्यूज़ियम, अलवर

अनेकार्थ मंजरी
अंजुमन वहशत
उत्सवमाला
कीर्तन रत्नाकर
कृष्णचंद्र का बारामासा
ख्याल राजा नल
गज़ल पुर बहार
गज़ल-बहार
गज़ल-रामलीला-तीसरा भाग
गज़ल संग्रह—तीसरा भाग
गानाचार्य माला
गोकुलेश विट्ठलेश के पद
नाम मंजरी
नित्य के पद
प्रेम लता—प्रथम भाग
बृहद भजन-रत्नाकर—प्रथम भाग तथा द्वितीय भाग
भजन-रत्नावली
भाषा-भूषण
मुसल्लिम सितार
राग-कल्पद्रुम
रागमाला—अहमद
रागमाला—भगवान
राग-रत्नाकर—राधा कृष्ण
रूप-रागावली—पूरण मिश्र
व्याकुल भारत
सभा-भूषण रागमाला
सभा विनोद रागमाला

सगीत-दर्पण—हरिवल्लभ
सगीत-नादोदधि—पूर्ण मिश्र
सगीत ढोला मारू
सगीत पूरणमल
सगीत-ब्रजानद भजन माला
सगीत-सार (स्वराध्याय)
सगीत-सार (तालाध्याय)

भरतपुर

हिंदी साहित्य समिति

पद-सग्रह
पद हरिदास
फुटकर कवित सग्रह
भजनाष्टक हरिव्यास
रस रास पच्चीसी—प्रतापसिंह

स्टेट म्यूजियम, भरतपुर

अनेकानेक राग-रागिनियो का सग्रह

पब्लिक लाइब्रेरी, भरतपुर

उत्थापन मगलाष्टक—चित्रनिधि
कवित्त सग्रह—चतुर सखी
तिलोत्तमा लीला—चतुर सखी
नवधा भक्ति राग रस—शिवराम
पद फुटकर—सोमनाथ
पद मगलाचरण
पद सग्रह उत्सवन के सर्व सुख
रसरास पचीसी—रसिक
रागमाला—सखीसुख
राग सग्रह—चतुर सखी
राग-ध्यान
लाल ख्याल सात कवि
वर्ष उत्सव के पद

सगीत-सार

कांकरोली

श्री 'द्वारकेश पुस्तकालय', कांकरोली

गनगोर के ख्याल—महादास
गायन पद सग्रह
गायन सग्रह
गीत सावनी तीज-सुदर कवि
गीत सग्रह
गेय पद बादशाही तथा फुटकर कवित्त
चतुर्भुज कीर्तन सग्रह—चतुर्भुज
पद कीर्तन
बारहमासी पुरुषोत्तम की
बारहमासी सुदर कवि
भक्तिमार्गीय गजल, ठुमरी ख्याल, कीर्तन धोल आदि
नृत्य गायन मिलन—रामसखे
नृत्य लीला—ध्रुवदास
पद-सग्रह—देव आदि
पद-संग्रह—नागरीदास
पद-सग्रह—मुसलमान कवि
फागलीला-काव्य—हसराज बख्शी
बयालीस लीला—ध्रुवदास
बानी—रूपचद
बारहमासा—कबीर
बारहमासा—केशवनाथ
बारहमासी—ऋद्धिराम
बिहारी सतसई की टीका-कृष्ण कवि
रति विनोद—महमद
राग-निर्णय-गोपालदास व्यास जी
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—यशोदानद शुक्ल
रागमाला—हीमहुलास
राम रसिक रागमाला-गोपालदास
रग विनोद—ध्रुवदास

विरह-विलास—हंसराज वख्शी
व्यास जी की वाणी—गोपाल दास व्यास
व्यास जी की साखी—गोपाल दास व्यास
पट ऋतु और वारहमासीं- इंद्रावती और मानवती
सनेह सागर—हंसराज वख्शी
सरगम संगीत
संगीत-दीपिका—सारंगधर

वाराणसी

याज्ञिक संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय

अर्जुन गीता—आनंद या गंगाराम अथवा कृष्णानंद कृत
कोक शास्त्र—ताहिर
ख्याल हुलास—ध्रुवदास
गंधर्व गीत
दोहा-सार-संग्रह
निकुंज-विलास—नागरीदास
नीति-मंजरी—प्रतापसिंह
नंद कुमार शृंगार मंदार—गहर गोपाल
नृत्य विलास लीला—ध्रुवदास
पद मुक्तावली—नागरीदास
पद सार संग्रह —नागरीदास
वारहमासी—अहमद
वारहमासी—राधाकृष्ण
व्रजसार-शृंगार—प्रतापसिंह
भगवद्गीता भाषा—हरिवल्लभ
भोजनानंद-अष्टक—नागरीदास
भोर लीला—नागरीदास
मन प्रवोध के कवित्त—गोपालदास
रसिक-रत्नावली—नागरीदास
राग-रत्नाकर—राधा कृष्ण
विदुर-प्रजागर—कृष्ण कवि
विरह-वेलि—घनानंद
शंका-निराकरण—पुरुषोत्तम
शृंगार-मंजरी—प्रतापसिंह
सनेहलीला-रसिक लाल
सभा-भूषण—गंगाराम
सार-संग्रह
संगीत-पच्चीसी—गहर गुपाल

वाराणसी

शोध-विभाग-सूची, आर्य भाषा पुस्तकालय

ख्याल टप्पा
गायनपद—रामचरणदास
पदराग मालावती-लघुजन
(विक्रमाजीत ओड़छा नरेश)
भारत-संगीत—लघुजन
राग प्रकाश—श्याम सखे
राग-प्रबोध—नंद लाल
राग माला—गरति जन
रागमाला—तानसेन
रागमाला—दुर्जनदास
रागमाला—देव
रागमाला—नवलकिशोर
रागमाला—यशोदानंदन शुक्ल
रागमाला—रामसखे
रागमाला—व्यास
राग-रत्नाकर—देव
राग-रत्नावली—गोपाल सिंह कुंवर
राग रूपमाला—वालकृष्ण
राग-विलास—राम सनेही मिश्र
राग-विवेक—पुरुषोत्तम
राग-समूह—कृष्ण कवि
राग सागर—मानसिंह
राग-सागर—विश्वनाथ सिंह
राग-संग्रह—गरीवदास
लघु सतसैया—लघुजन
विष्णुपद—लघुजन
सभाजीत रागमाला—रामदयाल

सभा-विलास—लाल कवि द्वारा संग्रहीत	राग-माला—अज्ञात
	राग-रत्नाकर—राधाकृष्ण
सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी	संगीत-दर्पण भाषा—बिहारीलाल
	संगीत माधव—प्रबोधानंद सरस्वती (संस्कृत)
जगन्मोहन—रघुनाथ कवि	संगीत-सुधा-सरोवर—बद्री नारायण चौधरी
नादोदधि—पूरण मिश्र	
भारत-वर्षीय इतिहास—पीत कविश्वर	प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग
पंचाग-निरूपण	
राग-कल्पद्रुम पदावली—कृष्णानंद व्यास	गोपी चंद रो ख्याल
राग-विवेक—पुरुषोत्तम	नृत्य विलास-ध्रुवदास
राग-सागर—विश्वनाथ सिंह	पद-रत्नावली—प्रियादास
राग-संग्रह-आनंदकिशोर सिंह	पद-राग-संग्रह—हितहरिवंश
वीणा-बदरीनाथ वर्मा	रस मुक्तावली—ध्रुवदास
संगीत-दर्पण-रागाध्याय तथा	रसराज—मतिराम
स्वराध्याय—हरिवल्लभ	रागकेदार—अज्ञात
संगीत-परिभाषा	रागमाला—अज्ञात
संगीत-प्रवेशिका	रागमाला—अज्ञात
	राग माला—मन्मालवीय वेनीराम
प्रयाग	रागरत्नाकर—सूरदास
हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग	रागरंग—काशीपति
	संगीत-प्रबंध-सार-भाषा—हरिवल्लभ
गरबी बारामासा	
गीत शंकर—भीष्म मिश्र (संस्कृत)	गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट
गोपी चंद रो ख्याल-मोतीलाल मारवाड़ी	
राग-पुगव-जगन प्रपन्न	दशम सार संगीत—रतनहरि

प्रकाशित ग्रंथ

अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, संपादक एवं अनुवादक रामलाल वर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली १९५९।

अपभ्रंश साहित्य हरिवंश कोछड़ हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की ओर से भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली।

अभिनव गीत-मंजरी—रतंजनकर

अभिनव-संगीत-शिक्षा—रतंजनकर

अवध के प्रमुख कवि—डा० ब्रज किशोर मिश्र

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीन दयालु गुप्त, भाग १+२।

आदिकाल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य—डा० हरिशंकर शर्मा, 'हरीश', मंगल प्रकाशन, गोविंद राजियों का रास्ता, जयपुर, प्रथम संस्करण, सन् १९६१।

आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद-योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथमावृत्ति, २०१४ वि०।

काव्य और संगीत—लक्ष्मीधर।

काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक, नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, बांस फाटक, वाराणसी, चतुर्थावृत्ति, सन् १९६१।

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, श्री गोपेंद्रत्रिपुर हरभूपाल विरचित, कामधेनुसमाख्यव्याख्योद्भासिता, तृतीय संस्करण, १९२२ ई०।

खैराशाह की बारामासी।

छंद-विज्ञान की व्यापकता, हरिशंकर शर्मा, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा।

जगद्विनोद, पद्माकर, संपादक, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, सं० २०१५।

जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, प्रकाशक, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१३।

तबला-तरंग, निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

तान-मालिका, राजा भैया, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

तान-संग्रह, रतनजनकर, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

ताल-अंक, प्रभुलाल गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस, १९५१।

दरबारी संस्कृति और मुक्तक परम्परा, त्रिभुवन सिंह, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथमावृत्ति, १९५८।

देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, इंडिया प्रिंटर्स, दिल्ली-६, तीसरा संस्करण, अप्रैल १९६०।

ध्वनि और संगीत, ललित किशोर सिंह।

नृत्य अंक, गणेश प्रसाद, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

पदावली, रामसखे, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

प्रसाद के गीत, गणेश खरे।

प्राकृत साहित्य का इतिहास, डा० जगदीश चंद्र जैन, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६१।

प्राचीन भारत में संगीत, धर्मावती श्रीवास्तव, प्रकाशक, भारतीय विद्या प्रकाशन, पो० ब० १०८, कचौड़ीगली, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६७।

प्रेम-पत्रिका, खूबचंद, 'रसीले'।

पुलकावली, बद्रीनाथ, संपादक डा० नगेन्द्र, प्रकाशक, आत्मा राम एंड संज, १९६२।

ब्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०।

बिहारी की वाग्विभूति, डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान, प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी १, उपस्करण, नूतन।

बिहारी रत्नाकर, जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रकाशक, ग्रंथकार, शिवाला, बनारस, नवीन संस्करण २, सन् १९५५।

ब्रज भाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६१।

भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, संपादक प्रभुदयाल मीतल प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

भजन-पुष्पावली, खेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित।

भरत का संगीत-सिद्धान्त—कैलाश चंद्र देव 'बृहस्पति'।

भातखंडे संगीत-शास्त्र, भातखंडे।

भारत का भाषा सर्वेक्षण, ग्रियर्सन।

भारत-संगीत—महाराज श्री गुरु प्रसाद सिंह।

भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका, डा० नगेन्द्र, भाग २, ओरियंटल बुक डिपो, १७०४ नई सड़क, दिल्ली।

भारतीय काव्यांग, डा० सत्यदेव चौधरी।

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, लूनिया।

भारतीय संस्कृति, भाग १–२, श्री मोहन लाल विद्यार्थी, प्रकाशक मोतीलाल मुकुल

मआरिफुन्नगमात, नव्वाब अली खां, विश्वम्भर नाथ भट्ट, संगीत कार्यालय, हाथरस।

मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ, परशुराम चतुर्वेदी, मुद्रक कमल प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६१ ई०।

मलयालम साहित्य का इतिहास, डा० के० भास्कर नायर, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९६०।

मान-राज विलास, मान कवि, संपादक मोतीलाल मेनारिया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, सं० २०१५।

मिश्रबंधु विनोद, भाग १, २, ३, प्रकाशक, हिंदी ग्रंथ प्रसारक मण्डली, खंडवा व प्रयाग, प्रथम बार, सं० १९७०।

रनजोर विलास, रनजोर सिंह साहब।

रस सिद्धान्त, स्वरूप, विश्लेषण, डा० आनंद प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-६, प्रथम संस्करण, १९६०।

राग-पीयूष, लाल महिपाल सिंह, कृष्णदास।

राग-प्रकाशिका, फतेहसिंह वर्मा, चन्द्र।

राग-रत्नाकर तथा भक्त-चिंतामणि।

राग-रत्नाकर, मल्कराम तथा अन्य कवि।

राग-सुधा, लाल महिपाल सिंह।

रागों के तात्त्विक विचार।

राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ, राजकुमारी शिवपुरी।

राष्ट्रीयगीत, रत्नजनकर।

रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, आगरा।

रीतिकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध, डा० उमा मिश्र, दिल्ली पुस्तक सदन, बँगलो रोड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् १९६२।

रीति-काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, प्रकाशक गौतम बुक डिपो, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९५३।

रीति-काव्य संग्रह, भूमिका लेखक एवं संकलन-कर्त्ता, जगदीश गुप्त, साहित्य भवन, प्रा० लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९६१ ई०।

रीति-शृंगार, संपादक डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम बार, १९५४।

वर्णमाला—रतनजनकर।

वर्ण-रत्नाकर, ज्योतिरीश्वर ठाकुर।

विक्रम स्मृति-ग्रंथ, सं० २००१ वि०, आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित तथा सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट के तत्त्वावधान में प्रकाशित।

शब्द-कल्पद्रुम, स्यार राजा राधाकांत देव बहादुरेण विरचित राजधान्यां, व्याप्तिस्तभिसनयन्त्रे मुद्रितः। ७१ नं० पाथुरियाघाट-ष्ट्रीट-स्थित भवनात् प्रकाशितश्च, शकाब्दाः १८०८।

शास्त्र परिचय, श्री पद।

साहित्य दर्पण, विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य श्री पं० शालग्राम शास्त्री, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, पो० बा० नं० ७५, वाराणसी, सं० २०१३ वि०।

सितार थ्योरी, निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

सितार-मार्ग, श्रीपद।

सिद्ध-साहित्य, धर्मवीर भारती।

संगीत-कौमुदी—निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

संगीत-दर्पण, दामोदर, संगीत, कार्यालय, हाथरस।

संगीत-पारिजात, महोबल, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

संगीत-राग-कल्पद्रुम, कृष्णानंद व्यासदेव 'रागसागर', प्रथम भाग, द्वितीय भाग।

संगीत-शाकुंतल, मिश्र।

संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री।

संगीत समय सार, संगीतकार श्री पार्श्वदेव, संपादक महामहोपाध्याय टी० गनपति शास्त्री, मुद्रक गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, १९२५।

संगीत-समुच्चय, वसु।

संगीत-सागर—प्रभुलाल, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

संगीत-सीकर, वि० ना० भट्ट और श्रीवास्तव, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

संगीत-सुदर्शन, पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री।

संगीत-सुधा, राजा रघुनाथ, संपादक, श्री पी० एस० सुंदरम् अय्यर, पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रकाशक म्यूज़िक एकेडमी, मद्रास, १९४०।

संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी।

संगीनानधरो—गोवर्धन धरो।

संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९५६ ई०।

स्वरमेल कलानिधि, संपादक एम० एस० रामास्वामी ऐयर, १९३२।

हिंदी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९४५।

हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ द्वितीय संस्करण, सं० २०१५ वि०।

हिंदी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत, उषा गुप्ता प्रकाशक, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथमावृत्ति, २०१६ वि०।

हिंदी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय संस्करण।

हिंदी नाटक, उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा।

हिंदी रीति परंपरा के मुख्य आचार्य, डा० सत्यदेव चौधरी, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९५९ ई०।

हिंदी शब्द-सागर, तृतीय भाग, श्याम सुंदरदास।

हिंदी साहित्य का अतीत, शृंगार-काल, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, सं० २०१५।

हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९५२।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० रामकुमार वर्मा।

हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल।

हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, डा० सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बा० नं० ७०, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् १९५७।

हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग), संपादक, डा० नगेन्द्र।

हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, देवी शरण रस्तोगी।

हिंदी साहित्य कोष, प्रधान संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, सं० २०१५।

हिंदुस्तानी संगीत की स्वर-लिपि, रतनजनकर।

हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति।

चित्र-रागमालाएँ।

भारत कला भवन, बनारस युनिवर्सिटी, बानरस।

रागमाला, गोविंद।

रागमाला...लछिमन दास।

श्री मोती चंद जी खजांची का चित्र-संग्रह।

रागमाला—अज्ञात कवि, मालवा शैली सं० १६५०-सं० १६७० ।
रागमाला—अज्ञात कवि, जोधपुर शैली ।

गल्डेन जुबली म्यूजियम, खजांची चित्रशाला ।

संगीत-दर्पण-हरिवल्लभ ।

लखनऊ स्टेज म्यूजियम, लखनऊ ।

रागमाला—अनंत कवि, बीकानेर शैली, सं० १७५६ ।
रागमाला—कल्याण कवि, बूंदी शैली, सं० १८५६ ।
पत्र-पत्रिकाएँ ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग १३, सं० १९८९; भाग १८, सं० १९९४; श्रावण, सं० १९९६; वर्ष ४५, सं० १९९७; वर्ष ४७, सं० १९९९; वर्ष ५२, सं० २००४; वर्ष ५४, सं० २००६; वर्ष ५५, सं० २००७ ।
शोध पत्रिका ।
सरस्वती, नवम्बर, १९३३ ।
साहित्य-समालोचक भाग १, अंक १, जनवरी १९२५ ।
हिंदी अनुशीलन, वर्ष १४, अंक २ ।

इंगलिश पुस्तकें

A short Historical Survey of the Music of Upper India Bhatkhande

Annals and Antiquities of Rajasthan, Lt Col James Tod, with a preface by Douglas Sladen, Routledge and Kegan Paul Ltd, Broadway House, 68-74 Carter Lane, E C 4 London

Aspects of Indian Music, Published by the Director, Publication Division and printed in India by the Manager, Government of India Press, Faridabad

Dictionary of Psycho-Analysis, Freud Edited by Nandor Fodor and Frank Gaynor

Fall of the Mughal Empire, Vol II & III, Jadunath Sirkar, Published by M C Sarkar & Sons 14, Bankim Chatterjee Street, Calcutta 12, Vol II, 1950, Vol III, 1952

Glimpses of Medieval Indian Culture Yusuf Husain, D, Litt (Paris), Published by Jayasinha, Asia Publishing House, Bombay 1957

Historical Development of Indian Music, Swami Prajnanand

History of Aurangzib, Vol V, Jadunath Sirkar

History of India, edited by John Dowson, (Elliot & Dowson's History)

History of Muslim Rule, by Ishwari Prasad, Published by Indian Press Private Ltd, Allahabad, 1958

History of Rajputana, Dr Gauri Shankar Hira Chand Ojha

Indian Music and its Instruments, Ethel Rosenthal

Life and Conditions of the People of Hindustan Dr K. M Ashraf, Jiwan Prakashan (Regd) Educational Publishers Delhi

Mughal Rule in India, S M Edwardes and H L O Garrett, M A, Published in India by S Chand & Co by arrangement with Messers Oxford University Press, Bombay, 1956

Music of India William Jones and N Augustus Willard, Published by Anil Gupta for Sushil Gupta (India) Private Ltd 12 3-C, Galiff Street, Calcutta 4 and Printed by K C Pal, Nabjiban Press 66 Grey Street, Calcutta 6

Rulers of India—Aurangzib by S Lane Poole, Published by S Chand & Co by arrangement with the Oxford University Press, Bombay

Sketches of Rulers of India, Vol IV, by G D. Oswell, Henry Frowde, M A, Publisher to the University of Oxford, London, Edinburg, New York, Toronto and Melbourne

Storia-do mogor or Mogul India by Niccalao Manucci, Translated by

William Irvine, Vol. I & III. London, John Murray, Albemarle Street, Published for the Government of India, 1907.

Studies in Indian History and Culture, Ghoshal. Studies in Indo-Muslim History, Vol. I & II (A critical commentary on Elliot & Dowson's History of India) by Late Shahpurshah Hormasji Hodivala with a foreward by Sir Richard Burn, K.T., C.S.I., Bombay, 1939.

The Cambridge History of India. Planned by Lt. Col. Sir Wolseley Haig and Edited by Sir Richard Burn, Vol. IV. The Mughal Period, Published in India by S. Chand & Co by arrangement with the Cambridge University Press, London, 1957.

The Crescent in India. A Study in Medieval History by S. R. Sharma, M.A., Published by J.V. Patel for Hindi Kitabs Ltd., Churchgate Street, Bombay. 1.

The Mughal Empire, 1526-1803 A. D., Asirvadi Lal Srivastava, III Edition, Published by S.L. Agarwal & Co. (Private) Ltd., Educational Publishers, Agra.

The Story of Indian Music, O. Goswami.

Travels in India, Jean Baptiste.

Travels in the Mogul Empire. 1916, Bernier.

था। रामदास और महापात्र उसके समय के गायक थे।[१] औरंगज़ेब भी संगीत समझता था।[२]

मुग़ल राजाओं की तथा उन्हीं के अनुकरण पर उनके आश्रित सामंतों आदि की रुचि कलाकारों को अपने दरबारों में एकत्र करने की तथा कलाकृतियों के एकत्रीकरण और संरक्षण की ओर अधिक थी। साथ ही प्रसिद्ध और अच्छे कलाकारों को भी दरबारों में इकट्ठे करने का शौक था, तभी गायक किसी न किसी दरबार में आश्रय पा ही जाते थे। प्रत्येक आश्रयदाता अपने दरबारी गायक से रागमालाएँ लिखवा कर अपने दरबार की चित्रशाला अथवा पुस्तकालय में रखता था।

लगभग सभी राजाओं के पुस्तकालयों में किसी न किसी के द्वारा लिखा हुआ संगीत-ग्रन्थ अवश्य मिलता है। यह अवश्य है कि जिस राजा के दरबार में अच्छा संगीतज्ञ कवि नहीं होता था, वह अन्य प्रसिद्ध कवि की रागमाला अथवा अन्य संगीत-ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराके अथवा उसे चित्रित कराके रखता था। प्रमाण स्वरूप हरिवल्लभ के 'संगीत-दर्पण' की प्रतिलिपियां कांकरोली, नाथद्वारा, जयपुर, भरतपुर, उदयपुर, बनारस तथा प्रयाग आदि अनेक स्थानों पर पूर्ण अथवा अपूर्ण स्थिति में प्राप्त हैं[३], जबकि हरिवल्लभ मूल रूप से पंजाब का संगीतज्ञ है।

साहित्यिक परिस्थितियां

राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अतिरिक्त शृंगार युगीन साहित्यिक परिस्थितियों ने भी संगीत के पोषण और अभिवृद्धि में सहायता दी।

शाहजहां के स्वयं कलाप्रिय होने और कलाकारों को एकत्र करने के शौक ने कवियों को दरबारों में आश्रय लेने का अवसर दिया। परिणामस्वरूप, प्रतिभा कलाकारों के अधीन न होकर राजाओं के अधीन हो गई और भक्ति काल में भावुक हृदयों की जो अनुभूति सहज-उद्गार रूप में स्वयं ही प्रकट होकर कला की सृष्टि करती थी, वह शृंगार युग में आकर राजाओं की इच्छानुसार व्यक्त होने लगी। जिन विषयों और कल्पनाओं से आश्रयदाता को सुख मिलता, उसका अहं सन्तुष्ट होता, केवल वे ही भाव दरबार में ग्राह्य होने, उन्हीं का आदर होता, अतएव कलाकारों की सहज प्रतिभा राजाश्रित हो गई। ये सामन्तों

---

१. "...According to the court chronicler he (Shahjahan) was an accomplished vocalist and had so attractive a voice that many pure souled Sufis and holy men with hearts withdrawn from the world, who attended these evening assemblies, lost their senses in the ecstasy produced by his singing. Like his predecessors he was a patron of singers, two of the chief vocalists at his court being Ram Das and Mahapatra." Mughal Rule in India. Edwardes and Garrett, p. 337.

२. Mughal Rule in India, Edwardes and Garrett, p. 339.

३. उक्त स्थानों के पुस्तकालयों के हस्तलिखित ग्रन्थों को लेखिका ने स्वयं देखा है।

की इच्छानुसार उनका यशगान करने लगे अथवा उनकी वासनाओं को मानसिक तुष्टि देने लगे। जिस प्रकार 'रीतिकाल की कविता में आश्रयदाता की रुचि के अनुसार वंश परंपरा का यश-गान, विलास-तुष्टि के लिए शृंगार रस में बद्ध, विभिन्न छन्द, दरबारी संस्कृति के अनुकूल चमत्कारपूर्ण अलंकार, और परस्पर स्पर्धा के लिए विशिष्ट उक्तियाँ कविता-कामिनी को आभूषित करने लगीं'[1], उसी प्रकार संगीत में राज दरबार के उपयुक्त रागों का प्रचलन हुआ, जैसे शृंगार रस युक्त दरबारी कानड़ा, (जिसमें कहीं-कहीं सीमातिक्रमण करने वाले शृंगार तक का समावेश हुआ।)[2] इस प्रकार के अनेक गीतों की बन्दिशें हुईं, चपलता को द्योतक ठुमरी, दादरा, ख्याल, धमार, और गजल आदि का विकास हुआ और परस्पर स्पर्द्धा के लिए तानों में मोड़-तोड़, मुरकियाँ, तथा मींड आदि के प्रयोग से गीत को अत्यधिक अलंकृत करने का शौक भर गया।

चमत्कार प्रियता

शृंगार युग में फारसी कविता दरबार में आ चुकी थी। उसकी स्पर्धा में अपने को भी दरबार में महत्त्वपूर्ण बनाने का लोभ हिन्दी कवियों में आना स्वाभाविक ही था। एक ओर तो मनोरंजन के हेतु लिखी जाने वाली कविता में गम्भीर भावों की कमी हुई और दूसरी ओर बाह्य प्रदर्शन, अलंकार, छन्द की विकट-योजना, उक्ति-चातुर्य और शब्द चमत्कार की अति हुई।[3] काव्य-कला के साथ ही अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहन मिला। विशेष रूप से संगीत कला से सम्बद्ध सामग्री का संरक्षण हुआ, और संगीत के कला पक्ष और शास्त्रीय पक्ष दोनों में ही चमत्कारिता भी आ गई।[4] इस प्रकार संगीत ने एक नया रूप धारण करना आरम्भ किया, जिसमें शास्त्रीयता और व्यावहारिकता का योग था।

भक्तिकाल में जो रचनाएँ हुईं थीं, उनमें संगीतात्मकता अवश्य मिलती थी, परन्तु केवल संगीत को विषय बना कर हिंदी में लिखी जाने वाली रचनाओं का एक प्रकार से सर्वथा अभाव था। यह कला-प्रेमी युग सबसे अधिक संगीतज्ञों की प्रतिभा को प्रोत्साहित करने में समर्थ रहा और उसी के कारण आज हम देखते हैं कि इतने अधिक संगीत-काव्य की रचना इस काल में हुई, जो न इसके पूर्व युगों में हो सकी थी और न इसके पश्चात् हुई। संगीत का सम्बन्ध राग-रंग से है, इसीलिए उसको विलास की सामग्री समझे जाने के

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र।

२. 'चुनरिया मेंइका रंगा दे रे छैला, रंगरेजा ते।
पिय कूं मैं कछु ना मो पास रुपया नहीं।
मोल चहे तो क्या करू, मोरे अधरन को रस ले जा तू।'
रस-तरंग—जवानसिंह जी महाराज, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३. 'दूसरी बात राज सभा की कविता के लिए यह अपेक्षित होती है कि उसमें कला-पक्ष प्रधान हो। जिस रचना में चमत्कारातिशय न होगा वह सभासदों को अधिक रंजित नहीं कर सकती।' हिन्दी साहित्य का अतीत-शृंगार काल, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३८२।

४. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० २६।

कारण भक्ति काल में उसका क्षेत्र सीमित रहा तथा संगीतज्ञों के आदर्श भिन्न रहे।

भक्तिकाल का संगीत जिस रूप में प्राप्त है, उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। हिन्दू-समाज संगीत को प्रधानतया एक धार्मिक कला व कृत्य समझता था और संगीत के प्रति आदर व श्रद्धा का भाव रहता था। अतः सीमित रूप में केवल भक्तिपूर्ण भजन को प्रभावशाली बनाने के लिए रागों का प्रयोग हुआ, न कि रागों के स्वरूप का विस्तार करने के लिए गीतों को गाया गया। संगीत शास्त्र गौण था और ईश्वरोपासना प्रमुख थी।

इधर आधुनिक काल का बुद्धिवादी मस्तिष्क संगीत के माधुर्य को ग्रहण न कर सका, फलस्वरूप, यद्यपि शृंगार युग के पूर्व और पश्चात् दोनों ही कालों में संगीत को माध्यम बनाकर क्रमशः पद और गीतों में रचना हुई, तथापि संगीत-शास्त्र सम्बन्धी साहित्य के कोष की वृद्धि करने में केवल शृंगार युग ही सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर सका।

आश्रयदाता की आज्ञा

दरबारी कवियों को अपने आश्रयदाताओं की आज्ञानुसार रचना करनी पड़ती थी, अतः राजाओं की रुचि संगीत की ओर होने के कारण बहुत से कवि संगीतज्ञ न होते हुए भी संगीतकार हुए और अपने आश्रयदाता की आज्ञा पर उन्होंने रागमालाओं की रचना की,[1] जिनमें रागों का वर्णन नायक और नायिका भेद के अनुसार शृंगार और रतिभाव से पूर्ण होता था।[2] रागों का स्वरूप वर्णन और फिर उनके लक्षण आदि बताकर उदाहरण के रूप में उन्होंने ऐसे पद उपस्थित किए हैं, जिनमें उनकी काव्यात्मकता का भी परिचय मिलता है और संगीत का भी ज्ञान व्यक्त होता है। ऐसी रागमालाएँ संगीत की शास्त्रीय पद्धतियों को बताने में भले ही अधिक सहायक न हों, परन्तु उनसे संगीत की लोकप्रियता का परिचय अवश्य मिलता है, और वे शृंगार साहित्य में वृद्धि भी करती हैं।

पारस्परिक स्पर्धा

दरबारों के कवियों की पारस्परिक स्पर्द्धा ने भी संगीत-काव्य की वृद्धि में योग दिया। राग-रागिनियों का वर्णन नायक-नायिका भेद के अनुरूप होता था। प्रत्येक राग, नायक और रागिनी नायिका के रूप में वर्णित होती थी। प्रत्येक संगीत-कवि अपनी

---

१. 'उस समय दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के साधन होते थे और उनके मनोरंजन की साधना के लिए भी बहुत सा काम और साथ ही साथ काव्य की रचना किया करते थे।' हिन्दी साहित्य का अतीत-शृंगार काल, पं० वि० प्र० मिश्र, पृ० ३८०।

२. 'काव्य और चित्र कला में जिस प्रकार नायिका भेद का चित्रण अबाध गति से होने लगा उसी प्रकार विविध राग-रागिनियों को उनके गुण तथा प्रभाव के आधार पर नायक तथा नायिकाओं के रूप में बद्ध कर उनकी व्याख्या की गई।'
हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० २८।

रागिनी-नायिका में किसी विशिष्टता और नवीनता का समावेश करना था और शैली में भी आलंकारिता और चमत्कारिता का अधिक से अधिक प्रयोग उसका लक्ष्य होता था।

रीति ग्रंथों का प्रचार

शृंगार युग अथवा रीतिकाल में मुख्य प्रवृत्ति 'रीति' ग्रंथों की रचना की थी। 'रीति' शब्द की व्याख्या तो अनेक प्रकार से की गई है, परन्तु सभी अर्थों को सामने रखते हुए हम एक निष्कर्ष पर आते हैं कि जो भी काव्य किसी विशेष रीति (शैली) को अपना कर लिखा गया हो, वही रीति काव्य है। विशेष रीति से तात्पर्य है आचार्यों के द्वारा बताए गए मार्ग विशेष का अनुकरण। अतएव जितना भी काव्य इस समय में लिखा गया, वह सभी संस्कृत काव्यों के आधार पर अथवा काव्य शास्त्रों में बताए गए विविध मार्गों को आधार बना कर लिखा गया। इसी प्रवृत्ति के कारण रीतिकाल के काव्यगत विषयों में मौलिकता का एक प्रकार से सर्वथा अभाव है।[1] इस प्रवृत्ति ने संगीतज्ञों के मस्तिष्क को भी प्रभावित किया और उनके क्षेत्र को भी संकीर्ण कर दिया। फलतः समस्त संगीत काव्य रीति ग्रन्थों की प्रणाली पर, संस्कृत संगीत-ग्रन्थों के अनुरूप लिखे गए। संस्कृत ग्रंथों के नियम लक्षणों के रूप में ज्यों के त्यों रख दिए गए और उन्हीं लक्षणों के अनुसार उदाहरण प्रस्तुत कर दिए गए, यद्यपि संगीत का प्रचलन रूप उससे भिन्न था।

लक्षण और लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण

इस युग में जिस प्रकार अलंकार, नायिका भेद तथा छंदशास्त्र आदि विषयों पर लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखे गए उसी प्रकार संगीत को विषय बना कर भी लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखे गए। इस परम्परा में रागमालाओं का नाम उल्लेखनीय है। प्रायः सभी रागमालाएँ इसी परम्परा में रखी जा सकती हैं।

आचार्यत्व का शौक

काव्य, कला तथा अन्य क्षेत्रों में लक्षणों का निर्धारण करने वाला कवि आचार्यत्व के पद से विभूषित किया जाता था। उस युग में आचार्यत्व का पद प्राप्त करना बहुत बड़ा प्रलोभन था। इस लोभ ने भी संगीत काव्यों के निर्माण को प्रेरणा दी। कितने ही संगीतकार लक्षण ग्रंथ लिखकर आचार्य-पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुए।

संस्कृत काव्य का आधार

इस युग के लगभग सम्पूर्ण संगीत-साहित्य का आधार संस्कृत-साहित्य है। मौलिक रचनाएँ बहुत ही कम हैं। इसलिए संस्कृत काव्य में वर्णित जो विषय इस युग के अनुकूल

---

१ 'इन सब विवेचनाओं में नूतन मौलिकता का प्रायः अभाव ही रहा।' हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २८।

पड़े, उन्हीं का पिष्ट-पेपण शास्त्रकारों में मिलता है। काव्य-शास्त्र और छंद-शास्त्र के समान, संगीत शास्त्र भी इस युग की पांडित्य-प्रदर्शन-प्रियता के अनुकूल था। संगीत, विलासी प्रवृत्ति और रस-लोलुप सामंतों को सन्तोप प्रदान करने वाला था ही, अतः संस्कृत साहित्य से संगीत शास्त्र ज्यों का त्यों ले लिया गया।

साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत जानने वाले हिन्दी के कवि काव्य-शास्त्र-सम्वन्वी नियमों का हिन्दी में यथारूप प्रतिपादन कर रहे थे। एक तो उक्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के विचारों और सिद्धान्तों का विरोव करना उनके साहस और सामर्थ्य दोनों ही के वाहर था, दूसरे हिन्दी में रचना करना भी हेय समझा जाता था; फिर, संस्कृत काव्यों में वर्णित सिद्धान्तों से रहित हिन्दी रचनाएँ तो सुपठित जनता के लिए निम्नकोटि की ही थीं।[1] इसी के अनुरूप संगीत सम्वन्वी सिद्धांतों को भी हिन्दी रचनाओं में ज्यों का त्यों ले लिया गया।

धार्मिक परिस्थितियाँ

देश की वार्मिक स्थिति ऐसी थी, जिसने स्वाभाविक रूप से संगीत-काव्य की सृष्टि को प्रोत्साहित किया। भक्तिकाल के अन्त में कृष्ण-राधा की माधुर्य भक्ति का ही प्रचार अधिक था। माधुर्य भक्ति और संगीत का अनन्य सम्वन्व था। तत्कालीन कुछ भक्ति सम्प्रदायों ने संगीत को विशेप प्रश्रय दिया था। इनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

(क) वैष्णव भक्ति

१. राम भक्ति   २. कृष्ण भक्ति

(ख) संत भक्ति

१. सूफ़ी   २. निर्गुण

दोनों प्रकार के धार्मिक साहित्य में संगीत की अनिवार्यता थी। इनमें भी वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण भक्तों ने तथा सन्तों में निर्गुण सन्तों ने पद, कीर्त्तन तथा भजन आदि में संगीत को अधिक प्रश्रय दिया; अतः धार्मिक परिस्थितियों ने भी संगीत-काव्य के पोषण में सहायता दी।

इनसे प्रभावित रीतिकाल में रचे गए साहित्य में निम्नलिखित दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—

> एक, जो भक्ति भाव से प्रसूत थीं तथा इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम के परिणाम स्वरूप लिखीं गई थीं।
>
> दूसरी, जो राधा और कृष्ण को नाम मात्र के लिए आलम्बन वनाए थीं, वस्तुतः कवि की शृंगारिक वृत्तियों को सन्तुष्ट करनेके लिए लिखी गई थीं।

पहले प्रकार के काव्य में सन्त और भक्ति-परम्परा के गीत है, जिनमें इष्ट की आठों-याम की चर्या के अनुकूल वनाए गए गीत हैं, जिन्हें अधिक रसपूर्ण वनाने के लिए राग-रागिनियों में गाया जाता था।

---

१. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३३।

दूसरे प्रकार के गीतों में संगीत ही प्रधान हो गया था। घोर शृंगारिकता को बचाने के लिए राधा और कृष्ण को आलम्बन बनाया गया था। रसिकता और माधुर्य की वृद्धि करने के लिए राग रागिनियों में विशेष रूप से बाँधा गया था, अतएव धर्म को आंशिक रूप में अपनाते हुए भी इन गीतों में शृ गार की ही प्रमुखता है।

मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ

औरंगज़ेब के समय में 'संगीत का शव' निकालने की किंवदन्ती के आधार पर[१] साहित्यिकों और इतिहासकारों ने अभी तक यह प्रमाणित किया है कि औरंगज़ेब बहुत अधिक संगीत विरोधी था उसने 'शव' को इतना गहरा दफनाने की आज्ञा दी, जहाँ से उसकी गूंज भी न आ सके।

इस किंवदन्ती की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षा करने पर यह सिद्ध होता है कि औरंगज़ेब भी वास्तव में संगीत के प्रभाव और शक्ति को खूब समझता था। उसके समय में अन्य पूर्वोल्लिखित परिस्थितियों के कारण, संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर था। वह जानता था कि *जन-साधारण संगीत माधुर्य से प्रभावित है अतः यदि सामन्त वर्ग इसी में डूबा रहा* तो राजनीति सम्बन्धी कार्य शिथिल पड़ जाएगा। एक कुशल राजनीतिज्ञ और बादशाह के लिए यह बहुत आवश्यक था कि वह सर्वप्रथम राजनीति के इस प्रबल शत्रु, संगीत को निर्बल बना दे। यही कारण था कि उसने थोड़ी भी छूट देनी उचित न समझ कर बहुत कठोरता से काम लेना चाहा और संगीत पर रोक लगाकर राज्य के संचालन के हेतु सामन्तों में आई हुई विलास-प्रियता और अकर्मण्यता को दूर करने की चेष्टा की।

संगीत अपने सर्वांगीण उत्कर्ष के साथ जनता के लिए आनन्द तथा मनोरंजन का *साधन तो था ही, उसमें विकार उत्पन्न होने देखकर औरंगज़ेब को उसके दमन की कठोर* आज्ञा देनी पड़ी। यदुनाथ सरकार ने एक स्थान पर लिखा है कि उस समय की एक प्रथा सी बन गई थी कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ महात्माओं की समाधि पर दर्शन करने के बहाने घूमने फिरने जाया करते थे। उसका उद्देश्य धार्मिक न होकर मनोरंजन होता था,

---

१. 'About one thousand of them, assembled on a Friday when Aurangzib was going to the mosque They came out with over twenty highly ornamented biers, as is the custom of the country, crying aloud with great grief and many signs of feeling as if they were escroting to the grave-some distinguished defunct From afar Aurangzib saw this multitude and heard their great weeping and lamentation, and, wondering, sent to know the cause of so much sorrow The musicians redoubled their outcry and their tears, fancying the king would take compassion on them Lamenting they replied with sobs that the King's orders had killed music, therefore they were bearing her to the grave Report was made to the king, who quite calmly remarked that they should pray for the soul of music and see that she was thoroughly well buried" Manucci, Stona do mogor, ed *Irvin II p 346*

अतः औरंगज़ेब को इसके ऊपर कठोर नियन्त्रण लगाना पड़ा।[१] इसी प्रकार का 'मनोरंजन' सम्भवतः संगीत भी बन गया था, जिसे नियन्त्रित करना अनिवार्य हो गया।

वास्तव में औरंगज़ेब प्रारम्भ में संगीत-विरोधी नहीं था। समाज में बढ़ते हुए दुराचारों ने ही उसे कठोर बनने के लिए विवश किया। एडवर्ड्स और गैरेट ने लिखा है कि स्वयं औरंगज़ेब भी नर्तकियों और संगीत जानने वाली स्त्रियों को अपने दरबार में बुलाता था। बख्तावर खाँ के अनुसार औरंगज़ेब संगीत-कला को भली-भाँति समझता था और अपने शासन के प्रारम्भिक काल में उसने संगीत को रोकने का प्रयत्न भी नहीं किया।[२]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शृंगार युग में संगीत का विकास रीति-परम्परा पर हो रहा था। उसका प्रमुख आधार संस्कृत साहित्य था और उसमें मौलिकता की कमी थी, यद्यपि उसका सम्बन्ध, काव्य और चित्रकला से स्थापित हो गया था। लोक-जीवन के साथ भी उसका सम्पर्क स्थापित हुआ था, जिससे, उसमें जन-जीवन के मनोभावों की सरल तथा सफल अभिव्यंजना होती थी।

---

१. "The opportunity was utilised for pleasure rather than piety and the spread of immorality that it caused, led Aurangzib to issue an order for stopping the practice, but it was too popular to be put down." History of Aurangzib, J.N. Sirkar, p.471.

२. "Notwithstanding the ban, which he placed on music, however, Aurangzib, according to Munucci's testimony continued to entertain dancing and singing-girls in the palace, for the diversion of his ladies, and so far unbent as to confer special names on their female superintendents. Bakhtawar Khan states that the Emperor underssood music thoroughly and made no attempt to interfere with the art during the first few years of his reign. His subsequent objection to music was, based on the teaching of the great Muhammadan Imam, Shafi." Mughal Rule in India, Edwardes and Garrett, p.338.

शृंगार युगीन संगीत-काव्य के विविध रूप और वर्गीकरण

यह सिद्ध किया जा चुका है कि शृंगार-युगीन परिस्थितियाँ संगीत के उत्कर्ष के लिए अत्यन्त अनुकूल थीं और संगीत वास्तव में इस समय अपनी चरम कलात्मकता को प्राप्त कर चुका था, अत यह कहना कि इस युग मे संगीत ह्रासोन्मुख था, संगत नहीं है। जिस प्रकार रीति काल मे काव्य शास्त्र के अनुसार कविता कामिनी सुन्दरतम अलंकृत रूप मे साहित्य के मंच पर आई, उसी प्रकार शास्त्रीय नियमों म आबद्ध संगीत-काव्य भी प्रचुर मात्रा मे लिखा गया। यह स्पष्ट है कि संगीत भी शृंगार-भावना के इस रंग से अपने को विलग न रख सका, जिसमे समस्त युग रँग रहा था, फलत राग-रागिनियो के स्वरूप मे भी नायिकाओ का राग-रंजित रूप देखा गया। गीतो मे विलासमयी अभिव्यक्तियो को स्थान मिला। आश्रयदाताओ की तुष्टि के लिए गंभीर ध्रुपद और धमार का स्थान चचल गायन, ख्याल, टप्पा, ठुमरी और तराना आदि को दिया जाने लगा। रीति काव्यो की भाँति संगीत को भी अधिक से अधिक शास्त्रीय नियमो मे जकड लेने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप रागो के मिश्रण से अनेक रागिनियो का निर्माण किया जाने लगा। संगीत शास्त्र की परिभाषाओ को भी वे चमत्कार-प्रियता से अलग न रख सके और स्वरो की सरगम लिखते समय 'स्वर-कल्प' लिखे गये। 'स्वर-कल्प' मे संगीत के सात स्वरो का इस प्रकार प्रयोग किया जाता है, जिसमे कुछ काव्यात्मक सौन्दर्य भी उपस्थित हो जाए अर्थात् इन्ही सात स्वरो (स रे ग म प ध नी) से कविता का निर्माण भी किया गया। यह स्वर-कल्प निश्चय ही अलकार प्रेम के परिणाम-स्वरूप लिखे गए। इसे हम एक विशेष प्रकार के श्लेष या 'राग-श्लेष' के नाम से पुकार सकते हैं। श्लेष अलकार के अनुसार इसमे दो अर्थ तो होते हैं, परन्तु उनमे से एक अर्थ राग के स्वरो का निर्देश करता है। उदाहरण के लिए, श्री पूर्ण मिश्र कविरागी रचित 'संगीत-नादोदधि' का एक 'स्वर-कल्प' देखा जा सकता है —

"मुरस सोधे सीस गोपी गोरस स्याम गोप धे पागे रस।
धोन धनीन सो रसें पैगो रस।
पेम पैपो धनि साधे पगि रसे। सिरे सोरसो धन सो माग रस।
मुररि सो धेन सोरे रेसे साधि पूरण सो पागो रस।"[1]

इस पद मे एक ओर तो गोपी के प्रेम रस से पूर्ण होकर दूध बेचन के लिए जाना और कृष्ण का रस माँगना आदि अर्थ लगाया जा सकता है और दूसरी ओर 'स रे स, स

---

१. म्यूजियम, अलवर।

ध, सा स, ग प, ग रे स, सा म, ग प ध प ग रे स' आदि स्वर समुदायों की सरगम (स्वरलिपि) बनाई जा सकती है।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि औरंगज़ेब के भय से संगीत की ध्वनि दफ़ना दी गई, तथापि संगीत-शास्त्र तथा कला अपने पूर्ण उत्कर्ष पर काव्य में विकसित होता रहा। इसके अतिरिक्त यद्यपि दरबारों में गायकों का अभाव हो गया, तथापि राजाओं में संगीत-प्रियता के परिणाम स्वरूप अनेक रागमालाओं का निर्माण हुआ।

शृंगार युग के प्राप्त संगीत-काव्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

१—सैद्धान्तिक संगीत-काव्य

२—व्यावहारिक संगीत-काव्य

३—जैन रागमालाएँ।

सैद्धान्तिक संगीत काव्य के अन्तर्गत उन रचनाओं को लिया जा रहा है, जिनमें संगीत के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। संगीत-शास्त्र पर लिखे गए ऐसे ग्रन्थ हमें दो प्रकार के मिलते हैं।

प्रथम, सर्वांग-निरूपक हैं, जिनमें संगीत के प्रत्येक अंग पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय, जिनमें केवल विशिष्ट अंगों का ही विवेचन किया गया है।

व्यावहारिक संगीत-काव्य के अन्तर्गत उन रचनाओं को लिया गया है, जो रागबद्ध थीं तथा गेय रूप में व्यवहार में प्रयुक्त होती थीं।

जैन रागमालाएँ नाम मात्र के लिए उल्लेखनीय हैं। उनका विषय प्रस्तुत प्रबन्ध से सम्बन्धित नहीं है, वह जैन ग्रन्थ हैं। कवि ने अपने इष्ट का अथवा किसी कथा का उल्लेख किया है, परन्तु रागमाला का आवरण उसे पहना दिया है। किसी न किसी राग में बाँध कर मुक्तक छंदों में वर्णन किया गया है, अतः आवश्यक समझ कर यहाँ उसका उल्लेख किया गया है।

सर्वांग निरूपक ग्रंथ

समस्त सर्वांग निरूपक ग्रन्थों का सूक्ष्म विवेचन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं।

ऐसे ग्रन्थ संख्या में कम ही हैं, परन्तु अपनी विषय-वस्तु में परिपूर्ण हैं। संगीत-शास्त्र का कोई भी अंग ऐसा नहीं है, जिस पर दृष्टि न डाली गई हो। ग्रन्थ-परिचय में इसका उदाहरण दिया गया है।

इनमें नाद, ग्राम, मूर्छना, स्वर, श्रुति, राग, आलाप, तान, वाद्य तथा ताल आदि का संपूर्ण विवेचन है। कहीं कहीं इन्हीं लक्षणों के साथ कुछ उदाहरण स्वरूप कवित्त भी दिए गए हैं, परन्तु ऐसे कवित्त अपवाद स्वरूप ही प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, मूर्छना का विस्तृत वर्णन करते हुए कवि हरिवल्लभ कहता है—

मूर्छना मे होत है सात सात क्रम आइ।
अपनी बुद्धि प्रमान सो तिन कों कहों बताइ।

अतर सुर उच्चार करि प्रथमादिकनि गनाइ ।
यहो क्रम त होत है य सब क्रम के भाइ ।
मध्या तिन की होत है नैन अक्हर नैन ।
गुनजन जे समभत इनै तिन को बहु सुप दैन ।
षाडव वोडव कीजिए मूरछना को आनि ।
सुद्ध तान तब होत है सह जु चित म जानि ।
सात मूर्छना षड्ज की तिन प्रति चारि घटाउ ।
रिषम रु षड्ज र पचमों बहुरि निषाद जनाउ ।
इहि विधि षाडव तान ये बीस रु आठ गनाई ।
मध्यम हूँ के तान अब कछु वक कहो बनाई ।'[1]

इसी प्रकार सगीत के अग प्रत्यग का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है ।

लगभग सभी ग्रन्थो का आधार शार्ङ्गदेव की सगीत-रत्नाकर है। नृत्याध्याय के अन्तर्गत 'आश्रय' की दृष्टि के विभिन्न भदो म से एक भेद लज्जिता' के वर्णन म दोना ग्रथो म इस प्रकार साम्य है—

'परघ पलक जु नीचें लागें । मन म लज्जा अति ही जागें ।
लज्जा दृष्टि कहत है याहि । सब कवि कोविद चित मे चाइ ।'

(सगीत-दर्पण—हरिवल्लभ)

X X X

'पतितोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जाया लज्जिता मता । ४११ ।

(सगीत रत्नाकर—शार्ङ्गदेव)

'सगीत-दर्पण' सगीत महोदधो' 'नारद-सहिता' आदि अन्य सस्कृत सगीत ग्रन्थो का आधार भी मिलता है, परन्तु स्पष्ट रूप से ऐसा जान पडता है कि इन कवियो ने स्वय उन ग्रन्थो का अध्ययन नही किया है ।[2] किसी ने प्रकट रूप मे उसका आधार माना है और किसी ने नाम कुछ और देकर उन्ही मान्यताओं को माना है । कवि उस्तन ने अपनी राग-माला का प्रारम्भ इस प्रकार किया है—

---

१ 'संगीत-दर्पण'—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर ।

२ 'नारद सहितायां (१।७।) श्री भगवानुवाच
नाह वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।
अथ नादोत्पत्ति
अथ नादस्य चोत्पत्ति वक्ष्ये शास्त्र विशेषत
धर्मार्थ काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम् ।'

राग कल्पद्रुम—श्रीकृष्णानन्द व्यास देव रागसागर, भाग १।

'भरथ नाद ग्रंथ की साख ।
नाद ग्राम स्वरापदा विधि गुणागर्गालिया तालया ।
आलित्यागमका श्चताल रचना जोति कला मूर्छना ।
मुख्याद्यंग तुरंग राग मरण देसी चसालंगणा ।
गीति स्यापि समस्तसुप्ट सुषमा स्थाना तरपातुके ।
(उस्तत कृत रागमाला से)[१]

इसके अतिरिक्त राग परिवार और स्वरूप के वर्णन में कुछ स्थलों पर मौलिकता भी दृष्टिगत होती है, जिसका उल्लेख 'संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' में किया गया है।

अधिकतर इन ग्रन्थों का विभाजन शार्ङ्गदेव के 'रत्नाकर' के समान सात अध्याय, क्रमश: स्वराध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय और रागाध्याय में हुआ है।

इन ग्रन्थों की रचना कवियों के आश्रयदाताओं की रुचि और आग्रह के फलस्वरूप हुई है :-

कवि राधाकृष्ण अपने 'राग-रत्नाकर' के प्रारम्भ में कहते हैं—

'दिन रैनि भक्ति व्रजराज की भीमसिंह मन मानिये ।
इहि हेतु कह्यो कवि कृष्ण सों रस संगीत बखानिये ।'

'संगीत-नादोदधि' के रचयिता श्री पूर्ण मिश्र 'कविरागी' को भी आश्रयदाता से ही प्रेरणा प्राप्त होती है।

'प्रेम कियो कवि ख्याल सों वीर शाह अवतार ।
तासों पायो भेद हम नाद वेद विस्तार ।'[३]

सभी ग्रन्थों की भाषा प्रमुख रूप से ब्रज है, परन्तु कहीं कहीं प्रान्तीयता के प्रभाव के कारण उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी अथवा अन्य ग्रामीण शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसका कारण स्पष्ट ही संगीतज्ञों का विभिन्न समाजों में प्रवेश तथा समादर पाना और उनकी भ्रमणशीलता है। संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय उस पर प्रकाश डाला गया है।

इन ग्रन्थों में शास्त्र का प्रतिपादन कवि का मुख्य उद्देश्य है, अत: काव्य कला की दृष्टि से ये अधिक उत्कृष्ट नहीं हो पाए हैं। फिर भी जहां कवि को कल्पना का आश्रय लेने का अवसर प्राप्त हुआ है, वहीं उसने कलात्मकता का समावेश कर दिया है। रागाध्याय में रागों का स्वरूप-वर्णन और शृंगार-वर्णन ही इसका प्रमाण है।

---

१. उस्तत कृत 'रागमाला' में यद्यपि यह उदाहरण 'भरथ नाद' ग्रन्थ से लिया हुआ बताया गया है, परन्तु ऐसा उदाहरण भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में कहीं भी प्राप्त नहीं है, शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' का ही उद्धरण जान पड़ता है।
२. म्यूजियम, अलवर।
३. वही।

सभी ग्रन्थ स्तुति ग्रथवा मगलाचरण से प्रारम्भ होते हैं। उदाहरणार्थ,

'जै गगा गौरी घरन। मगल करन सुजान।

नाद मई ग्रवढरढरन। जन जगहरन प्रमान।"

सर्वांग निरूपक ग्रन्थो म महाराज प्रतापसिह देव रचित 'राधा गोविन्द सगीत-सार', हरिवल्लभ कृत 'सगीत-दर्पण', श्री पूर्ण मिश्र 'कविरागी' द्वारा रचित 'सगीत-नादोदधि', कवि राधाकृष्ण कृत 'राग-रत्नाकर' तथा उम्तत कृत 'राग-माला' बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, ग्रत यहाँ पर उन्ही का ग्राधार प्रमुख रूप से लिया जा रहा है।

'राधा-गोविन्द-सगीत-सार' सर्वांग निरूपक ग्रन्थो म सर्वोच्च स्थान ग्रहण करने का ग्रधिकार रखता है। यह ग्रन्थ सवाई महाराज प्रतापसिह जी द्वारा सकलित किया गया है। इसमे उनके ग्रतिरिक्त ग्रन्य विद्वानो के द्वारा लिखे गए सगीत सम्बन्धी विचार हैं। यह ग्रन्थ सात अध्यायों म विभक्त होकर सगीत के सातो ग्रगा १—स्वर, २—वाद्य ३—नर्तन, ४—प्रकीर्ण, ५—प्रबन्ध ६—ताल ग्रौर ७—राग का ज्ञान कराता है। विस्तृत ग्रौर सूक्ष्म विवेचन का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। तालाध्याय मे ताल के दस प्राण बताए गए हैं। १—प्राण काल, २—प्राण मार्ग, ३—प्राणक्रिया, ४—प्राण ग्रग, ५—प्राण ग्रह ६—प्राण जाति, ७—प्राण कला ८—प्राण लय, ९—प्राण यति,१०—प्राण प्रस्तार।

इनमे से एक प्राणमार्ग के चार प्रभेद होते हैं—ध्रुव, चित्र, वार्तिक ग्रौर दक्षिण। प्राणक्रिया के दो भेद नि शब्द ग्रौर सशब्द तथा नि शब्द के चार भेद ग्रावापक निष्काम विक्षेपक, प्रवेशक और सशब्द के चार भेद ध्रुव, सपा, ताल ग्रौर सनिपात बताए हैं।
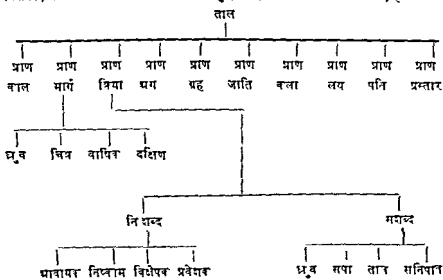
इनमे से प्रत्येक की व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिए, नि शब्द के भेद 'ग्रावापक' का स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

जहाँ ऊँचो मूधो हाथ करि ग्रगुरीन का सकोचिए सो 'ग्रवाप' जानिये ग्रौर लौकिक

१ 'सगीत-नादोदधि'—श्री पूर्ण मिश्र, म्यूजियम, ग्रलवर।

में बाईं ओर तिरछो हाथ को चलावनो आवाय है।' इसी प्रकार 'जहाँ ताल दे ऊँचे हाथ सों चुटकी बजाइ के हाथ कों ऊँचो डारना', वही 'सशब्द' का भेद 'ध्रुव' है।

संगीत के सभी अंगों से पूर्ण परिचित कराने में समर्थ दूसरा ग्रन्थ हरिवल्लभ का 'संगीत दर्पण' है। शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' के समान यह भी सात अध्यायों में विभक्त है। 'संगीत-सार' में जहाँ केवल शास्त्रीयता पर बल दिया गया है, वहाँ इस ग्रन्थ में काव्यात्मकता का पुट अधिक है। जहाँ शास्त्र का वर्णन है, वहाँ भी पूर्णता तथा सूक्ष्मता है।

तालाध्याय के 'पंडमेरु-नष्टोदिष्ट'[1] प्रकरण में 'नष्ट', और 'उद्दिष्ट' आदि का अर्थ तथा उन्हें लिखने का ढंग बड़े स्पष्ट रूप में समझाया गया हैं।

'ये इकादिक सुरनि में संष्या जान प्रकार
जु कुछ मुनी में गुनिन पै कह्यो सुकरि निरधार।
येक अंक त सात लौं क्रम तें तू करि देपि
पूरव पूरव अंक सौं पर अंकनि गुन लेपि।
येक सुरादिक तान की संष्या को परिमान
क्रम ही तें ये होत हैं कहैं सु बड़े सुज्ञान।
द्विस्वर तिस्वर चारिस्वर पंचु रु षट् पुनि सांत
काहू ये कहि क्रमहि लिपि कर प्रस्तारहि ग्रांत।
अगले कें पाछे लिप्यो प्रथम प्रथम सुर बानि
आगे होई जु प्रथम सुर तौ ता प्रथमहि आनि।
ता आगे लिपियै बहुरि उरध मूर की पांति।
बचे जु सुर तेऊ लिपौ मूल क्रमहिं की भांति।
नष्ट उदिष्टिन जान कों पंड मेरु अवजानि।
आदि पांति मुनि घरन की पहिले ही तू ठानि।
इक रक कोठा हीन करि पटु पंगतिहि बनाइ।
प्रथम पंक्ति के प्रथम घर येकैं अंक जनाई।
छह कोठा जैहें रहे तिन में बिंदुक देहि
दूजो पंगति प्रथम घर येक अंक करि लेहि।
और बांम जे हैं बचे तिन संष्या गुनि काढि।
पूरव पूरव अंक को इन तै होहिं न बाढि।

१. 'तालों की प्रस्तार श्रेणी में, अमुक प्रस्तार कैसा होगा? यह प्रश्न यदि कोई पूछे तो उसे नष्ट प्रश्न कहते हैं। किसी नष्ट के बारे में पूछा जाने वाला प्रश्न, इसका अर्थ है।'
'किसी रूप के बारे में यह कहना कि इस रूप का प्रस्तार अमुक भेद का—अर्थात् चतुर्थ, पंचम इत्यादि का है, उद्दिष्ट है।' पृष्ठ ४०२, ४०३, संगीत-शास्त्र—के० वासुदेव शास्त्री। विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए, संगीत-शास्त्र—के० वासुदे शास्त्री।

ताही थ कहि धाम की सख्या कहि गुनकारि।
आगे आगे लिपि तिनहि योंही यह परकारि।
जितनों सुर के भेद को जान्यो चाहे मित्त।
इहि प्रमान करि कावरी नभ कोठनि के चित्त।
बहुरयो लिपि तू मूल क्रम ता ऊचे ऊदिष्ट।
याकौ मारगु यो कहे सब कवि पडित सिष्ट।
अन्तर स्वर जु उदिष्टको मूल क्रमहि जा ठौर।
अतहि तें गनती करें ता प्रमान करि डोर।
काकरु यो ऊचे धरयो सो नीचें को आनि
लघ्य सुरहि को छोडि के बहुरि इहा विधि ठानि।
अत अत के सुर दोऊ जो आवहि सम भाइ
तो तिनहू को छोडि देयो ऊदिष्टि बनाइ।
अक नाम लै जग कहे याको रूप युवलाई।
ताको नष्ट जु कहत है पडित चित्त के चाइ।
जिन अकनि के जोर सो मूल अक मिलि होइ।
सख्या तिनके यान तें नष्ट दुते जिअ जानि।
लघ्यसुरनि को त्याग करि ऊचे नष्ट बखानि।'

इति षड मेरु नष्टोदिष्टोदिष्ट प्रकरन।'[1]

कवि की काव्यात्मकता का पूर्ण परिचय राग-रागिनी के स्वरूप-वर्णन मे प्राप्त हो जाता है।

'अथ बराटी लक्षण'

'चोर लिअ्रे चतुराचित चोरिनि कवन की भनकार सुनावें।
बिथुरी सुथरी अलकें अलकें छव रास छवीली अनद बढ़ावें।
श्रोन पे सोहत पून विचित्र दुकूल बनो चित को ललचावें।
ऐसी बराटी बनी हरि-वल्लभ प्रीतम कों बहु भाति रिझावें॥'

श्री पूर्ण मिश्र कविरागी के 'सगीत-नादोदधि' मे भी सगीत-शास्त्र का सम्पूर्ण विवेचन है। नाद का भेद बताते हुए कवि कहता है—

'प्रथम सहद नाद मुष तें जो है अकार अष्टादश भेद सोहें अद्भुत प्रकास है।
दूसरो विहद नाद भेद है जुगल जाको तीजे अनहद नाद जानो बिन त्रास है।
सोऊ हैं जुगल भेद विमल विचार कीन्हें सकर भिपा तें कोऊ जाने भेद ताल है।
पूरन कहत नाद भेद धाइ सो विचार भाषा नादोदध यह देवें सुष रास है।'[2]

---

१. पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।
२ म्यूजियम, अलवर।

संगीत की शास्त्रीय व्याख्या से अधिक गीतों और उनके गाने के ढंग पर बल दिया है। क्रियात्मक रूप पर अधिक प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ—

'स्वर प्रच्छन्न,
रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थाई निधि ध्यानु।
संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउ।
सा यथा ताल रूपका। वनि स र गम पध नी।
सरी। इत।
स्वर प्रछनं :—अथ स्वर प्रकाश यथा ताल चौताल।
स स रि रि स स नि ध। नि स। म म म प। ग ग रि श।
स स म म प प ग ग म प। ध ध म प। ग ग रि स।
ध ध ध प ग ग रिश। म म म ध ध ध
प प ध नि। स ध प ध ध प ग ग रि श।'[1]

कवि राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर' भी संगीत के सभी अंगों पर प्रकाश डालता है, परन्तु विशेष बल राग और रागिनियों के लक्षण देकर स्वरूप और शृंगार वर्णन को दिया गया है। नाद के मन्द्र, मध्य और तार तीन प्रकार बताते हुए कवि कहता है—

'प्रथम नाभि तें ध्वनि उठे ताको शुद्ध उच्चार
तीन ग्राम तामें भये चंद मध्य अउतार।
चन्द्र हृदय ते जानिये मध्य कंठ ते होय।
उपजे तारक पाल तें भेद कहे कवि लोय।'[2]

राग हिंडोल का लक्षण तथा स्वरूप बताकर कवि अपने संगीत-ज्ञान तथा अपना काव्यात्मकता का परिचय देता है।

'हिंडोल राग लक्षण
पिरज गेह सुर स ग म ध नि ओडव जाति हिंडोल।
दिन बसंत पहिल पहरि सुनत डोल गति लोल।

सवैयो

सब अंग कपोत के रंग लसैं मुष की उपमा सरसावत हैं।
मिलि गावत तान गुमान भरी तिय कंचल फूल झुलावत हैं।
अति झूलत पीत दुकूलन की दुति दामिनि सी फहरावत हैं।
यहि राग हिंडोल महा प्रवीन छको रस बीन बजावति हैं।'[3]

उस्तत कृत 'रागमाला' में यद्यपि वर्णन संक्षिप्त हैं, फिर भी संगीत के सभी अंगों

---

१. 'संगीत-नादोदधि' पूर्ण मिश्र कविरागी, म्यूजियम, अलवर।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. राग रत्नाकर - राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

पर पूर्ण प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए, उनचास तालो के नाम इस प्रकार गिनाए गए हैं —

जोग योग, २- रेपा, ३- रतन, ४- तारन, ५- नन्दन, ६- तारा, ७- अरभावना, ८- मधुरा, ९- लता, १०- प्रणाम, ११- इसफुरता, १२- लोलता, १३- बाना, १४- माचन, १५- लोचन, १६- तन, १७ लालित, १८- कोक, १९- काक, २०- पिंगल, २१- अभिलाषा, २२- मदन, २३- नन्द, २४- नेत, २५- श्रुत, २६- नेपात, २७- गुनी, २८- कठ, २९- सहेत, ३०- चरण, ३१- चन्द्रिका, ३२- चतुर, ३३- चतुरा, ३४- बेमा, ३५- बीर, ३६- निरमल, ३७- चारण, ३८- चालणा, ३९- रेता, ४०- हिता, ४१- हजी, ४२ लता, ४३- हास, ४४- मूताडणा, ४५ मान, ४६ सम्मान, ४७- रति, ४८- क्रीडा, ४९- सुरतात[1]

इसके अतिरिक्त गीतो के प्रकार, कला वर्णन आदि विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् रागो के स्वरूप और उनके परिवार का वर्णन किया गया है।

विशिष्टांग निरूपक ग्रंथ

सगीत शास्त्र के अन्य अगो को न लेकर केवल एक विशिष्ट अ ग 'राग' का विवेचन करने वाले ग्रन्थो को 'विशिष्टाग निरूपक ग्रन्थ' की सज्ञा दी गई है। साधारणतया इन ग्रन्थो मे निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं।

रागों की उत्पत्ति, परिवार, स्वरूप, लक्षण और इनके उदाहरण इन ग्रन्थो का वर्ण्य-विषय है।

'हीयहुलास' ग्रन्थ मे भैरव की पाँचो रागिनियो को विरहिणी नारियों के रूप मे दिखाया गया है—

'भैरू की धुनि भैरवी बगाली वैराड।
मधु माधवी अरु सिंधवी पाचो विरहन नार॥'[2]

इसी प्रकार स्वरूप तथा शृ गार आदि का वर्णन सभी रागमालाओ मे प्राप्त होता है, जिसका विस्तृत उल्लेख 'सगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में किया गया है।

इन ग्रन्थों का नाम अधिकतर 'रागमाला' ही रखा जाता है, उदाहरणत पद्मनदन मुनि कृत 'रागमाला'[3], घनश्याम कृत 'रागमाला'[4], हरिश्चन्द्र कृत 'रागमाला'[5], तथा यशोदा-नन्दन शुक्ल कृत 'रागमाला'[6] आदि, परन्तु कुछ ग्रन्थ अन्य नामा से भी भूषित किए गए

---

१. रागमाला - उत्तत, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२. हीय हुलास ग्रन्थ तथा रागमाला, श्री मोतीचद जी खजांची सग्रह, बीकानेर।
३. मोतीचद जी खजांची सग्रह, बीकानेर।
४ श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली।
५ मुनि कांतिसागर सग्रह, उदयपुर।
६ आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

हैं, जैसे गंगाराम कवि का 'सभाभूषण',[१] राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर',[२] गोपाल पंडित का 'संगीत-सार'[३] पुरुषोत्तम का 'राग-विवेक',[४], सरदारसिंह कृत 'सुरतरंग'[५], तथा रघुनाथ कृत 'जगत्मोहन'[६] आदि।

इन रागमालाओं की रचना का कारण भी कवियों के आश्रय दाताओं की रुचि तथा उनका आग्रह है। उदाहरण के लिए, कवि पुरुषोत्तम के 'राग-विवेक' को लिया जा सकता है, जहाँ अपने आश्रयदाता फतेचंद का यश वर्णन करने के पश्चात् कवि उन्हीं के निमित्त ग्रन्थ का रचा जाना बताता है।

'हय दे हाथी मोल को कस बीद सिर पाइ।
फतेचंद मों सों कह्यो चित को नेह जनाइ।
सुरबानी में सब कविन कीन्हें ग्रन्थ अनेक।
रसिक है अब तुम रचो भाषा राग विवेक।
या तें, मैं या ग्रंथ को कीन्हो उद्यम एह।
फतेचंद को देपि के रागन सों अति नेह।
सब रागन के मैं कहे या में भेद अनेक।
नाम धर्‌यो या ग्रंथ को यहै राग विवेक'।[७]

संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव यहाँ भी दृष्टिगत होता है। छः राग और उनकी तीस रागिनियों की मान्यता इसका प्रमाण है। राधाकृष्ण के 'राग-रत्नाकर' में शिव के पाँच मुखों से पाँच रागों की तथा गिरिजा मुख से छठे राग की उत्पत्ति बताई है।

'पंच वदन प्रगट किये पांच राग सुप रूप।
श्री गिरिजा मुप तै भयो छठ्ठो राग अनूप।
भैरव प्रथम गिनाय मालकौश हिंडोल।
कहि दीपक श्री सुपदाय मेघ राग जानहु बहुरि।'[८]

इसी प्रकार प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियों का वर्णन किया गया है।[९]

रागों के स्वरूप वर्णन में अधिकांश तो संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही किया गया वर्णन है, परन्तु कहीं कहीं कवि की मौलिकता का भी परिचय प्राप्त होता है।

---

१. म्यूजियम अलवर तथा श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर; आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
३. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी (राजस्थानी विभाग), बीकानेर।
४. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
५. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, (राजस्थानी विभाग) बीकानेर।
६. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
७. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
८. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
९. वही।

इसका विस्तृत उल्लेख 'सगीत का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय मे किया गया है ।

इन ग्रन्थो की भाषा ब्रज है, परन्तु प्रान्तीय भाषाओ के शब्दो का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है । उर्दू, राजस्थानी और पजाबी का प्रयोग अधिकाश रूप से है । कला की दृष्टि से ये ग्रन्थ अधिक सुन्दर हैं । अलकारो का प्रयोग और सुन्दर वर्णो का चयन भी इन ग्रन्थो की विशिष्टता है । इन ग्रन्थो का साहित्यिक मूल्याकन करते समय इन सभी विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है ।

इन ग्रन्थो का प्रारम्भ सदैव मगलाचरण अथवा आश्रयदाता के यशोगान से हुआ है । कवि हरिश्चन्द्र 'परम पुरुष' के चरणो में प्रणाम करके 'रागमाला' का आरम्भ करता है ।

'अकल अरूप अमेय गुण सुन्दर है जसु दीन ।
परम पुरुष पग लगि के राग माल यह कीन ।'[1]

कुछ ग्रन्थो में मगलाचरण न देकर अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति गाकर ग्रन्थारम्भ किया गया है । राधाकृष्ण कवि ने अपने ग्रन्थ 'रागसमूह' मे 'राजा रतन' की प्रशसा करते हुए कहा है–

'पूरन प्रताप पुहुमी ते परगट ताको यह रथ जाको सूरज सुवेस है ।
बडी प्रभुताई बडे अहित सहकर सोभित विमल अ ग अवर प्रवेस हैं ।
आयु बरषतु सुवरनु जग पावन को ऐसी गृहपती देखियतु दैस देस है ।
अस्त कविताई मे बनाई बात या मे कहा जैसो राजा रतन सोई दिनेस है ।'[2]

इन ग्रन्थो मे वर्णित रागो के स्वरूप वर्णन मे नायिका- भेद के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं । राग विशेष नायक और रागिनियाँ नायिकाओ के रूप मे वर्णित हैं ।

उदाहरणार्थ, भैरव अनुकूल नायक दिखाया जाता है ।

'सोहै बाल इदु भालो लोचन विसाल तीन गरे मु ड माल गजखाल परधान री ।
जटा जूट से हैं गग भूषित भुजग अ ग अ गराग अगर भसम अनुमान री ।
चमत कपोल निज कामनी की अ क लियें कु डल विलोल भलकत जुग कान री ।
देख्यो बडे भोर आज अद्भुत छवि रग लाल मगल विधान राग भैरव समान री ।'

रागिनी मधुमाधवी कृष्णाभिसारिका नायिका के रूप मे विरह से दग्ध हो प्रिय से मिलने जाती है —

'नील तमाल निलक तकि चली, प्रीतम विरह जवहि दल मली ।
पिय मिलाप कह जिय अनुरागिनी । बरषा घन निकसी भर जामिनी ।

1. मुनि काति सागर सग्रह, उदयपुर, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर ।
2 आर्यभाषा पुस्तकालय, याज्ञिक सग्रह, वाराणसी ।
3 रागमाला, यशोरानदनशुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

चपला चमकि उज्यारी करी। लाल मात लगि त्रिय लरपरी।
तिहि छिन मारु उठ्यो कहराई। वरजति भामिनि भुजा उठाई।"[1]

राग विशेष जिस रस को उत्पन्न करने में समर्थ है, उसका उसी प्रकार वर्णन किया गया है, जैसे विलासी मेघ, अनुराग अथवा 'रति' के भाव को जगाता है[2] तथा वियोगिनी भूपाली विरह की पीड़ा उत्पन्न करने में सहायक होती है।[3]

विशिष्टांग निरूपक संगीत-ग्रन्थों में शृंगारयुगीन अन्य सैद्धान्तिक काव्यों के समान, लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थों की शैली में लिखे गए दोहों में, लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप कवित्त प्रस्तुत किये गये हैं। इन उदाहरणों में कहीं तो लक्षणों से साम्य है और कहीं भिन्नत्व भी है। रागों के लक्षणक और उदाहरण में स्वाभाविक रूप से एकत्व की स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षणों में स्वरों का प्रयोग बताया है, और उदाहरणों में रागों का स्वरूप वर्णन है। ऐसे लक्षण-उदाहरण ग्रन्थ केवल उन्हीं कवियों के हैं, जिन्होंने विशिष्टांग निरूपक ग्रंथ अथवा केवल राग-रागिनियों का वर्णन दियाहै। इन ग्रन्थों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

एक, जिनमें, राग का स्वर लिपि में लक्षण बताकर स्वरूप वर्णन दिया गया है।

दूसरे, जिनमें, केवल उदाहरण स्वरूप राग का स्वरूप तथा शृंगार वर्णित है।

तीसरे, जिनमें, राग का नाम देकर उदाहरण स्वरूप गीत दिये गये हैं। पहले प्रकार के ग्रन्थों में उदाहरण स्वरूप श्री पूर्ण मिश्र 'कविरागी' के 'राग-निरूपण' को लिया जा सकता है। भैरव राग का लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप शृंगार-वर्णन है।

'रोही अवरोही स्वरन्ह, अस्थाई निध ध्याउ।
संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउं।'

भैरव-स्वरूप
'लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति कुंडल श्रवन सुप गौर वरन।
जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चन्द्रमा लिलाट सेत वसन धरन।
सोभित त्रिनैन सूल अभै कर डमरू बजावत लाप्त उर प्रिया करन।
कंवल अस्त्वर गान करैगी व पूरन प्रकास दास दोष हरन।[4]

अथवा
'आसावरी लक्षण—
'धैवत अंस रु न्यास ग्रह हीन निषाद गंवार।
षोडव करुना रसहि में आसावरी विचार।

---

१. रागमाला - लछिमनदास, भारत कला भवन, बनारस युनिवर्सिटी, बनारस।
२. कै मेघ राग निज मानिनी आलिंगन संजुक्त।
विलसैं केलि सदन में आननि चुंवति नित्त। रागमाला, हरिचंद, मुनि कांति संग्रह, उदयपुर।
३. भोपाली विरहन खरी केसर बोरे चीर।
भयो विरह की ज्वाल ते पीरी सवै सरीर। हीय हुलास, मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
४. राग निरूपण—श्री पूर्ण मिश्र, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

मलयागिरि में बन में वनिता हरिवल्लभ आनन्द भार भरी ।
हार सुठार भरे गज मोतिन मोर पयोवन सारी करी ।
चदन के द्रुम तें गहि नागनि ले कर मैं गजरा पुपरी ।
निजु देहि की दीपति ही सो असावरी दीपति स्याम घटा की हरी ।[1]

अधिकतर रागमालाओं मे स्वरो का निर्देश नही है, केवल काव्योचित क्षेत्र को लिया गया है अर्थात् रागों का स्वरूप वर्णन किया गया है । जैसे—

'मधु माधवी वर्णन'

मधु माधवी रूप निधि नारि । नील सुभग तन भमक सारि ।
भाऊ भेद भूषण अति नीके । देषि दासु रति गज मन फीके ।[2]

अथवा धनाश्री का स्वरूप

असित देह रमणी कलभ लिपित कुसुम पीय हास ।
मुगुध धनासी लोचनह मृगमद तिलक सुवास ।[3]

अथवा देवकरी का स्वरूप

कमलकली कुच गौर अग देवकरा पिकवैन ।
वेलाउल मिल पी को उमग चली सुप दैन ।[4]

तीसरे प्रकार का वर्णन यह है, जिनमे केवल रागो के नाम दिए गए हैं और उनमे बँधा हुआ गीत लिखा गया है । ऐसे गीतो का वर्ण्य विषय अधिकाश रूप से कृष्ण और राधा का प्रेम वर्णन है । विप्रलभ से अधिक सयोग को ही स्थान मिला है । यह काव्य सगीत की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योकि ऐसा सभी काव्य गेय है । सगीत के अनुकूल रजक तथा ललित पदावली म बद्ध होने के कारण सगीतात्मक है । इस प्रकार के काव्य मे जवानसिंह जी महाराज 'नगधर', कृष्णानन्ददेव व्यास 'रागसागर', महाराज मानसिंह 'रसराज', नागरीदास, महाकवि देव, प्रतापसिंह जी 'ब्रजनिधि' आदि की रचनाएँ मुख्य रूप से ली जा सकती है । उदाहरण के लिए—

'राग सिंदूरो (सिघोरा) ताल दीपचन्दी
कनइया मोरे अनवट बिछवा समेत ल्यादे
मोरे पैंह कु रतन नुपरवा । अस्ताई ।
कगवा मे पेलत बाजत नीके सौन का कलेजा
जलाजली सुता के ।
भीना भीना बाजना घघरवा, हीरा मोती
पनाउवा मे मानिक लगा दे ।
रसीला राज पिय लटुवा भयो जो तु अपने

---

१. सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर ।
२. लछिमनदास कृत रागमाला, भारत कलाभवन, बनारस युनिवर्सिटी ।
३. रागमाला, हरिचद, अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
४. रागमाला कल्याण मिश्र, पुरातत्व मदिर, जोधपुर ।

करन सों वेसर फहरा दे।'[1]

जवानसिंह जी द्वारा रचित 'रस तरंग'[2] में अनेक ऐसे गेय गीत हैं, जिनका विभिन्न उत्सवों और संस्कारों के समय गान होता रहा प्रतीत होता है। यहाँ एक सामूहिक गीत का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जो विवाह के अवसर पर गाया गया है।

'धमार राग काफी

सरस सुहाइयावे रितु छवि देत है रितुराज।
सुन्दर सरस सोभावे गोभा काम जन्म सुराज।
अति मन भांइया वे समधी मिलन हेत सकाज।
उनयो मान मंदिर वे सुन्दर सुघर समाज।
सुन्दर समधन आई। वाह वा।
संग दोउ धोटाँ लाई। वाह वा।
सव जन हरप वधाई। वाह वा।
समधी नौत बुलाई। वाह वा।
कीरत सनमुप आई। वाह वा।
मंगल कलस वढ़ाई। वाह वा।
भीतर भवन लवाई। वाह वा।
अद्भुत गारि सुनाई। वाह वा।१।
सुनाई गारि अद्भुत वे श्री नन्द राय कों व्रज नार।
संग वलराम मोहन वे मन दां भांवदा दिलदार।
आगम सरस सोभा वे श्री व्रषभान के दरवार।
सरसों सीं फूलि रहिया वे झुंडन झूमती सुकुमार।
झुंडन घूमत आवे। वाह वा।
फागुन रंग वढ़ावे। वाह वा।
हो हो शब्द सुनावे। वाह वा।
अविर गुलाल उड़ावे। वाह वा।
मोहन सनमुप वावे। वाह वा।
गहि तन स्यामहि लावे। वाह वा।
राधे चरन नवावें। वाह वा।
संग मिल प्रेम वढ़ावे। वाह वा।२।
वढ़ावे प्रेम सुन्दर वे मंदिर भांव सरस सुहाय।
गावें व्याह मंगल वे ललिता प्रीत गांठ जुराय।
मोरी मोर सोहैं वे सुन्दर पीत पट फहराय।
भांवर सरस सोभा वे सोहत अधिक रूप लुभाय।

---

१. महाराजा मानसिंह का धुपद ख्याल, मुनि कांतिसागर-संग्रह, उदयपुर।
२. मुनिकांतिसागर संग्रह, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर में यही ग्रंथ, गीत-संग्रह, के नाम से प्राप्त है।

सोहत अद्भुत जोरी । वाह वा ।
बोलत हो हो होरी । वाह वा ।
गुरजन कानहि तोरी । वाह वा ।
गहि रंग कमोरी । वाह वा ।
ढोरत स्याम पे गोरी । वाह वा ।
कुम कुम सबें बोरी । वाह वा ।
फाग पेलि झकझोरी । वाह वा ।
दोउ मुप मीडत रोरी । वाह वा ।३।

रोरी रंग बोरी वे गहवर विपुन मे तिय आन ।
कदली कुञ पोरी वे घूमत लतनि म दरसान ।
प्रीतम परस को वे अद्भुत सरस आनन्द मान ।
फागुन हरस को वे अंग अंग प्रीत की हुलसान ।

अंग अनगन जाची । वाह वा ।
केसर कादो माची । वाह वा ।
प्रीतम प्रीतहि पाची । वाह वा ।
गहि कर स्यामहि नाची । वाह वा ।
मोहन मांगत याची । वाह वा ।
देपा प्रीत जु साची । वाह वा ।
नग धर पिय रंग राची । वाह वा ।४।

श्री कृष्णानन्द व्यासदेव 'राग सागर' के 'संगीत राग कल्पद्रुम' में सभी भाषाओं के प्रचलित गीत संकलित होने के कारण उसमे बडे मनोरंजक गीत भी मिलते हैं।

उदाहरण स्वरूप एक लोक-गीत है—

'धानी तिताला ।

बाबा बहत पुरवैया के सइया मोरे सोवे यह पुरवैया
मोरा वैरन सइया नहीं जागे ।
अम्वा की डारी पकड खडी गोरी वैराग भरी
क्यो तोरे नैहर डर के क्या तेरी सास बुरी ।
न मोरे नैहर डर न मोरी सास बुरी
तू चलो जा रे वीर बटोही तुझे मेरी क्या परी ।
जो मैं बन की कोयया मैं बन बन रहती रे ।
जो पिया जावे शिकार को मैं शब्द सुनाती रे ।
जो मै जल की मछरिया जल जल रहती रे ।
जो पिया जावें नहाने को मैं पदया छुआती रे ।'[1]

विशिष्टांग निरूपक ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक है। कुछ प्रमुख ग्रंथों का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

---

१ लखनऊ विश्वविद्यालय-पुस्तकालय, लखनऊ ।

अहमद,[1] हरिश्चन्द्र,[2] कवि कल्याण मिश्र,[3] घनश्याम,[4] भगवान,[5] श्री मन्माल्वीय बेनी राम,[6] श्री पं० पद्म नन्दन मुनि,[7] यशोदानंदन शुक्ल,[8] हीय हुलास,[9] सागर कवि,[10] गिरधर मिश्र[11], की रागमालाएँ देव कवि का 'राग रत्नाकर'[12], पुरुषोत्तम कृत 'राग-विवेक'[13], भूधर मिश्र की 'राग-मंजरी'[14], गंगाराम का 'सभाभूषण-रागमाला'[15], शिवराम कविराज का 'राग कीतिकपुर-नवधा-भक्ति सुवंश'[16], राजा सिरदारसिंह कृत 'सुर-तरंग'[17], पं० दयाचन्द जी की 'राग-बत्तीसी',[18] रस राशि का 'राग-संकेत',[19] पूर्ण मिश्र कृत 'राग निरूपण'[20], कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा रचित 'संगीत राग रत्नाकर',[21] रघुनाथ कृत 'जगतमोहन'[22], गोपाल पंडित का 'संगीत-सार'[23], माधव दास जी की 'राग-चितनी'[24], लछीराम का 'राग-विचार'[25], उक्त प्रकार के ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार के सभी ग्रन्थों में राग-परिवार, तथा राग-शृंगार वर्णन हुआ है। उदाहरण के लिए, भैरव का परिवार इस प्रकार वर्णित है—

---

१. म्यूज़ियम, अलवर, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर।
३. मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली।
५. म्यूज़ियम, अलवर।
६. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग।
७. श्री मोतीचन्द जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
८. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
९. मोतीचन्द जी खजांची संग्रह, बीकानेर, महिमा भक्ति भंडार, बीकानेर।
१०. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
११. वही।
१२. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
१३. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
१४. अनूप संगीत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१५. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली; म्यूज़ियम, अलवर।
१६. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
१७. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१८. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
१९. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२०. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२१. म्यूज़ियम, अलवर।
२२. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२३. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
२४. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली।
२५. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।

'भैरव परिवार,

मैरव रूप जटा सिर नील तन भस्म वास तिल्क रेप
मुद्रा श्रग त्रिसूल घर भैरव राग शुदेप ।

भैरव स्त्री,

मारू सिधू भैरवी धनासरी बगाल
सुद्ध भैरवी नारि सब गावत गुन गोपाल ।

भैरव-पुत्र नाम

भैरव शुद्ध ललित परम पचम बगाली पच
भैरव शुद्ध के पच सुत गावत हरि गुण सब ।
इति भैरव।'[1]

इसी प्रकार रागो के शृगार और स्वरूप का लगभग सभी मे एक ही सा वर्णन किया गया है। कहीं कही कुछ अन्तर मिलता है।

गिरधर मिश्र की रागमाला मे पटमजरी का स्वरूप इस प्रकार है—

'विरह ताप तन धूसरइ पट मजरी वियोग ।
मलिन कुसुम माला धरइ प्राणि दुखित मल योग ।'[2]

यही राग हरिदचन्द्र की रागमाला मे लगभग इसी रूप मे प्राप्त होती है—

'पट मजरि तउ धूसरइ वन वियोग अनत
मलिन कुसुम माला धरें मली प्रविसीस तजत ।'[3]

कहीं कही भिन्नत्व के साथ भी वर्णन मिलता है, जैसे राग मारू का वर्णन हरिश्चन्द्र के शब्दो मे इस प्रकार है—

'कै हेरि लकं वीन तन नागरि मारू नाम ।
कर लें बैठी पीय सो जाणि वर्णो री वाम ।'[4]

परन्तु कल्याण मिश्र की रागमाला मे इस प्रकार वर्णित है—

मारू ऊष्मा मरण अरुण वसन चद्रमुखी गज चाल।
रिण रस धुन गोपाल के गावत मारू ऐन ।'[5]

अहमद कृत सभा विनोद

अहमद ने अपनी रागमाला का नाम 'सभाविनोद'[6] रखा है।' 'सभा विनोद जु नाम या पोथी को जानियो ।' इसमे भी राग परिवार का वर्णन किया गया है। भैरव का वर्णन इस प्रकार है—

'धैवत सुर ग्रह तारो जानो, शिव मूरति सगीन बपानो ।

---

१. कल्याण मिश्र कृत रागमाला, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
३. मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर।
४. वही।
५. पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
६. म्यूजियम, अलवर।

कंकन उरग और शशि भाल, सुरसरि जटा गरे रुंड माल ।
सेत वसन नैन पुनि तीन, सिद्धि सरूप अरु महा प्रवीन ।'

इस प्रकार राग के लक्षण तथा स्वरूप दोनों पर ही प्रकाश डाला गया है ।

हरिश्चद्र कृत रागमाला

हरिश्चन्द्र ने अपनी 'रागमाला'[१] में केवल रागों की पत्नियों का निर्देश किया है । रागों का वर्गीकरण करके राग-रागिनियों का स्वरूप-वर्णन किया गया है । हरिश्चन्द्र की कविता में शृंगारिकता की मात्रा भी अधिक है । वर्गीकरण में मौलिकता है, जैसे वसंत इनके वर्गीकरण में दीपक की पत्नी है ।

'सिपि पुछ सूकी रपि घरैं पुनि रसाल अंकूर ।
राग वसंत जु कामनिहिं भ्रमत काम सों तूर ।'

इसके विपरीत अन्य स्थलों पर वसंत श्री राग की पाँच रागिनियों में से एक है ।[२]

कल्याण मिश्र कृत रागमाला

कल्याण मिश्र की 'रागमाला'[३] में रागों के नाम देकर पत्नी तथा पुत्रों का वर्णन अलग अलग किया है । उदाहरणार्थ, हिंडोलके पुत्र स्यांम, वसंत, कामोद, सीमंतक और शुद्ध वंगाल वताकर प्रत्येक का पृथक् पृथक् वर्णन है ।

'अथ पुत्र स्यांम

पीत वशन तनु स्यांम दुति कंठ लाल की माल
स्याम राग कुंकम तिलक गावत गुन गोपाल ।

वसंत

अरुन वशन तनु कनक छवि मुप तंवोल मृदु हास
राग वसंत हिंडोल सम वन में नित विलास ।'

घनश्याम कृत रागमाला

चतुर्भुज मिश्र के पुत्र घनश्याम द्वारा लिखी गई 'रागमाला'[४] में श्रुति वर्णन, राग-परिवार वर्णन तथा स्वरूप-शृंगार का वर्णन है ।

भगवान कवि की रागमाला

भगवान रचित 'रागमाला'[५] में रागों के शृंगार और स्वरूप का वर्णन है । शृंगार को प्रधानता देने के कारण भैरव को स्त्री का रूप दिया है और भैरव को प्रसिद्ध योगी रूप में न लाकर काम-क्रीड़ाओं में रत दिखाया है ।

'त्रिय भैरों-भूषण अंग साजे । काम रूप कामिणि संग राजे ।
करत कीलोल कांम रस भीनो । भुज पसारि आलिगन दीनों ।
वढ्यो नेह नैन टक लागी । रिति तरंग अंगन अनुरागी ।

---

१. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर ।
२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ और राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण ।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर; मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।
४. सरस्वती भंडार. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली ।
५. म्यूजियम, अलवर; विद्या मंदिर, नाथद्वारा ।

चेरी चतुर चोर करि लियो । अति विचित्र चितवत चित दियो ।
महल सरस सेज सुखकारी । ये ते रुचि सुधि पावत पिय प्यारी ।

वेनीराम कृत रागमाला

इन ग्रन्थो में श्री मन्मालवीय वेनी राम द्वारा रचित रागमाला[1] अपना अलग महत्त्व रखती है। संगीत की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी अपनी विचित्रता के कारण कथनीय है। रीतिकालीन साहित्य को समृद्ध बनाने योग्य यह पुस्तक अपने हतभाग्य के कारण संग्रहालय में सुरक्षित होने पर भी उचित रक्षा न पा सकी और प्रत्येक पृष्ठ के दोनो ओर से दीमक द्वारा खाए जाने के कारण मूल पाठ भी उपलब्ध नही हो सकता, परन्तु जितना अंश प्राप्य है, उसी के आधार पर मौलिकता का परिचय मिलता है। यह इस प्रकार की अकेली रचना है, जिसमे राग रागिनियो का नायिका भेद से साम्य स्थापित करके शृंगारिक वर्णन किया गया है। या तो रागो का शृंगार वर्णन नायिका वर्णन के समान ही हुआ है, परन्तु दोनो मे एकता स्थापित करने की दृष्टि से ही केवल वेनीराम जी ने चित्र खीचा है। इसका कारण वे बताते हैं—

राग रागिनी रूप लखि मिटत जो जिय को भेद
याते इनको समुझ के कहो नाइका भेद।

एक राग और उसी के समान भाव और रूप धारण करने वाली नायिका को लेकर वर्णन करते हैं—

कलहान्तरिता नायिका

पिया आवे निज गेह जे पहिले बालेहि नाहि।
फिर पाछे पछताये अति कलहन्तरिता ताहि।

अथ कलहन्तरिता देवगिरि यथा

· ·· हि बिन··· ही विनय यह भातन ले हसि
हैरवे को क ·· डी है ओली।
बाह गह्यो हर ए हि हरे अचल ऐंचि के पट्टी खोली।
रुसि पयोधर को उठि के तो कियो पिय ही निहि बोली।
मान तू मोहि गह्यो तब तो हठि जाइ परो अब तो रिन होती।'

इस रचना के लगभग सभी दोहे या कवित्त अपूर्ण हैं, परन्तु अर्थ से जाना जा सकता है कि नायिका के भेद तथा रागिनियों मे समान भाव दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

यह संगीत ग्रन्थ से अधिक शृंगार ग्रन्थ है, जिसमे अपने आश्रयदाता दिल्ली के बादशाह, शाहआलम की विलास तुष्टि के लिए, इस प्रकार का वर्णन किया गया है। रागो का नायक से और रागिनियो का नायिका से साम्य दिखाकर भैरव को अनुकूल नायक बताया है।

अन्य रागमालाओं के समान राग परिवार इसमे भी बताया है।

'प्रथम राग भैरो दुजो मालव रूप
तीजो हो हिंडोल अरु चौथा दीपक ।

---

1. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग।

गोरी राग है पांचयो, छठयो मेघ मलार।
...त है गुनी लपि लपि भेद अपार।'

इन्होंने औड़व, षाडव और संपूर्ण जाति न बताकर केवल मुख्य स्वरों का प्रयोग बताया है, परन्तु स्वर, अन्य संगीतकारों के समान भी नहीं हैं और आज के प्रयोग से भी भिन्न हैं। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि इन्हें संगीत का ज्ञान स्वयं नहीं था, केवल सुने हुए वर्णन के अनुसार लिखा है।
जैसे,

'धैवत पंचम ऋषभ सुनायो। तीनों...भैरव गावीं।
ऋषभ निषाद मिले सुर दोउ। मालकोस को गावो सोऊ।
मध्यम भेद निषाद...इ। राग हिंडोल कहो सुख पाइ।

इसमें रागों का लक्षण नहीं पता चल सकता, क्योंकि इन्होंने स्वरों का निर्देश ठीक नहीं किया है। भैरव में ऋषभ और धैवत का प्रयोग तो होता है, परन्तु पंचम का मुख्य नहीं होता। सम्पूर्ण जाति का होने के कारण पंचम का प्रयोग अन्य स्वरों के समान होता है। मालकंस में रिषभ और पंचम वर्जित होते हैं, इन्होंने रिषभ और निषाद को मुख्य बताया है। इससे जान पड़ता है कि यह स्वयं संगीत शास्त्र के ज्ञाता नहीं थे, अपितु अपने आश्रयदाता की आज्ञावश इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की, जिसके कारण शास्त्रीय अशुद्धियाँ रह गई।

पद्मनंदन मुनि कृत रागमाला

श्री पद्मनन्दन मुनि की 'रागमाला'[1] में षट राग, प्रत्येक की पांच भार्या और अष्ट पुत्रों के संक्षिप्त वर्णन हैं। उदाहरणार्थ—

'भैरव राग भृवालः वृषभ विण लाठ चलावै
मालकोस वन माल मृग मस्तक पहिरावे।
दीपक जोति पतंग कुंड में कविजन न्हावै।
श्री राग सिरताज प्रगट पाहण पघलावे।
मीठो मेघ मल्हार मेघ चहुँ दिस वरषावे।
तत वेता तिहुँ लोक में, विविध राग विसतर्यो
सरव राग में समरतां परम राग परचो लह्यो।'[2]

इसके पश्चात् सूर, तुलसी, गिरधर, दादू, कबीर, कृष्णदास आदि कवियों के भजन संग्रहीत हैं। जैसे 'चंद सखी' का एक भजन है—

मुरली वाले स्यांम, ब्रज में बस जा रे।
नैन भरे भर हंस जा रे। मु०
कोरी मटकीया दही जमायो, एक अंगली भर चप जा रे। मु०
जे तू चाल्यो मथुरा नगरी, मोहन माला जप जा रे। मु०
जे तू मोरी ब्रज मां चाले, नैन भरी भर हंस जा रे। मु०

---

१. खजांची संग्रह, बीकानेर।
२. श्री मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर।

तेरे कारण मैं महल चुनाया, एक महीनो तू बस जा रे। मु०
तेरे कारण मैं बाग लगाया, घटडा मिटडा चख जा रे। मु०
जे तू चाल्यो मथुरा नगरी। मोहन माला जप जा रे। मु०
चद सखी इस बाल कृष्ण छव हर चरण चित लग जा रे। मु०

यशोदानदन शुक्ल कृत रागमाला

श्री यशोदानन्दन शुक्ल कृत 'रागमाला'[1] मे आश्रयदाता का परिचय मगलाचरण आदि के पश्चात् रागो का परिवार वर्णित है। काव्यात्मकता से पूर्ण रागो का शृंगार वर्णन है। सगीत के अन्य अगो पर भी प्रकाश डाला गया है।

पहाडी रागिनी का वर्णन—

'पिय परदेश चल्यो चहत, सुनि भामनि सुध भूल।
गह्यो पाव तन पाहिडा, ग्रीवा डारि दुकूल।
चलत प्रवास पिय सुनि कै भई उदास आइ तिय पास
लै उसास कुछ कहिरह्यो।
भूले पान पान बोलत है आन प्रान लागे मैन बान
हिय गाढी पीर सहि रह्यो।
मैन से नयन दोऊ देपत है पिय मुख मुख नैन हुँ कह्यो
न जात दुप आगि दहि रह्यो।
पाहिडा सो प्यारी वह प्यारे इगीले जू को चरण
सरोज कर कजन सो गहि रह्यो।'

इन्होंने रागों के परिवार मे पत्नी और पुत्र के साथ सखा-सखी का भी वर्णन किया है।

हीयहुलास

'हीयहुलास'[2] मे रागमाला ही के समान रागों के परिवार तथा स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकें 'रागमाला' (पद-सग्रह)[3] और 'हीय हुलास ग्रंथ' के नाम से प्राप्त हैं, जिनका वर्ण्य विषय समान ही है, परन्तु कहीं कहीं 'हीय हुलास' स्वय कवि का नाम जान पड़ता है। 'हीयहुलास' मे एक स्थान पर कहा गया है—

'देसकार कचन बरन पेलत पिय के सग
हीय हुलास है काम को चढ़ो जुदा जो रग।'

यहाँ 'हीय हुलास' ग्रन्थ से अधिक कवि का नाम जान पड़ता है।

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ मगलाचरण से होता है। रागो मे प्रयुक्त स्वरो का निर्देश नहीं है, परन्तु समय, रस तथा प्रभाव की दृष्टि से उनका विवेचन किया गया है।

'भैरु की धुनि भैरवी बगाली बैराड
मधु माधवी अरु सधवी पाचो विरहन नार।'

---

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२. मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
३. 'रागमाला हीय हुलास' (रागबद्ध पद) श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली।

स्वरूप वर्णन में अधिकतर रागिनियों को विरहिणी रूप दिया है। रागिनी भूपाली भी विरहिणी है—

भोपाली विरहन परी केसर बोरे चीर
भयो विरह की झाल तें पीरी सबै सरीर'

तथा मल्हार भी विरह में दग्ध है।

'बीन गहै गावत बहुत रोती है जल धार
तन दुरबल विरह दह्यो विरहिन नाम मल्हार।
सेज बिछाई कमल दल लेट रही मन मार।
लेत उसासनि सियरि तन तनक वियोगिनि नार।

रागों के अतिरिक्त ताल का भी अध्ययन किया है। तालों के 'बोल' देकर संगीत के क्रियात्मक पक्ष पर प्रकाश डाला है।[1]

सागर कवि कृत रागमाला

सागर कवि की 'रागमाला'[2] बहुत संक्षिप्त है। केवल षट राग, उनकी रागिनियाँ और पुत्रों के नामों के पश्चात् उनका संक्षिप्त वर्णन है। इसके पश्चात् रागों में जो गीत दिए गए हैं, उनमें नवीनता है। रागिनी किसी विशेष रस में तल्लीन एक विशिष्ट नायिका के रूप में चित्रित है।

उदाहरणार्थ—

'राग ललिता—

प्रीतम चालीया है सखी ललिता करै विलाप।
हिरदा ऊपर होडतों मो विरहण की हार।'

गिरवर मिश्र कृत रागमाला

गिरवर मिश्र की रागमाला में[3] छः रागों और तीस रागिनियों का स्वरूप वर्णन हुआ है। इसका वर्णन बहुत कुछ हरिश्चन्द्र की रागमाला से मिलता जुलता है।

'भैरव रूप
स्याम रूप सोभा सुभग, परम पुरुष मन लीन।
राग सिरोमणि पेपि यह भइहं भव भय हीन।'

\+ \+ \+

माल श्री का रूप मुग्धा नायिका के समान है।

'मुग्ध वेस तनु हेम द्युति माल सिरी बहु भाँति।
बइठत गिरि कानन तरइं लावत बीरा पाँति।'

देव कृत 'राग-रत्नाकर'

महाकवि देव का 'राग-रत्नाकर', दो अध्यायों में विभक्त एक संक्षिप्त ग्रन्थ है। यह संगीत तथा काव्य दोनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

---

१. 'सम ताल—भन धी दि भः ना धी दि धी भा धी क ता।'
२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
३. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

प्रथम अध्याय में छ राग, भैरव, मालकौंस, हिंडोल, दीपक, श्री तथा मेघ, अपनी अपनी पाँच-पाँच भार्याओं के साथ वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय में उपरागों का वर्णन है। संगीत शास्त्र को समृद्ध बनाने के हेतु कवि ने प्रत्येक राग तथा रागिनी के स्वरों का निर्देश किया है। लक्षण के पश्चात् रागों के स्वरूप तथा शृंगार का आलंकारिक वर्णन किया है। काव्यात्मक सौंदर्य अधिक होने के कारण 'राग रत्नाकर' का महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से अन्य राग मालाओं की अपेक्षा अधिक हो गया है। रागों का वर्णन करते हुए कवि अनुप्रासमयी भाषा का प्रयोग तो करता ही है, साथ ही श्लेष अलंकार के द्वारा स्वर ज्ञान भी करा देता है। रागिनी बसंती का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

'सावरी, सुन्दरी पीत दुकूलनि, फूल रसाल के मूल लसती,
लीन्हे रसाल की मंजरी हाथ, सुरंगित आगी हिये हुलसती।
पूरन प्रेम, सुरंग म ध्यो धनी, संग ही-संग विलोल हसंती,
हैं उत है उत ही दिन मांझ, सभी करि रासेय बसंत बसंती।"[1]

उक्त उद्धरण में कवि ने श्री राग की भार्या बसंती मानकर बसंत का नारी रूप चित्रित किया है। 'सुरंग म ध्यो धनी' शब्दों में, षड्ज, रिषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद आदि सप्त स्वरों का अर्थ का संकेत करके चमत्कार दिखाया है।

पुरुषोत्तम कृत रागविवेक

कवि पुरुषोत्तम कृत 'राग विवेक'[2] में कवि परिचय आदि देने के पश्चात राग-परिवार और स्वरूप वर्णन हुआ है। काव्यात्मकता की दृष्टि से यह उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। भैरव का स्वरूप निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है—

उज्ज्वल गात सोहात सुधा सम उज्ज्वल वस्त्र विराजत तैसो।
सीस जटा मनि कानन कुंडल कानन वण्ड किये विष सोम सो जैसो।
लोचन लाल लसे ससि भाल, त्रिशूल कपाल धरे कर कैसो।
सिंगी बजावत दरात भावन भैरव राग को रूप है ऐसो।
प्रात समय अरु सरद ऋतु भैरव सुप को देत।
प्रगट भयो शिव बदन तें उपजावन चित चेत।

इस ग्रन्थ में कुछ प्रचलित रागिनियों के अतिरिक्त नए नामों का निर्देश भी किया गया है, जैसे, 'चन्द्रबिम्ब राग' और 'हर्ष राग' आदि। इन रागों का लक्षण स्वरों में नहीं बताया गया है, केवल शृंगार वर्णन है।[3]

---

१ हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, सप्तम संस्करण, पृ० २०८।
२ सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
३ 'यथा चन्द्रबिम्ब राग

पद्माधर पंकज बसन पद्मपानि कंज नैन।
पुष्पमालि नाना कुसुम चन्द्रबिम्बहि ऐन।'

भूधर कृत राग मंजरी

भूधर मिश्र की 'राग-मजरी' में सत्ताईस पृष्ठों के भीतर राग तथा रागिनियों का परिवार वर्णन है तथा स्वरूप-शृंगार का विस्तृत चित्रण है।

गंगाराम कृत सभाभूषण

कवि गंगाराम कृत 'सभाभूषण रागमाला'[1] में रागों का परिवार वर्णित है। रागों के स्वरूप का भी वर्णन है।

'मालकोस भार्या गौरी

कोकिल वयन तन वर्न, सु स्यांम वांम सुन्दर
सुषिम नाद श्राव कली कांनि हैं।
ववल वसन भूप देखे चंद लाजों विधि
रचि पचि कैं वनाइ सुप दानि है।
स रि ग म पव नि गेह संपूरन
सरद दिन चौथे पहर वपानि हैं।
अति ही सलोनी गौरी रागिनी वपानि हैं
इस सुर समयो वीचार गुनी जन मानि हैं।'

इसके पश्चात् कुछ रसखान के कवित्त भी दिए गए हैं।

शिवराम कवि कृत राग कौतिकपुर नवधा भक्ति सुवंश

'राग कौतिकपुर नवधा भक्ति सुवंश' शिवराम कविराज द्वारा रचित एक वृहद् ग्रन्थ है। इसके पांच खण्डों में से केवल तृतीय खण्ड में राग वर्णन, परिवार वर्णन और स्वरूप वर्णन है। अन्य खण्डों में ईश स्तुति कवि वंश, कवि कुल, कवि के देश के ठाकुर के देश नगर, ठाकुर का वंश, सूरजमल का वंश, कुम्हरी नगर का वर्णन, सभा बर्णन, नवधा भक्ति, प्रेम लक्षणा, नव रस, कीर्ति, सूरजमल के पुत्र का वर्णन, आदि हैं।

तृतीय खंड में षट राग, राग ऋतु वर्णन, प्रत्येक राग की पांच भार्या और अष्ट पुत्रों के वर्णन करने के पश्चात् इन सबों का स्वरूप वर्णन है। इसके पश्चात् शिवराम कवि ने भी रागों का मिश्रण करके राग बताए हैं।

सरदारसिंह कृत सुरतरंग

सरदारसिंह कृत 'सुरतरंग' में संगीत के कुछ अंगों पर प्रकाश डाला गया है। राग तथा रागिनियों का विवेचन प्रमुख है।

---

1. सरस्वती भंडार, कांकरोली; आर्यभाषा पुस्तकालय वाराणसी; म्यूज़ियम, अलवर।

दयाचंद जी कृत रागबत्तीसी

"राग बत्तीसी और रागमाला" पंडित दयाचन्द जी की रचना है।[1] यह जैन ग्रंथ है। इसमें रागों का विभाजन संस्कृत भाषा में है, परन्तु उसके पश्चात् रागों का स्वरूप व्रज में है। अन्त में राग बद्ध पद भी दिये गए हैं। ताल का प्रकरण भी ले लिया गया है।[2]

रसराशि कृत राग संकेत

'रस राशि' के 'राग संकेत'[3] में संगीत के अन्य अंगों पर संक्षिप्त प्रकाश डालकर, एक सौ दस रागों के नाम लक्षण सहित दिए गए हैं। यह ग्रंथ राजा श्री प्रताप के लिए संवत् १८५१ की माघ वदि सप्तमी को सम्पूर्ण हुआ।

प्रारम्भ में कुंडलिया छंद में मंगलाचरण देकर ही कवि विषय-प्रवेश कराता है।

श्री हरिहर गिरिजा गिरा गन पति गोपी गोप।
इनके मुष की लाग सौं भई राग की ओर।
भई राग की ओर चोप करि इन हीं गायो।
छओ रागिनी राग सबन को रूप दिखाओ।
नाद ब्रह्म को स्वाद प्रकट कीन्हो अमृतफर।
रसिकन में रस रासि आदि नायक श्री हरिहर।'

पूर्ण मिश्र कृत राग निरूपण

श्री पूर्ण मिश्र ने 'राग-निरूपण' में केवल रागाध्याय को वर्ण्य विषय बनाया है। कुछ अंश इनके वृहद ग्रंथ 'संगीत-नादोदधि' (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) के समान हैं। रागों के लक्षणों पर अधिक प्रकाश डाला है। उदाहरणतया—

'रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थायी निध ध्याउ।
सचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउ।

सा जथा ताल रूपक

ध नि स रि गम प ध नि स रि। इति स्वर प्रछन।'

संगीत राग-रत्नाकर

'संगीत राग-रत्नाकर' एक प्रकार का संकलन है। इसमें विभिन्न कृष्ण भक्त कवियों के पद संग्रहीत हैं। प्रारम्भ में राग-रागिनियों के चित्र भी दिए गए हैं। संगीत के अन्य अंगों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रंथ विभिन्न अध्यायों में विभक्त है। प्राप्त ग्रंथ तृतीय

---

१. मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर।
२. मार्ग ताल पाँच ते कवण। ताते चचपुटा ख्येत।
गुरु ड ड लघु प्लुतो ऽऽ।ऽ चचपुटा ताल। आदि।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

अध्याय है, जिसमें रागाध्याय को लिया गया है । स्वरूप वर्णन करते समय मल्हार का वर्णन 'हीय हुलास' के समान ही किया है।

'विरह राग गावत अधिक रोवत है जलधार ।
तन दुर्बल विरहा दहैं विरहिन नाम मल्हार ।
सेज बिछाई कमल दल लेट रही मन मार ।
सजल जलद तन मन वस्यो रही सु छवि उरधार ।'

रघुनाथ कृत जगन्मोहन

रघुनाथ कृत 'जगन्मोहन,'[१] ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, अलंकार, नखशिख और गायन सभी का सम्मिलित विशद ग्रन्थ है, जिससे कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। संगीत शास्त्र पर प्रकाश डाला गया है।

'सुद्ध सनातन ब्रह्मसो पहले उपज्यो नाद
वेद भयो ब्रह्मा भयो फेरि शास्त्र अनुवाद ।
नाद रूपी ब्रह्म है, ब्रह्म सरूपी नाद ।
नाद ब्रह्म में भेद नहिं वरने मुनि निरवाद ।'

रघुनाथ कवि ने रागिनियों के स्वरूप-वर्णन को विषय नहीं बनाया है।

गोपाल पंडित कृत संगीत सार

गोपाल पंडित कृत 'संगीत-सार' तीरासी पृष्ठों का ग्रंथ है, परन्तु अपूर्ण है। इसका विषय भी राग तथा रागिनियों का विवेचन है।

माधवदास कृत रागचितनी

'माधवदास' की 'रागचितनी'[२] में सोलह रागों का वर्णन है, परन्तु इस वर्णन में यह नवीनता है कि रागों के स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं, वरन् नायिका के स्वप्न देखने पर एक राग उत्पन्न हो गई, प्रिय की प्रतीक्षा में किसी विशेष राग का नाम आ गया। इसी प्रकार सभी रागों का नाम किसी न किसी रूप में आ गया है।

लछीराम कृत राग विचार

लछीराम कृत 'राग विचार' बारह पृष्ठों का छोटा सा ग्रन्थ हैं, जिसमें रागों तथा रागिनियों का स्वरूप-शृंगार वर्णित है।

इन सभी रागमालाओं में परिवार, स्वरूप और शृंगार वर्णन के पश्चात् रागों का मिश्रण दिया गया है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सबने एक ही सा मिश्रण किया हो। कहीं समान मत है, तो कहीं भिन्न भी है।

---

१. सरस्वती भंडार, रामनगरदुर्ग, वाराणसी।
२. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली।

जैसे—

"त्रिवन पहारी मालवो तीन राग इक ठाइ
नाम मनोहर गौरि यह रचि के श्रुतिहि सुनाउ।"

संगीत दर्पण–हरिवल्लभ[1]

और

"मारु त्रिविनि पहारी का तीन्यो सुर सम तानि
यह मनोहर राग है कहो ग्रापहनु मानि।"

राग-रत्नाकर राधाकृष्ण[2]

रागो के मिश्रण में कही कही भिन्नता मिलती है। फ़रोदस्त राग गाने के लिए राधा-कृष्ण के अनुसार श्याम, गूजरी और गौरी को मिलाना पड़ता है, परन्तु हरिवल्लभ के अनुसार गौरी और श्याम में पूरबी का मिश्रण करना होगा,[3] फिर भी अधिकाश रागो के सम्बन्ध मे मत एक ही हैं।

कुछ राग मालाएँ ऐसी भी प्राप्त हैं, जो विषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु उनके लेखको का नाम अज्ञात है। अभय जैन ग्रन्थालय मे प्राप्त कुछ ऐसी रागमालाएँ हैं, जिनका प्रारम्भ और अन्त यहाँ सूचनार्थ दिया जा रहा है। प्रथम 'रागमाला' तीन पृष्ठो मे बारीक अक्षरो मे लिखी हुई है, जिसका प्रारम्भिक तथा अन्तिम अंश यहाँ दिया जा रहा है।

प्रारम्भ

रागमाला दूहा
स्याम वरन तन दुष हरन सब रागन को राइ।
चँवर ढुरे भरदर करे, बनिता भैरो भाई।
पुहुप माल गर छजिहे, राग करत है ताल
घाम फटक सर पीत सग भाव भैरवी वाल।

अन्त

करत सजोग भरतार सो, रग है पीन विलास,
वस्तर पहिरत पुहुप के, भावन तनहि सुवास।
वेनी लाबी स्याम बहु बगाली रग सेत

---

१. द्वारकेश पुस्तकालय; कांकरोली, म्यूज़ियम, अलवर; गगा गोल्डेन जुबली म्यूजियम, बीकानेर; पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर; सरस्वती मदिर, उदयपुर।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर; म्यूज़ियम, अलवर; हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३. "स्याम राग अरु गूजरी गोरीमिलि अभिराम। फरोदस्त या राग को गुनो कहत हैं नाम।"—राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण। "जहाँ पूरबी गाइये गौरी स्याम समेत। फरोदस्त सो जानिये होइ श्रवन सुख हेत।"—संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

राग रागिनी तीस षटसुनी राइ कर हेत ।

इति रागमाला दोहा सम्पूर्ण ।"

द्वितीय रागमाला में भी छः राग और तीस रागिनियों का वर्णन है । रागिनियों का स्वरूप वर्णन किया गया है ।

प्रारम्भ

चले कामिनी कन्त के गृह सुर अरु सब मेव
रह निरूप लक्षण कहो करो कृपा गुरु देव ।

अन्त

नैन कमल मुख चन्द कुच कठोर कन्चन वरन
हरति नाह दुप दंद देसकार सुकुमार तन ।

इति षट राग तीस रागनी समेत समापंत ।

तीसरी रागमाला प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग में प्राप्त है, जिसमें लेखक और रचनाकाल का परिचय नहीं मिलता । छः राग और तीस रागिनियों का स्वरूप और शृंगार वर्णन छत्तीस पृष्ठों में किया गया है । संस्कृत और हिन्दी दोनों में रागों का स्वरूप वर्णित है ।

प्रारम्भ

श्री: अथ मेघ राग: ।

नीलोत्पलाभव पुरिंदु संमानचैल: पीतं वरं : स्तुपित चातक जाच्यमान : ।
पीयूष मद हसितो घन मध्यवर्ती वीरे युराजित जुवाकिल मेघराग: ।

दोहा— नील कमल द्विति पीत पट अमृत हास सित चीर ।
चातक जाचत मध्य घन मेघ जुवा जुत वीर ।
मल्लारी देशकारी च भूपाली गुर्जरी तथा टंका ।
च पन्चमी मार्ज मेघ रागस्य जोषिता ।

अन्त

अथ नट रागिनी दीपक की ।

तुरंगम स्कंधनि पवत बाह : स्वर्न प्रभ: शोभित शोनगाम:
संग्राम भूमौ विचरन्प्रतापी ।
नाटीय मुक्त: किल रंग भूति: ।

दोहा— हय के कांधे हाथ वरि मल्ल रूप मवि रंग ।
लोहू चर चो गात सब नाट जुद्ध उत्तंग ।

इति श्री रागमाला समाप्तं ।

चतुर्थ रागमाला राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर के पुरोहित हरिनारायण संग्रह में प्राप्त है, जिसका लेखक अज्ञात है । सं० १८७५ को लिखी हुई इस प्रति में रागों का विचित्र रूप है । राग का नाम लेकर कवि ने काल्पनिक दोहों का निर्माण किया है ।

प्रारम्भ

राग गिरी

पीव पधारय प्रीति करि ऐसी सुणत श्रावाज
हसि हरषी उमगी अधिक राम गरी वन बाज।

विलावल

सगि सखी सब ही सरस मुख मुरली की टेर
पीव पधारे पाहुण विलावल जो बेर।

अन्त

सो तन तो पिंजर भयो मन सुवटडो माहि।
मति रमजारी मारिमी जो रे आवे सी नाहि।
दीपग हाथिन विरहनी मारगडो जोवत
तुम विन म्हारा प्रीतमा निसि वासुर जोवत।

रागमालाओ के उपर्युक्त विवरण के आधार पर निम्नाकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१—रागमालाओ का आधार शास्त्रीय तथा सस्कृत सगीत साहित्य है।

२—लक्षणो मे विशेष अन्तर नही है, केवल थोडे बहुत परिवर्तन से सस्कृत लक्षणो का अनुवाद कर दिया गया है।

३—वर्णन शैली, दोहा-सवैया या दोहा-घनाक्षरी छन्दो के आधार पर चली है। अन्य छन्द भी हैं, किन्तु प्राधान्य उपर्युक्त छन्दो का है।

४—उदाहरणो मे शृगार-विषय प्रधान है। विविध प्रकार के प्रणय चित्र, सयोग और वियोग शृगार के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए है।

५—नायिका भेद का विषय बहुत प्रमुख और स्पष्ट रूप म चित्रित हुआ है। अलकार स्वभावतः आ गए हैं और पिंगल शास्त्र का उल्लेख गीत छन्दो के स्वरूप निर्धारण के अन्तर्गत हुआ है।

६—भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा है, उसमे बुन्देलखडी, राजस्थानी, तथा कही कहीं बहुप्रचलित फारसी शब्दो का भी मेल है। भाषा मे सगीत तत्त्व प्रमुख है।

उपर्युक्त विशेषताएँ शृगार युगीन काव्य के साथ सगीत काव्य के साम्य को स्पष्ट करती हैं। दोनो क्षेत्रो की एकरूपता बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है।

चित्र रागमालाएँ

शृगार युग मे बादशाहो के चित्र कला प्रेम के कारण फारसी और हिन्दी की रचनाएँ चित्रित की जाती थी। चित्रो को कविताओ मे और कविताओ को चित्रों में बदलना मुगल कालीन भारत मे एक अलग कला ही बन गई थी।[1] इसी के फलस्वरूप अनेक सगीत

१. दरबारी सस्कृति और हिन्दी मुक्तक—त्रिभुवनसिंह, पृ० २४।

ग्रन्थ, विशेष रूप से रागमालाएँ चित्र रूप में अंकित की गई। रागमालाओं की पूर्व वर्णित पंक्ति में ऐसी कुछ चित्र रागमालाओं को रखना भी अप्रासंगिक न होगा। यहाँ कुछ उन रागमालाओं का भी परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनका विषय भी यद्यपि राग और रागिनियों का स्वरूप वर्णन ही है, परन्तु चित्रों में अंकित होने के कारण उनका अपना विशेष महत्त्व है। काव्य की पंक्तियों में व्यक्त भाव को लेकर उसके आधार पर चित्र अंकित किए गए हैं। इनमें से कुछ तो उपर्लिखित रागमालाओं में से ही हैं, और कुछ भिन्न हैं। ये सभी रागमालाएँ राजाश्रय में लिखी गई हैं, अतः कवि के द्वारा स्वयं नहीं चित्रित की गई हैं, वरन राजाओं की कला-प्रियता के कारण सुन्दर भावों से युक्त रागमालाओं को लेकर राजाश्रित चित्रकारों के द्वारा उनका अंकन किया गया है। यों तो चित्रकला की विविध शैलियों की दृष्टि से उनका अपना अलग महत्त्व है, पर यहाँ केवल काव्यात्मक महत्त्व को दृष्टि में रखकर उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

ऐसे ग्रन्थों में हरिवल्लभ का 'संगीत दर्पण'[1] लक्ष्मणदास कृत 'रागमाला'[2] गोविन्द कृत 'रागमाला'[3] उल्लेखनीय हैं।

हरिवल्लभ के संगीत दर्पण की यह प्रति सुन्दरतम कही जा सकती है। सभी रागों के चित्र दिए गए हैं, यद्यपि केवल एक सौ सोलह दोहों की रचना है। अपूर्ण प्रति है। कहीं कहीं काव्य में वर्णित रूप और चित्रित स्वरूप में साम्य नहीं है। चित्रकार के मौलिकता के प्रेम के कारण ऐसा हुआ जान पड़ता है। उदाहरण के लिए, भैरव का वर्णन है :

> भैरव राग विराजत भू पर,
> सीस जटानि में गंग तरंगति लोचन चन्द लिलाटहिं ऊपर।
> हर रूप किएं कर सूल लिए हरिवल्लभ दीझै वजे, डमरू पर।
> भूषन नागनि के तन में धरि भैरव राग विराजत भूपरि।

चित्र में शिव जटाधारी तो हैं, परन्तु जटाओं में गंगा नहीं है, चन्द्रमा भी नहीं है। हाथ में त्रिशूल के स्थान पर वीणा लिए हैं, डमरू भी नहीं लिया है, धोती पहने हैं। नागों के स्थान पर मोती के आभूषण हैं। संग में तीन स्त्रियाँ हैं। एक गाने के लिए है, दूसरी मृदंग और तीसरी शंख वजा रही है। इस प्रकार भैरव के प्रसिद्ध योगी रूप में भी शृंगारिक रूप का ही आरोप कर दिया गया है।

लक्ष्मणदास की 'रागमाला'[4] में रागों के स्वरूप और चित्र वर्णन में समानता है, परन्तु वर्णन में मौलिकता है। भैरवी, भैवर की रागिनियों में से भी एक है और हिंडोल की भी एक रागिनी है। श्री राग की रागिनी को भी 'श्री' वताकर उसका वर्णन करते हैं—

> "अथ श्री राग की रागनी श्री रूप वर्णन।
> मृदुल दुर्वल स्याम सरीर। ऊजल मंजुल भीने चीर।

---

१. गंगा गोल्डेन जुबली म्यूजियम, तथा खजांची चित्रशाला, बीकानेर।
२. भारत कला भवन, वनारस युनिवर्सिटी।
३. वही।
४. भारत कला भवन, वनारस यूनिवर्सिटी, वनारस।

खंजन गंजन राजत नैन । कोकिल कल जीत मृदु बैन ।
परम मनोहर रूप उज्यारी । तलपति पच बान की मारी ।
षोडस बरस मध्य वर नारी । पिउ विदेस बिरहिनि दुषकारी ।
लैं पाटा लेषनि लैं तिया । दरसन हेत लिष्यो कर प्रिया ।
भई सुभगल मूरति जबही । ग्रस्त्र सिंधु उमगे दृग तबही ।
ग्राखिन तें ग्रांसुन की धार । जनु छूटे मोतिन के हार ।
लोचन जल करि दिष्ठि दिखाई । पिय तनु चित्र न देष्यो जाई ।

हिंडोल राग की रागिनी देसाष में नवीनता के कारण नारी का परम रूप चित्रित किया गया है।

माल मेष देसाष बिराजैं । जाकी दुति हिमकर छवि लाजैं ।
पवो ठोककर करी ग्रवाज मानौ सरद मेघ की गाज
मल जुष कों कछनी किए । है सर मधु गुमान हि लिये ।
बहु बिसाल ऊंचड़ु जाके रूप वपें भुव पड़ु ।
ताकी ग्रली माल वपु धरें । ग्रानन्दि उमगि ग्रवागाव झालरें ।
माल रूप एक माडी लगें प्रीतम चित्तु पैंम लषि पगें ।
लगति लगति ऊपर चढ़ि गई । नीचे नागल बनि फिर लई ।

दोहा— गुन ग्रागरि नागरि तन सुगन्ध जनु साथ ।
राषी चित चेतेरपनि इमि देषी देसाष ।

इसके चित्र में भी एक स्तम्भ पर उल्टी चढ़ी हुई नग्न स्त्री है । दो पहलवान व्यक्ति इधर-उधर खड़े हैं । इस शैली विशेष में शारीरिक बल की ग्रोर महत्त्व दिया जान पड़ता है । तभी नग्न स्त्री को भी पहलवानों के मध्य दिखाया है ।

गोविन्द कवि की 'रागमाला' में शृंगारिक वर्णन ग्रधिक है । यद्यपि ग्रनेक स्थलों पर ग्रक्षर ग्रस्पष्ट हैं, फिर भी ग्रर्थ जाना जा सकता है । इसमें भी रागों का परिवार ग्रौर स्वरूप वर्णन है । राग दीपक की रागिनी देसी का वर्णन है—

दिपावन दर्पन ग्रग म...हा काम कलानि बढ़ावतु है
रहै चित उदास पिया परदेस हैं ग्रौर कछू न सुहावतु है ।
हार सिंगार बनाय क ग्रग सपी यह हासु बढ़ावतु है ।
गोविन्द कहै यह दीपग को रागनी देसी ये नाम कहावतु है ।

चित्र में भी ऐसा ही चित्र ग्रंकित है ।

इसके ग्रतिरिक्त कुछ पूर्ण ग्रौर कुछ खंडित प्रतियाँ, बम्बई तथा लखनऊ म्यूज़ियम में प्राप्त हैं । चित्र रागमालाग्रों का विभाजन चित्र-शैली तथा राग विशेष के नामों के ग्राधार पर किया जाता है, ग्रतः एक ही रागमाला के पृष्ठ भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में बिखर गए हैं ।

लखनऊ म्यूज़ियम में कुछ रागमालाग्रों की खंडित प्रतियाँ हैं । चित्र रागमालाग्रों

---

१. भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी, बनारस ।

की इन खंडित प्रतियों का साहित्यिक दृष्टि से यही महत्व है कि एक चित्र पर लिखी हुई पंक्तियों के आधार पर कवि की सम्पूर्ण रचना को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, लखनऊ म्यूज़ियम में बीकानेर शैली की एक रागमाला प्राप्त है, जिसमें कवि अनंत की रचना के आधार पर चित्र बनाये गए हैं। उसका एक अंश यहाँ दिया जाता है।

"रागिनी मालविका—
भैरूं की रागिनी मालविका नाम।
थलनुतपनि कमल दल लीये । तन पीने दीपरावति कीये।
श्री फल व्रछ तरे विश्राम। कवि अनंत मालविका नांम।"[1]

अथवा "श्री राग की रागनी गुजरी प्रथम।
स्याम सरीर अति सुंदर केस। मलय व्रछ पलवनि सुदेस।
कर लीये साव कारति करै नाव अनत गुजरी वरै।"[2]

इसी प्रकार सम्पूर्ण 'रांग माला' के चित्र कवि के नाम की छाप से समन्वित कविता के आधार पर एक ही स्थान पर संकलित किए जा सकते हैं। इस प्रकार की रागमालाएँ समस्त भारत के विभिन्न 'कला-संग्रहालयों' में प्राप्त हैं।

व्यावहारिक संगीत-साहित्य

व्यावहारिक संगीत-साहित्य से तात्पर्य है—वह साहित्य-संगीत जो समाज के लिए विशेष उपयोगी रूप में प्रयुक्त हो। इस साहित्य को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता हैं :—

१—उदाहरण ग्रन्थ
२—जन संगीत

धार्मिक दृष्टि से ईश्वर की स्तुति के लिए लगभग सभी देशों में संगीत का आश्रय लिया जाता है। भारतीय समाज में धार्मिक उत्सवों के अतिरिक्त ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब केवल संगीत के ही माध्यम से भारतवासी अपने आह्लाद को प्रकट करते हैं। इस प्रकार का संगीत उनके जीवन में इतना विंध गया है कि किसी भी शुभ घड़ी को मनाने के लिए गीतों का आश्रय लेना आवश्यक है, इसका प्रमाण वैदिक काल से मिलता है। ईश्वर को रिझाने के लिए यदि हमें भजन, कीर्तन पद और आरती की आवश्यकता पड़ती है तो बच्चे के जन्म, विवाह अथवा अन्य किसी अवसर पर, बधावा, घोड़ी, बन्ना आदि गीतों को गाकर हर्ष मनाया जाता है। यह केवल घरों में ही सीमित नहीं रहा। सामाजिक, राजनीतिक तथा किसी भी प्रकार के सामूहिक उत्सवों के लिए सामूहिक गान और सामूहिक नृत्यादि से अवसर को राग रंजित किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदि काल में लिखे गए अनेक 'रासो' इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

जनता की इस व्यावहारिक माँग के ही कारण ऐसी सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त

१-देखिए, चित्र रागिनी मालविका।
२-देखिए, चित्र रागिनी गुजरी।

रागिनी मालविका

(स्टट म्यूजियम लखनऊ क सौजन्य स प्राप्त)
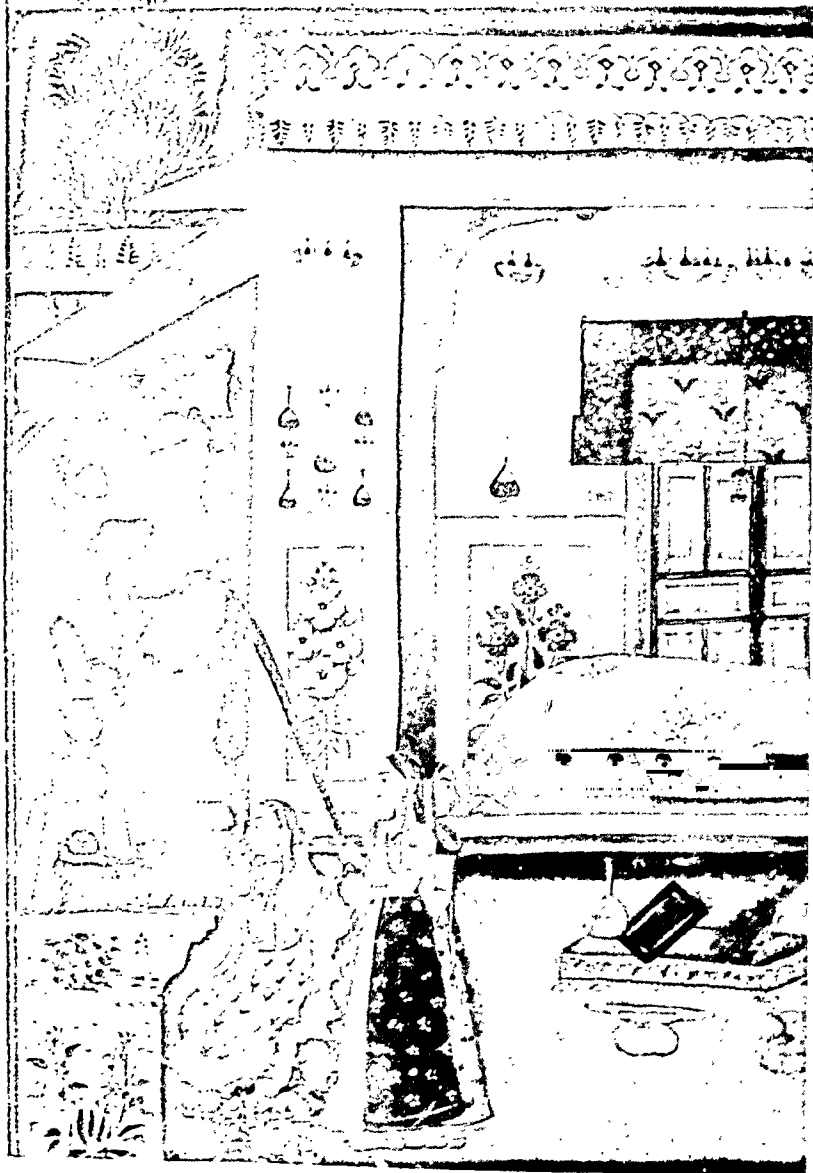
रागिनी गूजरी
(स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

है, जिसका विविध अवसरो पर, साधारण जन समूह द्वारा, राज घरानो म, उत्सवो मे तथा मन्दिरो मे गायन होता था और उसका अपना अलग महत्व था। शृगार युग मे सगीत का प्रचार होने के नाते हर समय पर इसकी आवश्यकता पडती थी, अत ऐसे गीतो से साहित्य का भी कोष भर गया। इसमे राग-रागिनियो को भी महत्त्व मिला और कुछ केवल गेय काव्य के रूप मे व्यवहृत रहा।

सख्या मे अधिकता और विषय मे विविधता होने के कारण इस कोटि की रचनाओ को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

प्रथम, उदाहरण ग्रन्थ
और
द्वितीय, जन-सगीत।

उदाहरण ग्रन्थ

शृगार युगीन काव्य की विशेषताओ मे से एक है—लक्षण-लक्ष्य ग्रन्थो का लिखा जाना। *आचार्यत्व की उपाधि प्राप्त करने की इच्छा से कवियो ने रीति ग्रन्थ लिखे।* *सस्कृत* ग्रन्थो के अनुसार हिन्दी मे भी काव्य शास्त्र, नाट्य शास्त्र और छन्द शास्त्र आदि पर लक्षण ग्रन्थ लिखे गए और लक्षण ग्रन्थो के आधार पर जो लक्ष्य ग्रन्थ लिखे गए, उन्हे उदाहरण ग्रन्थो के नाम से पुकारा जा सकता है। ये लक्ष्य ग्रन्थ शास्त्रीय दृष्टि से तो पूर्ण हैं, परन्तु *उनमे रस का स्वाभाविक प्रवाह कम मिलता है। सगीत-काव्य के उदाहरण ग्रन्थ लक्ष्य* ग्रन्थो से कुछ भिन्न हैं। इनमे दोनो प्रकार के ग्रन्थ प्राप्त हैं। कुछ शास्त्र को दृष्टि म रख कर लिखे गए हैं और कुछ ग्रथो मे ऐसे गीतो की रचना है जो शास्त्रीय दृष्टि से सगीत के लक्षणो के अनुसार ठीक बैठते हैं, ऐसे ग्रथो को उदाहरण ग्रन्थो मे रखा गया है। इनमे नियमों की कठोरता न रहने के कारण स्वच्छन्द प्रवाह भी मिलता है। सभी राग-रागिनियो मे बद्ध गीत काव्य को उदाहरण ग्रन्थो के अन्तर्गत रखा गया है। ये काव्य साहित्यिक दृष्टि से भी सुन्दर हैं। ऐसा साहित्यिक उदाहरण-काव्य अधिकाशत साहित्य के विद्यार्थियो के सम्मुख आ चुका है, जैसे सन्त साहित्य और भक्ति साहित्य। यहाँ पर ज्ञात साहित्य पर सक्षेप मे विचार करके केवल अप्रकाशित और अभी तक लगभग अज्ञात रचनाओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

भक्ति-काव्य

भक्ति काव्य के अतर्गत निर्गुण सन्तो तथा सगुण भक्तो द्वारा रचित काव्य सगीतात्मक है। सत साहित्य मे विविध मतों के सन्तो के भजन राग-रागिनी बद्ध मिलते हैं। विशेषतया दादू पथियों के असख्य पद सग्रह है। वह एक अलग विषय है। यहाँ तो केवल यह देखना है, कि उससे और सगीत के लक्षणो से कितना सम्बन्ध है। यह ठीक है कि ये वैराग्य पूर्ण भजन सन्तो द्वारा गाए जाते थे और उन्ही रागो मे गाए जाते थे, जिनमे लिखे हुए मिलते हैं, परन्तु यह केवल एक परम्परा का निर्वाह करने के हेतु था। यदि कोई भजन भैरवी मे गाया जाता है तो इसका अर्थ यह नही था कि माल कोष मे उनको नही गाना चाहिए या

गौरी में गाने से उसका प्रभाव बदल जाएगा, वरन् केवल इसलिए कि गुरु के द्वारा जिस राग में भजन गाया गया वह शिष्यों के द्वारा उसी में गाया जाता रहा और लिपिकारों के द्वारा उसी प्रकार लिखा गया। अब केवल पढ़ने और लिखने में ही राग के नाम का निर्देश होता है, शेष कोई सम्बन्ध नहीं।

इन गायकों को रागों के सम्बन्ध में इतनी जानकारी अवश्य थी कि अमुक राग अमुक समय में ही गाना चाहिए, अतएव जाग्रति के सन्देश का गीत भैरव-भैरवी में गाया गया। जो पद गुरु ने जिस समय गाया, उसे उसी समय के अनुकूल राग में बांध दिया और शिष्य उसे उसी प्रकार गाते रहे। ऐसा राग-बद्ध काव्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त है।

राग-बद्ध गीत-साहित्य का प्रचार बहुत अधिक था। सन्तों का सम्बन्ध अधिकतर जनता से था, अतः ऐसा राग-बद्ध साहित्य लोक-गीतों के रूप में साधारण जन-समूह को कंठाग्र भी है और लिखित रूप में भी प्राप्त है।

सन्तों के अतिरिक्त सगुण भक्तों के भजन-संग्रह भी रागों में बद्ध मिलते हैं। भक्ति-साहित्य में राग-रागिनियों का अधिक महत्त्व है, इसका कारण उनकी सगुण भक्ति है। सगुण भक्ति होने के कारण उनकी उपासना मन्दिर में किसी देवता को प्रतिष्ठित करके भी होती थी और मन्दिरों में प्रातः से लेकर रात्रि तक, समय के अनुसार रागों में पद (गीत) गाए जाते थे। उसी परम्परा का पालन अन्त तक होता रहता था। इन पदों (गीतों) में रागों का स्वरूप भी कम विगड़ता था। मालकोंस का भजन उसी-राग के स्वरों में रात्रि को ही गाया जाता था। सुबह के समय रात्रि का राग नहीं गाया जाता था। यही कारण है कि लगभग जितना अष्टछापी साहित्य मिलता है, सभी रागबद्ध है। शृंगार युग में केवल कृष्ण भक्ति ही प्रचलित थी, अतः तत्कालीन सभी भजनों का आलम्बन कृष्ण है। इसका उदाहरण आज भी भारत के कुछ मन्दिरों में मिलता है, जहाँ परम्परा का पालन हो रहा है। वहाँ हमें भक्तिकालीन गेय काव्य के स्वरूप की झाँकी मिलती है। नाथद्वारा (उदयपुर) का श्रीनाथ जी का मन्दिर इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। भोर से रात्रि के दस बजे तक का परम्परानुगत कार्यक्रम और श्रीनाथ जी की प्रत्येक सेवा पर विशेष रागों में बद्ध विशेष भजनों का गायन अभी तक प्रचलित है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि रागों में उसी स्वर-लिपि का प्रयोग अब भी किया जाता है, जो उस समय प्रयुक्त की जाती थी या लक्षणों की दृष्टि से रागों का सही गायन होता है—क्योंकि उनके गाने का ढंग ऐसा है, जिनमें अशुद्धि होना सम्भव ही नहीं, अनिवार्य है। निर्धारित समय में निर्धारित कुछ भजनों की नियुक्ति आठ या नौ गायकों के द्वारा गाये जाने के आदेश का अब भी पालन किया जाता है। समयाभाव के कारण द्रुत लय हो जाती है और शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का लग जाना सम्भव ही है, अतः राग के लक्षणानुसार स्वर नहीं लग पाते, परन्तु गायन-काल का ज्ञान अभी तक गायकों को बहुत पूर्ण है। इसके अतिरिक्त, होली के दिनों में धमार का गायन और प्रातःकालीन स्तुति के लिए गम्भीर ध्रुपद का गायन अभी तक प्रचलित है, किन्तु उन गीतों में भी द्रुत लय के कारण धमार के बोल चांचर में परिवर्तित हो जाते हैं और गीत (पद) की मूल गम्भीरता नष्ट हो जाती है।

चाहे उन गीतों का वर्तमान रूप कुछ भी हो, रागों में बाँधने का महत्त्व इससे सिद्ध होता है। एक ही पद यदि भिन्न रागों में मिलता है, तो भी इसका कारण यही जान पड़ता है कि वह पद विभिन्न कालों में गाया गया है। ये भक्त गायक रागों को समयानुसार ही गाते थे। इस साहित्य की मात्रा बहुत अधिक है। भक्ति काल से चला आता हुआ साहित्य शृंगार युग में भी जीवित रहा। अनेक संग्रह ऐसे प्राप्त हैं जो केवल भजनों को एकत्र करके बनाए गए हैं।

उदाहरण ग्रन्थों में कृष्णानन्द व्यास देव 'रागसागर' कृत राग कल्पद्रुम', कुदरतुल्ला कृत रागमाला[1], व्यास कृत रागनिर्णय व्यास जी की वाणी[2], पं० देवकी नन्दन मिश्र गौड़ की पुस्तिका (जिसमें मुसलमान कवियों के पद संग्रहीत हैं)[3], गहर गोसांई कृत संगीत पच्चीसी[4], राग रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि[5], मानसिंह कृत राग-सागर[6], जवानसिंह जी 'वृजराज' कृत 'रस-तरंग'[7], नागरीदास कृत अनेक ग्रन्थ[8], प्रतापसिंह जी 'वृजनिधि' कृत हरि पद संग्रह[9] को लिया गया है।

राग-कल्पद्रुम

उदयपुर महाराणा के संगीतज्ञ श्री हीरानन्द व्यास देव के पुत्र श्री कृष्णानन्द व्यास देव 'राग-सागर' का लिखा हुआ 'राग कल्पद्रुम' एक सुन्दर उदाहरण ग्रन्थ है। इसमें नाद, स्वर और संगीत शास्त्र के मुख्य अंगों पर संक्षेप में, अन्य संस्कृत ग्रन्थों के उद्धरण देकर उदाहरण स्वरूप भजन दिए हैं। इन भजनों का संग्रह इन्होंने बीस बाइस वर्ष भारत भ्रमण करने के पश्चात् किया है। इसीलिए इसमें संस्कृत हिन्दी, गुजराती, मराठी, कर्णाटी, तैलंगी तामिल, बंगला, उड़िया, अरबी, फारसी, उर्दू, पैगयान, अंग्रेजी तथा राजपूताने की नाना प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित अनेक प्राचीन गानों का संग्रह है। बहुत से ऐसे गान हैं जो अब प्रायः लुप्त हो चुके हैं, अतः अनेक प्रसिद्ध और अज्ञात संगीतज्ञों तथा लेखकों की रचनाओं के साथ 'राग सागर' कृत रचनाएँ भी हैं।

यह ग्रन्थ सात विभागों में विभक्त है। 'राग विवेकाध्याय' संस्कृत में है। 'रागा

---

१ पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय।
२ आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
३ वही।
४. वही।
५ वही।
६ पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, म्यूजियम, अलवर।
७ मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
८ पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
९ आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
१० व्रज निधि ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा द्वारा सम्पादित।

गोविन्द संगीत सार' के समान इसमें भी तान-प्रस्तार, आलाप, पलटा प्रस्तार, अलंकार आदि की सरगमें दी हैं।

उदाहरण स्वरूप, स्वरालाप पलटा प्रस्तार

स रे ग म प ध नि १ स नि ध प म ग रे स २
सरे सेरेग १ रेग रेगम २ ग म ग म प ३ म प म प ध ४
प ध पधनि ५ ध नि ध नि स ६ स नि स नि ध ७
नि ध नि ध प ८ ध प ध प म ९ पम पम ग १०
मग म ग रे ११ ग रे ग रे स १२

इस ग्रन्थ में तत्कालीन प्रचलित लक्षण गीतों का भी संकलन है। उदाहरण के लिए सदारंग का प्रचलित भैरव का लक्षण गीत चौताल में इस प्रकार दिया है:—

'भैरव चौताल'
स रे रे ग म प ध नि सप्त स्वर मो मन में ऐसे आए।
आरोही अवरोही स रे ग म नि ऐसे होत नि ध प म ग रे स।
पुन दुगुन कीजै तो ऐसे लीजै सुरन को तव आवे
सवन के मत में कण्ठ को सुधार।
धनि सनि सरे सरेग रेग मग मप मप मपध पधनिध
नि स सनि धनि धप धम मप मग मग मग रे ग रे स

अथ दूसरा आभोग

दुगुन सरगम कियो विचार
गुरुन पै सिख के स्वरन को उचार
सस रे सस सरे गरेस मस रे ग रे स स स रे ग म गरेस
स स रे ग म प ध नि ध प म ग रे स। स रे ग म प नि ध नि स
नि ध प म ग रे स नि ध प म ग रे स ध प म ग रे स
प म ग रे स म ग रे सा ग रे सा सा सा नि नि ध नि
नि ध प ध ध प स प प म ग म म ग रे ग ग रे स रे रे स।

अथ तीसरा आभोग

और दुगुन कीजै तो ऐसे होते हैं
सवन के श्रवण में नीके सुहावे
स स रे स रे रे रे ग रे ग ग ग म ग म म म प स
प प प ध प ध ध ध नि ध नि नि नि स नि सा
नि सा सा सा नि सा नि नि नि ध नि ध ध ध
प ध प प प म प म म म ग म ग ग ग रे ग रे रे रे स रे सा।

धुरपद मध सदारंग बनाई

सभी प्रकार के लक्षण गीत, गीत, भजन और लोक गीत, एकत्रित हैं। उदाहरण के लिए एक लोक गीत है,

"महाराज बनिनिया गौने चली, भरे हो ठाढ़ी रही रे।
नैनो रोवे कारी मुख हसे री, छटकी नैं खाई हैं पछाड़,
भ्राए बनिया ले चले गवने नेहर हो गए पहाड़—भरे हो ठाढ़ी रही रे। भ्र।"

देशी तथा विदेशी भाषाओं के गीतों का भी सकलन है। उदाहरण स्वरूप पंजाबी का एक ध्रुपद है।

'भ्रसा नाल कुड़ी कुड़ी गलाकर।
दारहदा प्यारिय भ्रौर दे नाल
हसदा बोलदा सदेमे जादानी वे घोलघोल
रतदेहाड़े ध्यान रहदातु
साडा सोण्या भ्रावदा नाही माइडे कोल
मायल करसानु घायल कीना
सावली सुरत निरखहु न लीना चितचोर भ्रमोल।
भोह कमान तिरछी चलावदा
नैना दे बानतु सोच लावदा तोल तोल।'

गायन की विभिन्न शैलियों के गीत ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि सभी संग्रहीत हैं।

'टप्पा

मेडे वेडे नुग्रामीवे तेडे घोल घतिने
निन उठ जिंद तप दी रहदिवे
तेडे सानर भ्रपने पराए लोक देसाई
तेडे न चह दिवे।'

राग-रत्नाकर तथा चिंतामणि

प्रकाशित पुस्तकों में 'राग कल्पद्रुम' के पश्चात् 'राग-रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि' उल्लेखनीय हैं। इसमें अष्टछापी भक्त कवियों के पद संग्रहीत हैं। इन पदों का संग्रह लाला भक्त राम, मेम्बर धर्मसभा, जालन्धर ने विनोदार्थ किया था। सवत् १६७८ में सेम राज श्री कृष्णदास ने इसको प्रकाशित कराया। इस पुस्तक में कृष्ण भक्तों के प्रचलित पद सकलित है। ये रचनाएँ राग भ्रौर तालबद्ध हैं। इनका साहित्य में बहुत महत्व है। इसमें स्वरों के लक्षण नहीं हैं, केवल उदाहरण स्वरूप भजन ही दिए गए है। इनका भजनों की दी हुई रागों से सम्बन्ध यही है कि ये गीत इन्हीं रागों में भ्रौर इन्हीं तानों में गाए जाते रहे होंगे। कृष्ण से सम्बन्धित सभी विषयों पर बनाए गए पद, विनय के पद, पूजा तथा सब भ्रवसरों पर गाए जाने वाले पद, मिलते हैं। जन्म, दान, साँझी, सरद, हाली आदि पर लिखे गए हैं।

राजाओं की रुचि के कारण संगीत में भी चपलता का आदर था, भ्रतएव ध्रुपद भ्रौर धमार की कम बन्दिशें मिलती हैं भ्रौर ख्याल, ठुमरी भ्रौर टप्पा अधिक मिलता है।

धमार की संख्या यदि अधिक है तो उसका कारण यह है कि धमार होली गायन है। होली पर पूरे मास उत्सव मनाया जाता था। उसमें धमार आज के समान गम्भीरता से न गाया जाकर, द्रुत लय में गाया जाता था, अतः चांचर[1] के समान प्रभाव डालता था। ध्रुपद में भी विषय की गम्भीर तान रहकर श्रृंगारिक पद गाए जाते थे। जैसे,

लाय दिखावो री माई प्यारे को चरण
श्याम विरह मोहि व्यापत है वाही के शरण।[2]

यही बोल 'ख्याल' के हो सकते हैं।

इन संग्रहों में राजस्थान के महाराजाओं का बहुत बड़ा हाथ है। महाराजा मानसिंह 'रस राज', 'जवानसिंह जी महाराज' 'ब्रजराज', 'नागरीदास (सावंतसिंह)', प्रतापसिंह जी महाराज 'ब्रजनिधि' के बहुत संकलन मिलते हैं। इन सभी ने विभिन्न प्रचलित राग-रागनियों में प्रचलित गीतों का संकलन किया है।

महाराज मानसिंह ने एक ग्रन्थ 'राग सागर' लिखा और इसके अतिरिक्त अनेक गीतों की रचना की। गीत अधिकतर श्रृंगारिक भावनाओं से भरे हैं। ध्रुपद भी 'चारताल' में है, पर उसमें न तो चारों अंग, स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग हैं और न भावों की गम्भीरता है। उदाहरण के लिए,

'राग देवगंधार चौतालो

गये कजरारे तेरे नैंन बिना ही दीनैं अंजन के अनियारे। अस्ताई
मतवारे रसराज बिना ही मद प्याके कन्हईय्या कुं पियारे।'

ध्रुपद और ठुमरी में भावों तथा आकार की दृष्टि से विशेष भेद नहीं है।[3]

'राग कालिंगडो ठुमरी आडो तितालो
अलवेले चम्पा चीर में। असताई
बिजली सो चमके सरीर पियारी जी रो
पियरी घटा की भीर में

इनके काव्य में श्रृंगारिता भी बहुत है।

जवानसिंह जी महाराज ने 'ब्रजराज' और 'नगधर' के नाम से राग और ताल में बद्ध सुन्दर रचनाओं का संग्रह किया है और कुछ स्वयं भी बनाए हैं। इन्होंने केवल ध्रुपद ख्याल, टप्पा, ठुमरी ही नहीं लिखे हैं, वरन् घोड़ी, बन्ना, समधिन के स्वागतार्थ गीत, साँझी या किसी भी अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों को राग-ताल में बाँध कर लिखा है।[4]

---

१. चांचर एक चंचल गति की ताल है।
२. रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि, लखनऊ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी; म्यूजियम, अलवर।
३. ध्रुपद गांभीर्य प्रधान तथा ठुमरी चांचल्य प्रधान गीत है।
४. जन्म के समय का गीत—'बधाई सारंग': अलबेली जचा माग सुहाग भरी हो गोद

इन्होंने अधिकतर 'नगधर' के नाम से पद लिखे है । पुरातत्व मन्दिर (अब जोधपुर मे है) मे जो इनके सग्रह की खडित प्रति 'गीत-सग्रह' के नाम से मिलती है, उसमे 'नगधर' के नाम से ही पद है । जैसे–

'झूलत झमक झकोर नमे अति नगधर पिय मन भाई'

अथवा 'नगधर स्याम तमाल के मनु लपटी हैं वेल सुहाई हो ।'[1]

अन्य गीतों के अतिरिक्त रास के गीत और उस पर काव्य बहुत सुन्दर हैं । सामूहिक नृत्य 'गरबा' जो गुजरात मे बहुत प्रचलित है उसके लिये लिखे गए गीत अत्यन्त सुन्दर हैं । गुजराती, मेवाडी मारवाडी और ब्रज भाषाओं म पद हैं । रास के पद (गीत) का उदाहरण–

"राग ईमन रास चौतालो
थोग थोग तत तत तन थेई थेई थेई
नृत्यत सुघर स्याम ताल मन भाई
घुमक्ट घुमक्ट खिलात रग रही पिय मग नृत्यत
नवेली सबही सुहाई।
तता थेई तता थेई थोग गतें लेत प्रीतम सग
गत अलाप मिली राग केदारो गाई ।
उघट उघट रीझ नगधर सग रग लेत
चपल नैन वर भहें त्रिभुवन छवि छाई ।"

'नगधर' के सग्रह मे कहीं कहीं नागरीदास कृत दोहे या पदादा और हरिदास स्वामी कृत दोहे भी गीतो के बीच बीच मे मिलते हैं ।

'नागरीदास' महाराज सावतसिंह का उपनाम है । इन्होंने 'उतसव माला'[2] मे राधा कृष्ण के वर्षोत्सव का राग-रगिनियो मे वर्णन किया है । इनकी एक पुस्तक 'पद-मुक्तावली' पोथी खाना, जयपुर मे है, जिसका लिपिकाल स० १७६८ है तथा लिपिकार नानग राम है ।

नन्द महर कुल दीप उजारो अत्रुन के उस साल को
महर जसोदा ढोटा जायो सोहत है तन स्याम को
नगधर जनम असीसत टाढिन भैया भयो बलराम को ।

या बनरा राग सोरठ मल्हार–ताल झूमरी
बनड़ा जा हो राज नवल बना रे रगराता ।
भुप पकज की सोभा निरपत निरप निरप निरपाता
प्रीत छके देपत प्यारी कुं फिर वुग वहि दिस जाता ।
देप छवी दुग पजन इकटक नगधर पिप मदमाता ।

१. गीत-संग्रह, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर ।

२. म्यूजियम, अलवर ।

इनके संग्रह फाग विलास,[१] फूल विलास[२], फाग-विहार[३] के नाम भी प्राप्त हैं। नागरी दास के अन्य अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं तथा सभी समान रूप से संगीतात्मक हैं।

इसके अतिरिक्त प्रतापसिंह ब्रजनिधि के 'ब्रजनिधि-बीसी',[४] 'प्रेम-प्रकाश'[५] 'फाग-रंग,' 'रमक भमक बत्तीसी' (अठारह कृतियों का सग्रह),[६] 'गीत-संग्रह,'[७] चतुर कवि के 'कवित्त संग्रह'[८], सिरदारसिंह जी का 'सुर-तरंग,'[९] महमद शाह की 'संगीत मालिका टीका'[१०], 'शृंगार-'संग्रह'[११] आदि अनेक कवित्त-संग्रह ऐसे प्राप्त हैं, जिनमें राग और ताल बद्ध गेय पदों का संग्रह है।

जन-संगीत काव्य

व्यावहारिक संगीत ग्रन्थों में दूसरा वर्गीकरण 'जन-संगीत काव्य' का है। 'जन-संगीत काव्य' का अर्थ है जो काव्य जन मात्र पर आधारित अथवा उससे सम्बन्धित हो। ऐसा गेय काव्य 'जन-संगीत काव्य' के नाम से यहां रखा जा रहा है। यह काव्य विविध प्रकार का है। विषय की दृष्टि से इसको हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं: ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक।

इस साहित्य की यह विशेषता है कि यह गेय है, परन्तु इनमें राग और ताल का बन्धन नहीं है। ताल के अभाव में कोई भी गायन कर्णप्रिय नहीं हो सकता, इसलिए प्रत्येक गीत बिना प्रयास के ही एक विशेष लय में बँध जाता है। यह लय विशेष, स्वयं ही एक ताल को जन्म दे देती है। गाँवों में प्रचलित वाद्यों पर ही ये गेय-काव्य ठीक बैठते हैं।

ऐतिहासिक गज़ल

ऐतिहासिक विषयों को आधार बनाकर 'गज़ल' और 'आल्हा' लिखे गए। जिस प्रकार 'आल्हा' में वीर रस प्रधान रख कर ऐतिहासिक कथाओं से कथानक लेकर एक विशेष लय बद्ध गेय काव्य बनाया जाता है, उसी प्रकार 'ग़ज़ल' में कवि अपने राज्य के राजा का,

१. म्यूजियम, अलवर।
२. वही।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. पोथीखाना, जयपुर।
५. म्यूजियम, अलवर।
६. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. म्यूजियम, अलवर।
८. पब्लिक लाइब्रेरी, भरतपुर।
९. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१०. वही।
११. लेखिका के निजी संग्रह में विद्यमान है

नगर का तत्कालीन नगर की स्थिति का तथा प्रकृति का थोडा थोडा वर्णन करता है। दाभा हा काव्य म मुद्रित गान के रूप म गाए जाते हैं। जन-संगीत काव्य म वर्णित 'गजल' आधुनिक उर्दू शायरी म प्रचलित गजल से सर्वथा भिन्न है। उसका वर्णन छन्द म किया गया है। गजल का न पद है यह विशेष छन्द जिसमे आठ मात्राए होती हैं। कहरवा (जो गाने म बजाए जाने वाली तालो म सर्वाधिक प्रचलित है) को दुगनी लय म बजाकर दो आवृत्ति म एक पक्ति का गायन हो सकता है जितनी गजल प्राप्त हैं सभी की लय एक ही होती है। खेतल कवि की चित्तौड की गजल उदयपुर और चित्तौड की गजल अजन च द कवि की दुमाला गाव की गजल कल्याण कवि कृत गिरनार गजल भाज कवि की उदयपुर गजल नन्दलाल की वियोग आदी गजल[1] आदि सभी म एक ही प्रकार की लय है।

खेतल कवि की चित्तौड की गजल का एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है।

> गढ चित्तौड है बका
> कि सानु समद मे लका
> कि वहल पूर तल वहती
> कि अम्ब गम्भीर भी रहती
> कि अल्लदेत अल्लाखान वाधी
> पुल वडी परवीन गैबी पीर है गाजी
> कि अकवर अवली या राजी। आदि

कहीं कहीं एक ना अन्तरा का वाक्य या कमी है। उसका कारण उनके गान का विशेष ढंग है। कि के प्रयोग से ही अगली पक्ति प्रारभ करने का बोध होता है। यह छन्द मुसलमानो के प्रभाव से ही हिन्दी म आया है इसलिए भाषा में भी उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है।

मजलस

गजल के अतिरिक्त एक प्रकार का काव्य मिलता है, जो मजलस कहलाता है। बहुत से साहित्यकार तो इस काव्य और फिर संगीत काव्य मानने के लिए तयार हो न होंगे परन्तु जिस प्रकार गद्य का अंश होते हुए भी कुछ अश पद्य का होने के कारण चम्पू का काव्य के अन्तर्गत रखा गया है उसी प्रकार गद्य म लिखे जाने पर भी लयात्मक होने के

---

१ पुरातत्त्व मन्दिर जोधपुर।
२ वही।
३ वही।
४ वही।
५ वही।
६ वही।

कारण 'मजलस' को भी संगीत-काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[1] इसकी ओर अभी तक साहित्यिकों का ध्यान नहीं गया है। जितना साहित्य प्राप्त हैं, उसको देखने से पता चलता है कि इसको लिखने वाले या तो चारण कवि थे अथवा अन्य कोई भी दरबारी व्यक्ति थे। इनका प्रयोजन मुख्यतः राजा की प्रशंसा और दरबार का वर्णन करना होता था। विशेप प्रतिभावान न होने के नाते साधारण भाषा में उसको लिखते थे, परन्तु प्रत्येक वाक्य में एक ही तुक के कुछ शब्दों को जोड़कर गद्य को भी पद्य सा बना देते थे। सम्भव है कि यह 'मजलस' राजा के सामने दरबार में विशेप लय में गाया जाता रहा हो। मुसलमानी प्रभाव इस पर स्पष्ट है।

उदाहरण के लिए—

'अथ मजलस लिप्यते
अहो आठो वेयार बैठो दरबार वंदणी रात कहो मजलस की बात
कहो कोण कोण मुलक कोण कोण राजा देपे कोण कोण
बादसाह देखे कोण कोण दईवान देपे कों कों महिवान देपे
हां तो कहें कि दिल्ली दईवान फररुपुं साहि देपे
चीतौड़ संग्राम सींघ दीवान देपे
जोधाम राठौड़ राजा अजीत सिंघ देपे
बीकान राजा सुजाण सिंघ देपे
आबेर कछ्छ ठाहो राजा जय सिंघ देपे
जे साण जद्मुरावल बुध सिंघ देपे
ए कैसे हैं बड़े सुविहान हैं बड़े महिवान है बड़े सिरदार है
बड़े बूझदार हैं बड़े दातार हैं
जमी आसमान बीच संभू अवतार है
हा तो कहें कि वाह वे वाह साहिब की पनाह'[2] आदि।

इसी प्रकार प्रश्नोत्तर शैली में राजा की प्रशंसा की जाती है। शैली की विचित्रता ही विशेपता है। इस 'मजलस' का रचना काल सं० १८५२ है, लेखक का नाम अज्ञात है।

---

१. "कविता शब्द से सामान्यतया जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह किसी अनुभूतिपूर्ण लय छन्दयुक्त कलापूर्ण अभिव्यक्ति तक ही सीमित होता है, किन्तु साहित्य के इतिहास में ऐसी कृतियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनका वाक्य-विन्यास गद्यवत् होते हुए भी लयात्मक है, जो छन्दहीन होकर भी संगीतमय है और जो अपनी भावानुभूति एवं कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति के कारण ठीक वैसा ही प्रभाव छोड़ती है जैसा कि कोई भी श्रेष्ठ काव्य-कृति!"—डा० नगेंद्र, आमुख, पुलकावली, बद्रीनाथ; प्रकाशक, आत्माराम एंड संज, १९६२, पृ० ५।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर (अब जोधपुर में) ऐसी अन्य कुछ मजलसें प्राप्त हैं, जिनका विषय और स्वरूप इसी प्रकार का है।[1]

सामाजिक संगीत-काव्य

'सामाजिक संगीत-काव्य' में उन गीतों को लिया गया है, जिनमें समाज के प्रचलित रीति रिवाजों और सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अवसरों को वर्ण्य-आधार बनाया गया है। जैसे, जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के जीवन में जितने हर्ष के अवसर आते हैं उन सभी पर विशेष विषय को लेकर गीत गाए जाते हैं। जन्म, मुंडन, कर्णभेदन, तथा विवाह आदि के शुभ अवसरों पर बनाये हुए गीत इसके अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से कुछ त्योहार प्रमुख हैं, जैसे दीपावली, होली, सावन की तीज तथा अन्य त्योहार। इसके अतिरिक्त कुछ राजनीतिक और सामाजिक ऐसे अवसर आते हैं, जिन्हें समाज द्वारा सामूहिक रूप से मनाया जाता है। ऐसे अवसर पर सामूहिक गान और सामूहिक नृत्य किये जाते हैं। कभी-कभी समाज की कोई घटना लोकप्रिय हो जाती है, उसी को आधार बनाकर लोग रचनाएँ करते रहते हैं। इन सबको दृष्टि में रखकर हम सम्पूर्ण सामाजिक गेय काव्य को चार भागों में विभाजित करते हैं।

१—उत्सव गीत
२—त्योहार-गीत
३—रास और नृत्य-गीत
४—ढोला और बारामासा-गीत

उत्सव गीतों के अनेक संग्रह मिलते हैं, जिनमें जवानसिंह जी की भाँति रागों का निर्देश नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि वे गाये जाते थे। इसलिए उनका संग्रह कर लिया गया है और जो ऐसे गीत राग बद्ध हैं, उन्हें भी इसी कोटि में रखा गया है। उन पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

त्योहारों में सर्वाधिक होली और उसके पश्चात् सावन की तीज पर गीत मिलते हैं। ये दो त्योहार शृंगार युगीन विलासी प्रवृत्ति की पुष्टि करते थे। विशेषतया होली पर असंख्य पद रचे गये, जिनमें कृष्ण-राधा या गोपियों को नाम मात्र के लिए आलम्बन बनाकर होली के समय मनोरंजन किया जाता था। अनेक पद ऐसे होते हैं, जिनमें सावन की तीज पर झूला झूलने का वर्णन है, जिन्हें 'हिंडोला' के नाम से पुकारा गया है। वह भी कृष्ण लीला के अन्तर्गत ही है।

तीज का एक उदाहरण देखिये।

हो जी हो रंगीलो छबीली घणरा मारू जी
हो झूलन आई छै तीज सुहाई।
बणि बणि साजि सिंगार नवेली अधिक अधिक अधिकाई।

---

१. इन 'मजलसों' को लेखिका ने स्वयम् देखा है।

रंग रंग भूषन वसन साजि तन प्रीतम प्रीत लुभाई ।
झूलन झमक झकोर नमें अति नगधर पिय मन भाई ।'[1]

रास और नाच के गीत भी बहुत बड़ी मात्रा में लिखे गए । इसमें शृंगारिक भावनाओं को प्रसार मिल सकता था और कृष्ण और राधा के साथ गोपियों का सरस वर्णन हो सकता था । मृदंग के बोल भी इन पदों में मिलते हैं । ऐसे गीत भक्त कवियों में भी प्रचलित रहे हैं ।

ढोला और बारामासा अपनी अलग विशेषता रखते हैं । राजस्थान की प्रचलित ढोला-मारू की प्रेम कहानी ने संगीत में बहुत महत्त्व पाया है । पूरे प्रबन्ध काव्य के समान ढोला की कहानी लिखी और गाई जाती थी । पृथ्वीराज राठौड़ की लिखी हुई ढोला-मारू की कथा से सभी परिचित हैं । उसके अतिरिक्त इतना अधिक इसका प्रचार हुआ कि ढोला गाने वालों की एक विशेष जाति बन गई । उदयपुर में 'ढोली' एक जाति है, जिसका कार्य 'ढोला' गाना है । वाचक कुशललाभ की 'ढोला मारवणी री चौपाई'[2] प्रकाशित हो चुकी है । और भी ऐसी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं । ढोला गाने का एक विशेष ढंग है, जो नवलसिंह के ढोला से पता चलता है ।

'रोला छंद'

ढोला गावे जोग छंद रोला तजवीजो ।
ढोला ही सी झपट लटक गावत मे कीजो ।
चौथी तुक को अंत अर्ध दुहरा के गावो ।
तापे अच्छर चार अर्ध के मिलवत आवो ।
रे पै स्वर विश्राम ठहर कर रापत जाई ।
ढोला कैसी पान प्रकट जह रीति जगाई ।
पंभाइत पंजरी ताल तवला वजगावो ।
निज रुचि को चातुर्ज करब औरहु जो जानो ।[3]

बारामासा

'बारह मासा' की परम्परा संस्कृत काव्य से चली आती है । संयोगिनी अथवा वियोगिनी नायिका का छहों ऋतुओं में तथा बारहों महीनों में किस प्रकार प्रेम बढ़ता है और प्रिय के संयोग और वियोग से किस प्रकार सुख और दुख होता है, इसका वर्णन आदि कालीन काव्य में भी होता था । भक्ति काव्य में भी इसका प्रचार था । विशेषरूप से प्रेम मार्गी शाखा के सूफ़ी भक्तों की रचनाओं में इसको प्रमुख स्थान मिला । शृंगार युगीन काव्य में यह और भी अधिक प्रिय विषय रहा । वर्षा ऋतु के सरस वातावरण में प्रिय के लौटने का

---

१. गीत संग्रह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
३. ढोला, नवलसिंह, लाला लक्ष्मी प्रसाद, फौरेस्ट आफिसर, दतिया ।

समय होना है, अतः नायिका सदैव ही प्रिय की प्रतीक्षा सावन में करती है और पहले एकादश मासो के लिए कहती है कि 'प्रिय ! किसी भी मास में चाहे तुम नहीं आए परन्तु पावस ऋतु आ गई अब तो आ जाओ।' यही कारण है कि सावन में और झूले के गीतों में बारह मासा अभी भी प्रचलित है। जैन साहित्य में बारहमास का बहुत प्रचार रहा। जैन कवियों ने राग बद्ध 'बारहमासे' लिखे। प्रमानन्द का 'राधा विलाप बारामासा'[1] उदयरत्न का नेम राजुल बारामासा',[2] किशनदास का 'कृष्ण बारामासा'[3] सगम कवि का 'राधिका विरह बारामास'[4] आदि जैन कवियों के ग्रन्थ है।

बारह मासा का अधिक प्रचार होने के कारण इनमें विषय की विविधता भी मिलने लगी। कुछ काव्य वियोग-शृगार को प्राधान्य देकर लिख गए, कुछ में व्रत और उत्सव का वर्णन हुआ। कुछ भरत और राम आदि की जीवनी को लेकर लिख गए।

धार्मिक

राग बद्ध धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त ऐसी रचनाएँ प्राप्त हैं, जो गेय काव्य थी और केवल धार्मिक होने के नाते विशेष पूजा के लिए लिखी गई। जैसे घरो में प्रचलित भजन और कीर्तन के संग्रह, जो प्रसिद्ध कवियों के द्वारा नहीं रचे गए थे वरन् उस समय गायन में प्रचलित थे। ऐसे संग्रह श्री द्वारकेश पुस्तकालय कॅकरोली में बड़ी मात्रा में सग्रहीत हैं। ईश्वर की पूजा में लिखी गई स्तुति के लिए अनेक कविताओं और आरती गीतों की रचनाएँ हुईं। स्तुति केवल ईश्वर सम्बन्धी ही नहीं, राजाओं के लिए भी लिखी गई। आरती लगभग सभी देवताओं पर लिखी गई जैसे 'अबा री आरती', 'काली जी की आरती', आदि।

इसके अतिरिक्त कुछ देवी देवताओं के गीत अपना अलग स्थान और महत्त्व बनाए हुए हैं। इनके गानवालों की एक विशेष जाति हो जाती है। इनकी गायन-शैली भी एक विशेष प्रकार की होती है। जनता में ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति पर देवी इष्ट रहती है, उस देवी के गीत केवल वही व्यक्ति या उसके उत्तराधिकारी गा सकते हैं। इस प्रकार के गीत, भैरू जी के गीत, पाबू जी के गीत तथा देवी के गीत आदि प्रचलित थे और हैं। इन पर पर्याप्त सामग्री भी मिलती है। इन गीतों का प्रचार अधिकतर राजस्थान में है। उदाहरण के लिए, राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर' लिखने के पश्चात् लिपिकार रेपराज ने सं० १८७१ में एक देवी का गीत लिखकर, ग्रन्थ समाप्ति की है।

"धार में आवो वाली धार में आवो वाली।
ध्योली ध्यार में दरसन पाया भोली माइ पहार में। आवा।

---

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. वही।
३. वही।
४. वही।

नगर दारा जां नी ज्मं ज्मं वसयो
जीन ते—र...वन चनायां
हो चौंना वा भोली माइ पहार में । आवो ।
नागा नागा पावां अकवर सा आये
सोने दा छत्र चढ़ाया—भोली माइ पहार में—आवो ।
वानु मग ते मयां तेरा जस गावे
मन अंछा फल पाया । भोली माइ पहार में । आवो ।[1]

जैन ग्रन्थ

जैन ग्रन्थों में शास्त्रीय संगीत का प्रचार रहा है, अतः जैन कवियों के द्वारा लिखे गए अनेक धार्मिक ग्रन्थ नामों से तथा अधिकांश वर्णन में भी रागों से सम्बन्धित हैं। जैन ग्रन्थों में से कुछ के काव्य रूप इस प्रकार के हैं, जिनसे संगीत काव्य का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। ऐसे काव्यों में तीन प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

१—रास ग्रंथ
२—वारहमासा
३—राग माला

रास ग्रंथ

रास ग्रंथ नाम से रास नृत्य के लिए लिखे गए काव्य का भान होता है, परन्तु जैन रास ग्रंथों की एक लम्बी सूची है। एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे ग्रंथ लिखे गये हैं; जैसे उदय यश का 'यशोवर रास', कान्ति विजय कृत 'मलय सुंदरी रास', दीप्ति विजय कृत 'मंगल कलश रास', सोम विमल कृत 'श्रेणिक रास' तथा भाव रत्न कृत 'वम्माशील भद्र रास' आदि।[2] इन सब रास ग्रन्थों में वर्ण्य विषय संगीत-नृत्य नहीं है, अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में इसका वर्णन नहीं किया गया है।

वारहमासा

वारहमासा लोक गीतों में प्रचलित एक प्रकार का गीत है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। इस नाम से लिखे गये ग्रन्थ भी जैन-धार्मिक ग्रन्थ हैं। संगीत काव्य से उनका सीधा सम्बन्ध नहीं है। नेम जी का 'वारामासा', रूप चंद का 'नेम नाथ वारामास', कवियण का 'नेम नाथ वारामास', संगम कवि का 'वारामास', तथा उदयरत्न का 'नेम

---

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
ऐसे अन्य ग्रन्थों की सूची सहायक पुस्तकों की सूची में दी गई है।

राजुक बारामास', आदि । इन ग्रन्थो मे भी मुख्य विषय अपने धार्मिक नेता का उपदेश प्रसारित करना है ।[1]

रागमालाएँ

रागमाला के नाम से लिखे गए ग्रन्थ कुछ सीमा तक इस प्रबन्ध से सबधित हैं। रागों म बाँधकर जैन कथाओ की रचना की गई है। इन कथाओ का नामकरण इन कवियो ने अपने वर्ण्य विषय के आगे रागमाला नाम लगाकर कर दिया है, जिससे सन्देह होता है कि अन्य रागमालाओ के समान इनमे भी रागो का स्वरूप शृगार वणन है, परन्तु वह भ्रामक है। नाम इस रूप म प्राप्त हैं कि 'राग माला मय स्तवन,'[2] 'नेमीश्वर रागमाला मय स्तवन'[3] आदि।

कवि के सगीत ज्ञान का उससे परिचय मिलता है। प्रारम्भ म कवि कहता है —

' विविध राग कुसुमेकरी गु थित जिन गुणमाल
जय लक्ष्मी सगम मणी मानु ए वर माल।'[4]

इसके पश्चात् कवि ने राग सोमरी, राग असाउरी, राग केदारा गोडी, राग श्री तथा देशाख आदि रागो मे बद्ध करके कथा का प्रबन्धात्मक रूप सगठित किया है। छन्द मे किसी न किसी रूप मे राग का नाम आ अवश्य जाता है, परन्तु उसमे राग का स्वरूप शृगार तथा लक्षण का कोई परिचय नही मिलता।

उदाहरणार्थ, राग केदारो गोडी

'सयल देश मा सुन्दर कासी, नयरी वाणरसी गय अभ्यासी।
रिद्धिकृत अलकापुरी दासी, लोक वसें जिहा शास्त्र अभ्यासी।
राज करे नरपति गुणवासी, अश्वसेन निहाँ इन्द्र सवासी।
जिणिम नयरी कीया वनवासी, जिन केदारा गोरी गुणरासी।'[5]

ऐसी रागमालाएँ सख्या म बहुत पाई जाती हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध मे अधिक सहायक नहीं हैं। रागो का प्रयोग भी इच्छानुसार है। रागो के नियमों का पालन नही किया गया है। इतना निश्चित है कि क्रियात्मक रूप म जैन समाज म ये गाई जाती थी और गाने मे रागो का प्रयोग होता था।

---

१ पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।
ऐसे अन्य ग्रन्थों की सूची सहायक पुस्तकों की सूची मे दी गई है।
२ पुरातत्व मदिर, जोधपुर।
३ वही।
४. पार्श्वनाथ रागमाला मय स्तवन, पु० म० जोधपुर।
५ पार्श्वनाथ रागमाला मय स्तवन, पु०, म०, जोधपुर।

संगीत-काव्यकार – जीवनी तथा कृतियाँ

शृंगार युग के संगीत-काव्यकार मुख्यत संगीतज्ञ तथा गौण रूप से कवि होने के नाते, अधिकतर हिन्दी साहित्य के इतिहासो म कवि-सूची मात्र म ही प्रवेश पा सके। उनके काव्य का अध्ययन करने पर विदित होता है कि संगीत शास्त्र की दृष्टि से तो ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं ही हिन्दी काव्य को समृद्ध बनाने में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इन संगीत काव्यकारो के जीवन के विषय में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं हो पाई है, फिर भी कुछ अन्तर्साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य तथा जनश्रुतियो के आधार पर जो ज्ञान प्राप्ति होती है, उसका विवेचन यहाँ किया गया है।

प्रस्तुत निबंध म कवियो का क्रम समय के अनुसार नही रखा गया है, वरन् साहित्य-सृजन की दृष्टि से सर्व प्रथम सर्वांग निरूपक कवियो को, पश्चात् विशिष्टांग निरूपक, तत्पश्चात् व्यावहारिक संगीतकारों को लिया गया है।

प्रतापसिंह देव

'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' के रचयिता जयपुर के महाराज प्रतापसिंह देव हैं। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे दो लेख प्रकाशित किए हैं।[1] उनके मतानुसार प्रतापसिंह ने जयपुर में संवत् १८३५ से संवत् १८६० (सन् १७७८ से १८०४ ई०) तक राज्य किया। मिश्रबन्धु विनोद भाग दो (संख्या नं० १०१२) म प्रतापसिंह महाराज का नाम प्राप्त होता है, जो जयपुर के महाराज रहे हैं। इनका उपनाम 'ब्रजनिधि' है। परन्तु इनके रचे ग्रन्थो म 'राधा गोविन्द संगीत सार' का नाम नहीं है। मिश्र बन्धुओ ने भी इनका रचना काल सं० १८३५ दिया है। मिश्रबन्धु विनोद म ही एक और 'परतापसिंह' (सं० ६६३) का उल्लेख है, जिनका समय तो सं० १८३२ ही है, परन्तु यह दरभगा नरेश हैं और उपनाम 'मोद नारायण' है, अतएव यह कोई दूसरे परतापसिंह हैं।

टॉड के 'ऐनल्स एण्ड एण्टीक्विटी ऑफ राजस्थान'[2] म एक राजा परतापसिंह का उल्लेख है जो, जयपुर के माधोसिंह के पुत्र, पृथ्वीसिंह द्वितीय के सौतेले भाई थे और

---

१ शोध पत्रिका वर्ष ३ अंक २ तथा 'संगीत' फरवरी १९५३।

२ Annals and Antiquities of Rajasthan V 2, Preface by Douglas Sladen Published by Routledge and Kegan Paul Ltd Broadway House 63-74 Carter Lane, E.C 4 London, p 301

पृथीसिंह के पश्चात् सं० १८३५ में गद्दी पर बिठाए गए। इस समय इनकी अवस्था छोटी थी। इन्होंने पच्चीस वर्ष राज्य किया। सं० १८६० में इनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय यह अधिक से अधिक चालीस वर्ष के रहे होंगे।

रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पद्माकर भट्ट के पिता मोहनलाल भट्ट के आश्रयदाता जयपुर के महाराज प्रतापसिंह का उल्लेख है। यह वही प्रतापसिंह हैं, जिनके विषय में यहाँ कहा जा रहा है। पद्माकर भट्ट ने अस्सी वर्ष की आयु में सं० १८९० में शरीर छोड़ा। इसके पूर्व वह प्रतापसिंह के और उनके पुत्र जगतसिंह के दरबार में रहे। इस दृष्टि से भी प्रतापसिंह का रचनाकाल सं० १८३५ के लगभग हो सकता है।

सुश्री राजकुमारी शिवपुरी ने अपने शोध ग्रन्थ[1] में महाराज प्रतापसिंह का समय सं०१८२० से सं० १८५९ तक माना है। सं० १८२० इनका जन्म काल है। पृथ्वीसिंह जी सं० १८२३ में गद्दी पर बैठे। इन्होंने ग्यारह वर्ष तक राज्य किया तब प्रतापसिंह जी गद्दी पर आए। इसका अर्थ यह हुआ कि सं० १८३४ में गद्दी मिलने के समय यह चौदह वर्ष के थे और उनतालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर त्यागा।

प्रतापसिंह जी के जीवन के विषय में जो कुछ जानकारी पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, की 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' की भूमिका से प्राप्त होती है, वह भी बहुत-कुछ इनसे मिलती-जुलती है और सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है। इस ग्रन्थ के अनुसार महाराज प्रतापसिंह सूर्यवंश की प्रख्यात शाखा कछवाहा-वंश के थे। सोढ़देव जी की सोलहवीं पीढ़ी में महाराज पृथीराज हुए। पृथीराज जी की वंश परंपरा में महाराज भारमल जी, मानसिंह जी, मिर्ज़ा राजा जयसिंह जी, सवाई जयसिंह जी आदि राजा हुए। सवाई जयसिंह जी के उत्तराधिकारी क्रमशः ईश्वरीसिंह जी और माधवसिंह जी हुए। माधवसिंह जी के बाद उनके बड़े पुत्र पृथीसिंह जी ने (जिनका जन्म वि० सं० १८१९ में हुआ था) सं० १८२४ में, पाँच वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठकर, सं० १८३३ तक राज्य किया। उनके छोटे भाई प्रतापसिंह जी मि० वैशाख वदी तीन बुधवार सं० १८३५ को गद्दी पर बैठे। इनकी माता का नाम महारानी चूँड़ावत था। गद्दी पर बैठने के समय भी अनुमानतः यह पंद्रह वर्ष के थे।[2] इन्हें अपने राज्य-काल में कई युद्ध करने पड़े। जीवन-पर्यन्त राज्य की रक्षा करने के उपरान्त अन्तिम दिनों में ईश्वर के चरणों में अधिक अनुराग हो गया था। महल के तहखाने में स्थित अपने इष्ट ठाकुर ब्रजनिधि जी के चरणों में विश्राम किया करते थे।[3] उसी भक्ति के कारण इन्होंने कविता में अपना नाम 'ब्रजनिधि' रखा। सं० १८६० में इनकी मृत्यु हो गई।

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर भी प्रतापसिंह जी देव के कविता-काल पर विचार किया जा सकता है। इनके विविध ग्रन्थों में उल्लिखित समय के अनुसार रचनाकाल सं० १८४८

---

१. राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवाएँ—राजकुमारी शिवपुरी।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० ४०।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० ४५।

से सं० १८५४ तक निश्चित किया जा सकता है। सं० १८४८ में 'प्रीति लता',[1] 'फाग-रंग'[2] और प्रेम प्रकाश',[3] सं० १८४६ में मुरली विहार,[4] 'सुहाग-रैन',[5] सं० १८५० में स्नेह बहार,[6] विरह-सलिता,[7] सं १८५१ में 'रमक जमक बत्तीसी'[8] तथा प्रीत पचीसी,[9] व्रज

---

१ अष्टादस चालीस अठ संवत चैत जु मानि।
कृष्न पच्छ तिथि त्र्योदसी भौमवार जुत जानि। ८२।

प्रीति-लता।

२ संवत अष्टादस सतक, अड़तालीस बुधवार।
फागन सित की सप्तमी, भयो ग्रंथ अवतार।
पढ़ैं कढ़ैं पातक सकल, बढ़ैं जु प्रेम-उमंग
ग्रंथ कियो जय नगर मे, फाग रंग रस रंग। ५३।

फागरंग, व्रजनिधि

३ अष्टादस चालीस अठ संवत फागुन जानि।
कृष्नपच्छ नवमी जु गुर, ग्रंथ कियो मन मानि।
कियो ग्रंथ जयनगर मे नाम सु प्रेम प्रकास।
पढ़ैं कढ़ैं पातक सकल, बढ़ैं प्रेम हिय तासु। ५६।

प्रेमप्रकाश, व्रजनिधि।

४ मुरलि-विहारहिं ग्रंथ रस झगरई को अंत यह।
प्रेम-परनि को पंथ, रसरंनि अतिहि सुहाव यह। ३२।
अष्टादस गुनचास यह, संवत फागुन मास।
कृष्नपच्छ तिथि सप्तमी, दीनवार है तास। ३३ ।—मुरलीविहार, व्रजनिधि।

५. नाम सुहागहि-रैनि, ग्रंथ यहे कीनो अबै।
— — — — —
अष्टादस गुनचास हैं, फागुन पते कियो सु।
तिथि दसमी बुधवार दिन, मन आनंद लियो सु। २४।—सुहागरैन, व्रजनिधि।

६. संवत अष्टादस सतक पचासत सुभ वर्ष।
माघ सुक्ल दुतिया सु तिथि दीतवार मन हर्ष। ४४।— स्नेह बहार, व्रजनिधि।

७ संवत अष्टादस सतक, पचासत सनिबार
माघ कृष्ण पख दोज को, भयो विरह को सार। ५२।—विरह-सलिता
—व्रजनिधि।

८ संवत अष्टादस सतक, इक्कावन सु अषाड़।
सुक्ल पच्छ बुध द्वादसी, भयो ग्रंथ अति गाढ़। ३२।—रमक जमक बत्तीसी,
व्रजनिधि।

९ संवत अठारह इक्यावन बरस मास,
कातिग उज्यारी तिथि पंचमी सुहाई है।
व्रजनिधि-दास मना निहारयो है नेह-लता,
विरह मना से प्रीति पचीसी बनाई है।—प्रीति-पचीसी।

दिया है। इन्हीं के नाम से इस ग्रंथ का निर्माण हुआ, इसीलिए इसके वास्तविक लेखक प्रसिद्धि न पा सके और उनके विषय में अधिक ज्ञात नहीं हो सका।

'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' की एक प्रति लाला बद्रीदास वैश्य, वृन्दावन से प्राप्त हुई,[१] जिसके द्वारा यह पता चलता है कि यह ग्रंथ तैलंग भट्ट, श्रीकृष्ण, राम राय और चुन्नीलाल नामक चार ब्राह्मणों ने मिलकर बनाया है।

तैलंग भट्ट और श्री कृष्ण मथुरा निवासी ब्राह्मण थे। चुन्नीलाल कवि-कुल सम्प्रदाय के थे। राम राय जाति के गौड़ मिश्र थे तथा इन्दौर के रहने वाले थे। इन चारों ने मिल कर ब्रज भाषा में इस ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रंथ महाराज की आज्ञा में रचा गया था।

'हुकुम सीस धरि जोर कर बोले नंदकिसोर
पंडित कवि दरबार में अगनत हैं या ठौर।१०६।
मथुरा सवित तैलंग भट्ट सिरी किसन नुप दाय।
लियो भट्ट चून्नी लाल हैं कव कुल संपरदाय।१०७।
गौड मिश्र इद्रिरिया राम राय कवि जान।
इन जुत कीजै ग्रंथ की ब्रिज भाषा परवान।१०८।
आग्या कीय नर नाह तव ले बनाय यह ग्रंथ।
मत प्राचीन पुनीत लप गीत उदव को पंथ।१०९।

* * *

आगग्रा सुन कवि सब धरो फूल माल ज्यों सीस।
लगे करन संगीत द्विज चारों जपि निज ईस।१११।

उपर्युक्त अंश में प्रयुक्त शब्द "सवित", "बसित" के स्थान पर अशुद्ध लिखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि तैलंग और श्री कृष्ण को मथुरा के निवासी बताने का अभिप्राय कवि का रहा होगा अथवा 'सवित' का अर्थ 'सवित्त' अर्थात् 'धनी' से भी लिया जा सकता है, जिसके अनुसार इस वाक्यांश का अर्थ 'मथुरा के धनी' 'तैलंग भट्ट' तथा 'श्री कृष्ण' हो जाता है। भट्ट शब्द संगीतज्ञ का पर्याय हो ही चुका है। गाने वालों को भट्ट जाति का बताया जाता है, अतः ये चार प्रमुख ब्राह्मण संगीतज्ञ थे, जिन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण किया।

'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार अज्ञात कालिक कवियों में एक 'तैलंग भट्ट'[२] का उल्लेख मिलता है, जो जैसलमेर नरेश (महारावल रणजीतसिंह) के दरबार में थे। परन्तु मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि संवत् १८२० तक वहां कोई महाराजा रणजीतसिंह नहीं हुए। यह सम्भव है कि तैलंग भट्ट, संगीतज्ञ होने के नाते घूमते हुए जैसलमेर पहुंच गए हों और किसी और रणजीतसिंह के दरबार में रहे हों। वहां इस ग्रन्थ की रचना की हो। संगीत-

---

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२. मिश्रबन्धु-विनोद—तृतीय भाग (सं० १९८१) पृ० ९७६।

सार की रचना के लिए तो बाहर से बुलाए हुए सगीतज्ञ भी आए थे। एक अन्य तैलग भट्ट का प्रसग इसी पुस्तक मे आया है,[1] जिसका नाम दामोदर जी है। यह अलवर दरबार के आश्रित हैं। इन्हे साधारण श्रेणी का कवि माना गया है। इनका जन्म काल स० १८८७ तथा कविता काल सवत् १९१३ माना है। समय अशुद्ध भी हो सकता है। इन्होंने स्फुट काव्य की रचना की है।

'तैलग भट्ट' नाम बडा सदिग्ध है। तैलग भट्ट जातिवाचक सज्ञा है, व्यक्ति-वाचक नही। 'तैलग भट्ट' नाम से प्रसिद्ध कवि पदमाकर का भी भ्रम उत्पन्न होता है। पद्माकर भी तैलग भट्ट थ और इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे कि 'तैलग भट्ट' मात्र कह कर उनको पुकारा जाता हो, यह भी समव है। पदमाकर कुछ दिन प्रतापसिह जी के राज्य म रहे थे, यह इनकी रचना 'प्रतापसिह विरदावली' से ही प्रमाणित है।[2] प्रतापसिह की मृत्यु के कुछ पहले ही यह उनके राज्य म गए थे और मृत्यु पर्यंत वही रहे थे। प्रताप-सिंह की मृत्यु पर भी इन्होने कविता की है।[3] प्रतापसिह इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे और इन्हे उन पर गर्व था। प्रतापसिह के राज्य मे एक बार बहुत धूमधाम के साथ जाते देखकर बूदी वालो को भ्रम हुआ कि कोई चढाई करने जा रहा है, तब इन्होने भ्रम निवा-रण करने के लिए यह कवित्त पढा—

'नाम पदमाकर डराउ मति कोउ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।'[4]

इस किंवदन्ती मे और कोई सार न हो परन्तु यह स्पष्ट है कि इन्हें प्रतापसिह के द्वारा बहुत धन तथा आदर मिला था।

ये 'तैलग भट्ट' के नाम से प्रसिद्ध भी रहे होंगे, इसका एक प्रमाण इनके एक कवित्त मे मिलता है। राजभोग मे लिप्त राजा जगतसिंह से मिलने के लिए जब यह गए तो अपने परिचय मे पढे गए कवित्त में पहली पक्ति कही—

'भट्ट तिलगाने को, बुदेलखड वासी कवि सुजस प्रकासी पद्माकर सुनामा हों।'[5]

इसमे भी 'भट्ट तिलगाने' को महत्त्व दिया गया है, अत यह सम्भव है कि प्रताप-सिह के राज्य मे पद्माकर इस नाम से प्रसिद्ध हो गए हों, उसी समय प्रतापसिह ने 'सगीत-सार' की रचना करवाई हो और इनकी काव्यात्मक प्रतिभा और सगीतात्मक रचनाओं से प्रभावित होकर इन्हें भी इन चार ब्राह्मणों म सम्मिलित कर लिया हो।

अतएव सगीत-सार के रचयिता तैलग ब्राह्मण प्रसिद्ध कवि 'पद्माकर' ही जान पडते हैं।

मिश्रबधु-विनोद द्वितीय भाग मे (कवि स० ७४९), श्री कृष्ण भट्ट के नाम से

१ मिश्रबधु-विनोद—तृतीय भाग (सं० १४८१), पृ० ९७९।
२. 'जगद्विनोद'—सपादक, वि० प्र० मिश्र, पृ० १२।
३. पद्माकर—पद्मामृत, फुटकल, प्रतापसिह वर्णन, पृ० २७०।
४. जगद्विनोद—सपादक वि० प्र० मिश्र, पृ० ८।
५. जगद्विनोद—सपादक वि० प्र० मिश्र, पृ० ६।

एक कवि का उल्लेख है। इनकी रचनाएँ हैं—(१) दुर्गा भक्ति तरंगिणी, (२) सांभर जुद्ध। इनका रचना काल सं० १७६१ है। जयपुर दरबार में इनका होना बताया है, अतः प्रतापसिंह के राज्य में इनका होना तो सम्भव है, परन्तु इनके नाम से 'संगीत-सार' नामक रचना नहीं है। उसका कारण प्रत्यक्ष रूप से यही है कि ग्रन्थ कर्त्ता आश्रयदाता प्रतापसिंह ही थे। उपर्युक्त काव्यांश में आया हुआ शब्द 'भट्ट', 'तैलंग' और 'सिरी किसन' दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है।

ग्रियर्सन के हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (सं० नं० ४५२) में एक 'कलानिधि कवि' द्वितीय के नाम से उल्लेख आता है। जिनका नाम श्री कृष्ण भट्ट बताया है। 'कवि-कलानिधि' उपाधि है और 'लाल' उपनाम है। इनका जन्म काल ग्रियर्सन के अनुसार १७५० ई० अर्थात् सं० १८०६ है, परन्तु श्री किशोरी लाल गुप्त ने सर्वेक्षण के द्वारा सं० १८०७ इनका उपस्थिति काल माना है। यह सम्भव है कि इनका उपर्युक्त 'श्री कृष्ण भट्ट' से ही तात्पर्य हो।

'राम राय' नाम से केवल एक कवि का उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद के द्वितीय भाग में हुआ है, (नं० १६८१) जिनको अज्ञात कालीन कवियों में रखा गया है। इनकी एक रचना 'लैला-मजनू' है।

चुन्नी लाल के विषय में भी अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है। आर्य भाषा पुस्तकालय के शोध विभाग की सूची में इनका नाम 'चुन्नीलाल-ब्राह्मण' दिया है। जयपुराधीश महाराज सवाई प्रतापसिंह के आश्रित थे। इन्होंने मथुरा भट्ट, ब्राह्मण श्री कृष्ण और राम राय के साथ मिलकर 'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' की रचना की।

अब हम प्रतापसिंह जी की रचनाओं पर विचार करेंगे। मिश्रबन्धु के अनुसार प्रतापसिंह द्वारा रचित ग्रन्थ १—शृंगार मंजरी, २—नीति मंजरी, ३—वैराग्य-मंजरी, ४—स्नेह संग्राम, ५—संच सागर, ६—रेखता, ७—भर्तृहरि शतक टीका हैं, परन्तु श्री राजकुमारी शिवपुरी के शोध ग्रन्थ 'राजस्थान के राज घरानों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवाएँ, के अनुसार इन्होंने १—प्रीतिलता २—फाग रंग, ३—प्रेम प्रकास, ४—मुरली-विहार, ५—रमख झमक बत्तीसी, ६—सुहाग रैनि, ७—रंग चौपड़, ८—प्रीति पच्चीसी, ९—प्रेम पंथ, १० ब्रज शृंगार, ११—श्री ब्रजनिधि मुक्तावली, १२—ब्रजनिधि पद संग्रह, १३—हरिपद संग्रह, १४—रास का रेखता, १५—विरह सलिता, १६—स्नेह बहार, १७—दुख हरण वेलि भी लिखे हैं। इस प्रकार प्रतापसिंह जी द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या चौबीस हो जाती है।

पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' में तेईस ग्रन्थों का सम्पादन किया है। इनमें से पाँच का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने और सत्रह का उल्लेख श्री राजकुमारी शिवपुरी ने किया है। मिश्रबन्धु के अनुसार दिए गए 'संच सागर' और 'भर्तृहरि शतक टीका' ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनका उल्लेख पुरोहित जी ने नहीं किया है। उनकी पुस्तकों में दो अन्य ग्रंथ हैं—'सोरठ ख्याल' और 'रेखता संग्रह'—जिनका उल्लेख उपर्युक्त दो पुस्तकों में नहीं मिलता है। 'राधा-माधव-संगीत-सार' का उल्लेख मिश्रबंधु व शिवपुरी जी दोनों ने ही नहीं किया है। शर्मा जी ने भी 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' में 'संगीत-सार' का प्रकाशन वृहद्

आकार होने के नाते नहीं किया है परन्तु उसके विषय में भूमिका मे लिखा है।

राधा गोविन्द संगीत-सार

'राधा गोविन्द संगीत सार' एक सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ है। इसकी एक प्रकाशित प्रति श्री अगरचन्द जी नाहटा के 'अभय जैन ग्रन्थालय म है। इसका प्रकाशन पूना गायन समाज (बलवंत जियनक सहस्रबुद्धी, सेक्रेटरी गायन समाज) द्वारा सन् १९१० मे हो चुका है। महाराज प्रतापसिंह के रचना काल की ऊपर विवेचना की जा चुकी है, अत उसी के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना स० १८५८ के लगभग होनी चाहिए। इस ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायो की प्रतियाँ अन्य संग्रहालयो में भी प्राप्त हैं। बीकानेर के सेठ श्री मोतीचन्द जी खजांची के व्यक्तिगत संग्रह मे इसके तीन अध्याय—तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय प्राप्त हैं। यह प्रति जयपुर मे रतिराम ब्राह्मण के पठनार्थं लिखी गई थी। लेखन काल इसमे नहीं दिया है। अलवर के म्यूजियम में दो अध्याय स्वराध्याय और तालाध्याय है।

सात अध्यायों मे विभक्त यह बृहद् ग्रन्थ संगीत के सूक्ष्मतम विषय का अत्यन्त विस्तार से ज्ञान कराता है। शाङ्गदेव के अनुसार संगीत को सात भागो मे विभक्त किया है—स्वराध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय और रागाध्याय नामक सात अध्याय हैं।

स्वराध्याय मे स्वरो की उत्पत्ति, ग्रह, अश, न्यास, जाति आदि पर विचार करके स्वर-समुदाय बताए हैं।

वाद्याध्याय म चार प्रकार के वाद्यो का नाम, उनके बजाने की विधि, गमक, मूर्च्छना आदि तथा सब रागो को निकालने की विधि दी है।

नर्तनाध्याय मे अभिनय, सब अगो के अलग-अलग भाव, भेद लक्षण, बँटने के एक सौ आठ नवस्थानक भेद, तथा अगहार आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला है।

प्रकीर्णाध्याय मे शास्त्र वर्णन, संगीत के मार्गी और देसी प्रकार, दोष और गुण, गायको के दोष, गुण आदि सब बातो का विवेचन किया गया है:

प्रबन्धाध्याय म गान्धर्व गान, मार्गी गान का लक्षण, खड, धातु, शृगारादि नव रस का विचार, गणो के देवता, उनका आकार, अक्षर के वर्ण, एला के भेद लक्षण, गीत, प्रबध के लक्षण आदि पर विचार किया है।

तालाध्याय म तालो की उत्पत्ति, नाम, बोल, भेद, लक्षण भिन्न मतो के अनुसार बताए गए हैं।

रागाध्याय मे रागोत्पत्ति, परिवार, गीत, लक्षण, भेद और स्वरूप वर्णन है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ मे संगीत के विविध अगो पर विस्तृत और सम्पूर्ण विवेचन प्राप्त है।

इसके विस्तार का अनुमान निम्नलिखित एक उदाहरण से लगाया जा सकता है।

तालाध्याय मे ताल के दस प्राण बताए गए हैं। प्राण काल, प्राणमार्ग, प्राण क्रिया, प्राण अग, प्राण ग्रह, प्राण जाति, प्राण कला, प्राण लय, प्राण यति, प्राण प्रस्तार। प्राणो के लक्षणो मे इनमे से एक प्राण काल का विवरण दिया है

'जासा काल में कमल को एक पत्र वड़ी सितावी सो कांटा करि कै वेधिये सो काल क्षण कहिए वे आठ क्षण होय तो एक लव होय—आठ लव को एक काष्ठा—आठ काष्ठा की एक निमेप—आठ निमेप की एक कला, दोय कला को एक चतुर्भाग, वाही को त्रुटि कहे है, दोय चतुर्भाग को एक अर्द्धविन्दु होय वाको प्रसु कहे है, और वाही को अणुद्रुत कहे हैं, दोय विंदुन को एक लघु, दोय लघु को एक गुरु, तीन लघु को एक प्लुत और हसतन को एक पल होय है—साठि पल की एक घड़ी, साठ घड़ी को एक दिन, तीस दिन को एक महीना, वारह महीना को एक वरस, पुराण की रीत सों—तीयालीस लाप वीस हजार ४३२०००० वरस की एक जुग चौकड़ी होय है, हजार जुग चौकड़ी की ब्रह्म को एक दिन होय है, तासों कल्प कहे हैं अर तीस ब्रह्म दिन को एक ब्रह्म मास होत है और वारह ब्रह्म मास को एक ब्रह्म वर्प होय सौ-सौ ब्रह्म वर्प ब्रह्मा जी की आवरदा है वाको ब्रह्म कल्प कहे हैं।

इति काल लक्षण संपूर्ण इति प्रथम प्राण संपूर्णः'

इसी प्रकार मार्ग प्राण में चार मार्ग, ध्रुव, चित्र, वार्त्तिक और दक्षिण वताकर उनका विस्तृत उल्लेख किया है।

ग्रन्थ की संपूर्णता के लिए एक और उदाहरण देना अनुचित न होगा। नृत्याध्याय में नृत्य के पांच अंग, नृत्यकारों के छः प्रकार, नृत्य करने का ढंग आदि वताकर नर्तकी के द्वारा वोल वोलने का ढंग भी वताया है —

'मृदंग के वोल किस प्रकार नर्तकी वोले—

जहां दाहिणे हाथ में अलपल्लव[1] हस्ति रचि कुहणी वरावर राखिए दूसरे हाथ में हंस पक्ष[2] रचि नीचे को लटकावै अर दाहिणे चरण सों पृथ्वी को ताडन करै पीछे दाहिणे पांव को अंगुठा ढीलो करि धरती पै रगड़ उठावै ऐसें क्रिया करत मुप सों किर्रट शब्द कहे। हाथ चरन ए दोऊ आपस में ताडन करि हाथ को पाव को स्वस्तिक रचि[3] नृत्य करत नग दां किणवर नग दां यह उच्चार करै। जहां दाहिणीं पांसू नवाय दोऊ हाथ को पटका मुप रचि एक हाथ ऊपर को एक हाथ नीचे कीजिए तव तगड कहै जहां एक हाथ ऊंचो करि दूसरो हाथ नीचो करै दोऊ में पताक रचिये तव ता धिमि तत थिमि किट नम कहै आदि।'

नृत्य में गीतों के अनुसार किस प्रकार भाव प्रदर्शन किया जाना चाहिए तथा किस भाव के प्रदर्शन के लिए किस प्रकार का गीत गाना चाहिए, इसका भी उल्लेख है।

इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिए और भी अधिक वढ़ गया है कि इसमें केवल शास्त्रीय दृष्टि से ही शिक्षा नहीं दी गई है, वरन् क्रियात्मक रूप से भी शिक्षा का ज्ञान कराया गया है। उपर्युक्त नृत्य सम्वन्धी उदाहरण से यह स्पष्ट होता है। एक उदाहरण स्वर प्रकरण से लिया जाता है—

'केवल चार स्वरों की तान—

---

१. नृत्य में हाथ की एक विशेप मुद्रा।
२. नृत्य में हाथ की एक विशेप मुद्रा।
३. हाथ की विशेप मुद्रा।

स रि ग म, रि स ग म, स ग रि म, ग स रि म, रि ग स म,
ग रि स म, स रि ग म, रि स म ग, ग ग रि ग, म स रि ग,
रि स म ग, म रि स ग, ग स ग रि, म स म रि, स म ग रि,
म स ग रि, ग म स रि, म ग स रि, रि ग म स, ग रि म स,
रि म ग स, म रि ग स, ग म रि स, म ग रि स,
इति च्यार स्वरन को प्रस्तार सपूरण'

इस ग्रन्थ का आधार अधिकतर उस समय के प्रचलित सभी मत हैं। अधिकाश रूप मे शाङ्गर्देव ही आधार हैं, परन्तु स्थान स्थान पर अलग-अलग आचार्यों के अनुसार शास्त्र का विवेचन किया है।

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी मे प्राप्त 'सगीत सार की प्रति म स्वरो तथा रागो को चित्र द्वारा खीच कर बनाया गया है।

इस प्रकार प्रतापसिह द्वारा सकलित यह ग्रन्थ शृगार युगीन सगीत शास्त्र पर लिखा गया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ब्रज भाषा गद्य तथा पद्य दोनो मे मिला कर लिखा गया है। काव्यकारो को अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जो सुविधा हुई, वहाँ वही माध्यम अपना लिया है।

'राधा-गोविंद सगीत-सार' के अतिरिक्त प्रतापसिह जी द्वारा लिखी गई अन्य सभी पुस्तकें लगभग एक ही धारा म प्रवाहित हैं। सभी का सम्बन्ध कृष्ण-राधिका की विभिन्न लीलाओ, प्रेम या किसी विशेष क्रीडा से है। उदाहरण के लिए, फाग रग मे होली का वर्णन, मुरली विहार मे मुरली का सौन्दर्य प्रभाव आदि, रमक झमक बत्तीसी म कृष्ण के प्रति प्रेम भाव के वर्णन तथा सौन्दर्य वर्णन है।

'प्रीति' लता का एक उदाहरण है—
झमकि झमकि झमरिन जहा, भाजति भुकि भुकि भूमि।
झलहलती झलकत भहा भाम भलाहल भूमि।

रेपता सग्रह मे फारसी भाषा का बाहुल्य है
'रेखता (भैरवी, भूपाली या पन्तो)
दरद का भी दरद जरा दिल मे तो धरो
वे दरद होना नाहि नजर मिहर की करो।' रेखता सग्रह—
ब्रजनिधि ग्रन्थावली।

श्री ब्रजनिधि मुक्तावली मे सगीत के आधार पर काव्य रचनाएँ की गई है।
राग सारग चर्चरी (ताल जत)—सुखहि अबुज सुनो तान अमून सबी।
सप्त सुर सो सुघर राग सारग के, रग मे रीझि के मान रारे द्रवी।
अली पक्षावली गुज कुजन हिनी, जहा चली प्रिया सोनें चली ले
अबी।
निरखि ब्रजनिधि पिया रूप लखि छवि जिया, मोद सा मिलि तिया
रसहि हुसि के दबी।

ब्रजनिधिपद सग्रह मे कुल दो सौ पैंतालीस पद हैं। चालीस पद अन्य लेखकों के है।

इसमें राग-रागिनी बद्ध गीत हैं।

इस प्रकार इनके ग्रन्थ काव्य और संगीत दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

हरिवल्लभ

सर्वांग निरूपक ग्रन्थकारों में हरिवल्लभ उच्च कोटि के संगीतज्ञ कवि हुए हैं। इनके जन्म तथा मृत्यु काल के संबंध में निश्चित रूप से कोई प्रमाण प्राप्त नहीं। रचनाओं के आधार पर इनका जीवन-काल तथा कविता-काल निर्धारित किया जा सकता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर 'भाषा-टीका', तथा 'संगीत-दर्पण', दो रचनाएँ इस संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त कराती हैं।

आर्य भाषा पुस्तकालय में प्राप्त गीता की टीका का रचना-काल सं० १७७१ है।

'सत्रह सेर इकोत्तरा माधवमास तिथि ग्यास।
गीता की भाषा करी हरिवल्लभ सुप रास।'

उक्त उद्धरण में 'इकोत्तरा, का अर्थ 'एक+उत्तर' सन्धि के कारण सं० १७०१ भी लिया जा सकता है। ग्रियर्सन के इतिहास के अनुवादक श्री किशोरी लाल गुप्त ने अपने सर्वेक्षण में गीता का समय सं० १७०१ माना है।[1] मिश्रबंधुओं ने हरिवल्लभ का उल्लेख किया है,[2] परंतु उनके पास जो गीता के भाषानुवाद की प्रति थी, उसमें संभवतः समय सूचक दोहा खंडित था, तभी उन्होंने लिखा है कि उन्होंने 'कहीं सन् और संवत् का पता नहीं दिया।'[3] इनके पास जो टीका थी, उसका लिपिकाल सं० १८७५ का था, अतः उससे कुछ पूर्व इनका समय मान लिया है। संभवतः उपर्युक्त टीका के आधार पर ही डा० रामकुमार वर्मा ने इनका आविर्भाव काल सं० १७०० माना है।[4] इस आधार पर गीता की टीका के समय इनकी अवस्था यदि पंद्रह वर्ष भी मानी जाए तो इनका जन्म-काल सं० १६८५ निश्चित होता है।

हरिवल्लभ के दूसरे ग्रंथ 'संगीत-दर्पण' की प्राचीनतम प्रति श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली में प्राप्त है, जिसका लिपि-काल सं० १७५६ है। इसके आधार पर 'संगीत-दर्पण' का रचना-काल सं० १७५० के आस पास माना जा सकता हैं।

प्रथम रचना सं० १७०१ में तथा अंतिम रचना सं० १७५० में रचित मानने पर इनका कविता काल सं० १७०० से सं० १७५० तक तथा जीवन-काल सं० १६८५ से सं० १७६० के आस पास तक माना जा सकता है।

---

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक, श्री किशोरी लाल गुप्त, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० ३२५।
२. मिश्रबंधु-विनोद, प्रकाशक, हिंदी ग्रन्थ प्रसारक मंडली, खंडवा व प्रयाग, प्रथम बार, सं० १९७०, पृ० ६३४।
३. वही।
४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५९७।

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी में हरिवल्लभ कृत भगवद्गीता की टीका की एक प्रति है, जिसमें मूल श्लोक के साथ हरिवल्लभ रचित दोहे हैं। यह पाठ अधिकांशतः एक अन्य कवि 'आनंदराम' की टीका से मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि 'संभवतः आनंदराम ने इनकी टीका संपूर्ण रूप से अपना ली हो।'[1] वास्तव में सत्य इसके विपरीत है। स्वयं हरिवल्लभ ने इसी टीका में स्वीकार किया है कि 'इस गीता की टीका का कुछ गद्य भाग कवि आनंद ने रूपांतरित किया है।

'है या गीता ग्रंथ के, सर्वं अनुष्टुप छंद।
कछुक गद्य जिन सवन के दोहा रचे अनंद।'[2]

इस अंश से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि कवि 'अनंद' हरिवल्लभ के मित्र तथा समकालीन थे।

हरिवल्लभ ब्राह्मण थे तथा राधा-वल्लभी संप्रदाय में दीक्षित थे। 'हरिवल्लभ' का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं है। यह नाम इन्होंने इस संप्रदाय में दीक्षित होने के उपरांत ग्रहण किया था। यह इन्होंने गीता की भाषा-टीका में स्वयं कहा है।

'लघी सूर द्विज हू जु हौं हरिवल्लभ भो नाम।
भो गन कुल भगवान को बसौं सु मथुरा ठाम।'[3]

हितहरिवंश के संप्रदाय में इनका दीक्षा लेना अंतर्साक्ष्य से प्रमाणित हो जाता है।

'इहु सेवा मन आनि बुद्धि हरि चरनन रपी।
हित हरिवंश प्रणाम कहै हरिवल्लभ जु लपी।'[4]

हरिवल्लभ संत भी थे और संगीतज्ञ भी। इनके ग्रंथ 'संगीत-दर्पण' की लोकप्रियता से यह सिद्ध होता है कि यह संपूर्ण राजस्थान, पंजाब तथा काश्मीर आदि में भ्रमण करते रहे थे। लगभग सभी स्थानों पर इन्हें अत्यन्त आदर प्राप्त हुआ था। 'संगीत-दर्पण' ग्रंथ की प्रतिलिपियाँ प्रयाग तथा वाराणसी आदि उत्तर प्रदेश के नगरों में तो प्राप्त होती ही हैं, जयपुर, उदयपुर, कांकरोली तथा बीकानेर आदि नगरों में भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती हैं। कहीं कहीं कला प्रेमी राजाओं ने इस ग्रंथ के रागाध्याय की चित्र-रागमालाएँ अंकित करवाई थीं।[5] काश्मीर के सौन्दर्य का प्रभाव, इनकी काश्मीर-यात्रा को प्रमाणित करता है।[6]

जालन्ध्र (जालन्धर) में एक संगीतज्ञों का मेला होता है, जिसे 'हरवल्लभ का मेला' कहते हैं। ऐसी संभावना होती है कि यह मेला इन्हीं हरिवल्लभ के नाम पर होता है। जिस

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा।
२. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
३. श्री मद्भगवद्गीता-टीका, हरिवल्लभ, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
४. गीता की भाषा-टीका, हरिवल्लभ, आर्य पुस्तकालय, वाराणसी।
५ लल्लाजी चित्रशाला, म्यूजियम, बीकानेर।
६ 'मनु अम सोहति सी जन मन मोहति सी, रस रीति आने कासमीर नागरिन को।'
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

'हरिवल्लभ' की स्मृति में प्रत्येक वर्ष यह मेला होता है, वह भी संत तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि हरिवल्लभ ने जालन्ध्र (जालन्धर) में आकर स्वामी तुलजा गीर से संगीत सीखा, जिन्होंने इनको संन्यास दिलाया। इसके पश्चात् हरिवल्लभ 'स्वामी हरिवल्लभ' के नाम से प्रसिद्ध हो गए। स्वामी तुलजा गीर के निधन पर सं० १९३० में स्वामी हरिवल्लभ ने प्रथम बार जलन्धर के 'देवी तलाब' पर गाया। उसी समय कुछ संतो तथा साधुओं की छोटी सी गोष्ठी हुई। तभी से हर वर्ष जलन्धर में दिसंबर में संगीतज्ञों का मेला होता है। वहाँ हरिवल्लभ 'बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जालन्धर के 'बाबा हरिवल्लभ' को 'संगीत-दर्पण' के रचयिता मानने में सबसे बड़ी कठिनाई समय की होती है। यदि सं० १९३० तक हरिवल्लभ का जीवित रहना माना जाए, तो उनकी अवस्था दो सौ पैंतालीस तक पहुँचती है, जो नितांत असम्भव है।

यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'संगीत-दर्पण' का रचयिता हरिवल्लभ इतनी ख्याति प्राप्त कर चुका था कि जलंधर के इस व्यक्ति के संगीत-कौशल पर मुग्ध हो किसी ने उसे 'हरिवल्लभ' का नाम दे दिया हो।

रचनाएँ

हरिवल्लभ रचित जितनी भी रचनाएँ प्राप्त हैं, लगभग सभी संगीत पर आधारित हैं। इन्होंने 'संगीत-प्रबंध-सार,' 'संगीत-भाषा', 'राग माला' 'राधा-नाम माधुरी' और 'संगीत-दर्पण' के अतिरिक्त 'गीता पर टीका' लिखी है।

'संगीत-प्रबंध-सार' प्रयाग संग्रहालय (म्यूजियम प्रयाग) में संग्रहीत है। इसका विषय संगीत है। इसमें स्वराध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, प्रबंधाध्याय और नृत्याध्याय नामक पांच अध्याय हैं, जिनमें ताल, सरगम, तथा स्वरसमुदाय दिए हैं और स्पष्ट तथा सुंदर लिपि में लगभग संगीत-दर्पण के समान शास्त्रीय विवेचन किया है।

इनका एक ग्रंथ 'संगीत-भाषा' भी प्राप्त है, जो इसी विषय को लेकर चला है। यह भी प्रयाग में संग्रहीत है।

'राग माला' सरस्वती मंदिर, उदयपुर में संग्रहीत है। इसमें भैरव, कौशिक, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ इन छः रागों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। ब्रज भाषा में लिखा है। इसका लिपिकाल सं० १८१६ है।[1] पत्र संख्या बारह है। इसी की एक प्रति जोधपुर पुरातत्त्व मंदिर में भी है। परंतु अन्तिम अंश 'गान कौतूहल' में रागों के मिश्रण का वर्णन बिल्कुल 'संगीत-दर्पण' ही के समान है।

---

१. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, मोतीलाल मेनारिया। (दुर्भाग्यवश यह प्रति देखी नहीं जा सकी, क्योंकि उस समय कोई मुक़द्दमा चलने के कारण सरस्वती भंडार, उदयपुर की सभी हस्त-लिखित प्रतियाँ न्यायालय के अधीन थीं।)

'राधा-नाम माधुरी' का उल्लेख आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी के शोध-विभाग-सूची मे आता है ।[1]

संगीत-दर्पण

हरिवल्लभ की सुन्दरता और इनके संगीत संबधी ज्ञान तथा कवित्व का पूर्ण परिचय देने वाली रचना 'संगीत-दर्पण' है । यह संगीत शास्त्र का एक विशद ग्रंथ है । इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्त हैं । प्राचीनतम प्रति सोमेश्वर गुज्जर द्वारा संवत् १७५६ मे लिपिबद्ध की गई है ।[2] इसका रचना काल भी सं० १७५० के आसपास होना चाहिए । यह संभव है कि अल्पायु म ही संगीत-शिक्षा प्राप्त करके उसमे दक्ष हो गए । तभी रागमाला आदि रचनाएँ की । इसके पश्चात् ज्यों ज्यो ज्ञान और अनुभव बढा, इन्होंने इस बृहद ग्रंथ की रचना कर डाली ।

यह ग्रंथ संगीत के विभिन्न अंगो स्वराध्याय, वाद्याध्याय और तालाध्याय आदि के अनुसार अध्यायो मे विभाजित है । इसकी रचना शैली म मौलिकता है ।

यह ग्रंथ किसी विशेष आश्रयदाता की आज्ञानुसार रचा गया है, ऐसा इस ग्रंथ से प्रतीत नही होता है । ग्रंथ की रचना प्रारंभ करते समय परंपरा निर्वाह के हेतु किसी राजा की स्तुति नही की है । यह संभव है कि प्रारंभिक अंश लुप्त हो गया हो । परंपरा का पालन करते हुए ग्रंथ का प्रारंभ मंगलाचरण से ही हुआ है । संगीत के प्रवर्तक शिव को मानते हुए कवि शिव की स्तुति से प्रारंभ करता है—

'छाजति है छवि टीके हुते लपि जुगिनि जूह तहाँ जय जपनि ।
भारी दियें दुति यो हरिवल्लभ जानि रचे तें अओ रति कपति ।
प्रकट्यो अनुरागु मनौ हिय को जु अलिंगन कीनौ जु यो मिलि दंपति ।
लाल विसाल लसें अति ही सिवभाल को नैन करौं सुप संपति ।'[3]

''संगीत दर्पण' लक्षण-लक्ष्य ग्रंथ की कोटि म रखा जा सकता है । इसका महत्त्व जितना संगीत के क्षेत्र मे है, उतना ही काव्य के क्षेत्र मे है । लक्षण प्रस्तुत करने के पश्चात् उदाहरण स्वरूप जो कवित्त रखे हैं , वे काव्यात्मकता से पूर्ण हैं ।

स्वराध्याय मे केवल शास्त्रीय विवेचन है, जैसे श्रुतियो के बाईस भेद बताए हैं ।

'रूप मात्रक श्रवन को तु श्रुति करि के जानि
ता श्रुति के पुनि होत हैं भेद बीस द्वै मानि
तीव्रा और कुमुद्वती मंदा बहुर्‌यो देपि

---

१. खोज रिपोर्ट । हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का अयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९२६-२८ ई०, संपादक, स्व० रा० ब० डा० हीरा लाल, काशी, सं० २०१० वि० ।

२ श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली ।

३ संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, म्यूजियम अलवर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

चौथी छंदोवर्ति बहुरि पंज सुरहि में लेखि ।"[1] आदि ।

रागाध्याय में भिन्न आचार्यों के मतानुसार राग विभाजन, रागों का समय, स्वरूप वर्णन दिया है । इस अध्याय में रागों के लक्षण विभिन्न मतों के अनुसार दिये हैं ।

कल्लिनाथ के मतानुसार बीस राग प्रमुख बताए हैं और हनुमान मत के अनुसार छः प्रमुख राग बताए हैं ।

रागों के लक्षण बनाकर स्वरूप वर्णन किया है । इसके पश्चात् कहीं कहीं स्वरालाप भी दी है ।

टोडी रागिनी का लक्षण—

'न्यास अंश ग्रह पंज सुर अंग पद पूरन जोति
द्वै पहरनि पर रागिनी टोडी नित ही होत ।'

उदाहरण—

'कज्जल अंग तुषार हुतै अति कुंद की हारु गरे छवि छाजै ।
केसरि और कपूर की पौरि कियें तन में सुप सोभा साजै ।
वीन बजाइ रिझाई लिए मृग कानन केलि कुतूहल साजै ।
चित्र दुकूल धरे हरि वल्लभ जेसिऐ टोडीयो राग विराजै ।
'रि ग रि स स रि प म रि रि स नि स रि ग प प म
नि नि ध म रि स ग रि स रि स नि ध नि ग रि स
स रिः'

प्रकीर्णाध्याद में गाने का ढंग गायकों के गुण, दोष आदि का वर्णन है ।

प्रबंधाध्याय में गीत के लक्षण, प्रबंध के प्रकार, जाति, आदि का वर्णन है ।

वाद्याध्याय में चार प्रकार के बाजों का वर्णन है ।

तालाध्याय में तालों का विस्तार से, मात्राओं को बताते हुए वर्णन किया गया है ।

नृत्याध्याय में शास्त्रीय और देसी नृत्यों के प्रकार और क्रियात्मक ढंग मुख तथा आंख आदि के संचालन का ढंग बताया है । दस प्रकार के नृत्य, रस, अभिनय, भाव और हावों का लक्षण सहित विवेचन है—

'दस विधि कहे नृत्य कहं सब कोइ । नाट्य नृत्य अरु तांडव होइ ।
नृत्य लास्य अरु विषम विकट पुनि । लघु अरु परिनि गुंडलनूं गुनि ।'

दृष्टियों के प्रकार बताते हुए 'लज्जा दृष्टि' का लक्षण है—

'ऊरध पलक जु नीचें लागें । मन में लज्जा अति ही जानें ।
लज्जा द्रष्टि कहत है याहि । सब कवि कोविद चित में चाहि'

'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' के समान ही ब्रज भाषा में लिखा गया संगीत-शास्त्र का एक सुन्दर ग्रंथ है, जो संगीत तथा काव्य दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है ।

इसकी प्रतियां उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, अलवर, प्रयाग, वाराणसी आदि स्थानों के अतिरिक्त एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी के प्राच्य विभाग की हस्त-

---

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, म्यूजियम अलवर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

लिखित पुस्तकों में भी है।[1]

राधाकृष्ण

'मिश्रबंधु विनोद' द्वितीय भाग में 'राधा-कृष्ण' कवि का उल्लेख आया है, जिनका कवित-काल सं० १७५४ दिया गया है। कवि राधा-कृष्ण सदैव 'कृष्ण कवि' के नाम से रचना करते रहे। अतः सभी इतिहासों में वर्णित प्रसिद्ध 'कृष्ण कवि', यही राधाकृष्ण हैं। यह संदेह हो सकता है कि कृष्ण कवि और राधाकृष्ण दो भिन्न कवि हैं, परन्तु कुछ प्रमाणों से इस संदेह का निवारण हो जाता है।

कृष्ण कवि जयपुर के राजा जयसिंह के मंत्री आयामल्ल के आश्रय में रहे और यहीं उन्होंने बिहारी-सतसई की व्याख्या-बद्ध टीका की।[2] राधा-कृष्ण ने भी अपने राग-रत्नाकर में कहा है—

'द्विज वासी जय नगर को गौड़ जाति अभिराम'

अतः दोनों ही कवि जयपुर के राज्याश्रय में कुछ समय के लिए रह चुके हैं।

बिहारी सतसई की टीका में कवि ने लिखा है—

'माथुर विप्र ककोर कुल। लह्यो कृष्ण कवि नाम।'

'लह्यो' शब्द का अर्थ ग्रहण करना है, अतः यहाँ यह अर्थ स्पष्ट है कि कविता के लिए, कवि ने 'कृष्ण कवि' नाम ग्रहण कर लिया है। वास्तविक नाम राधा-कृष्ण हो सकता है।

'राग रत्नाकर' के ग्रन्थ के प्रारंभ में कवि कहता है—

'दिन रैनि भक्ति ब्रजराज की भीमसिंह मन मानिये
इहि हेतु कह्यो कवि कृष्ण सो रस संगीत बखानिये।'[3]

और अंत में अपना परिचय देते समय स्पष्ट कर देता है कि वही व्यक्ति राधा-कृष्ण है—

'द्विज वासी जय नगर को गौड़ जाति अभिराम
बरन्यो राधा कृष्ण कवि यहै ग्रंथ छवि धाम।
इति श्री राधा कृष्ण विरचितायां राग रत्नाकर समाप्त।'[4]

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि एक ही कवि ने दोनों नामों का प्रयोग किया है। सम्पूर्ण 'राग-रत्नाकर' में बीच में कहीं 'राधा-कृष्ण' या 'कृष्ण कवि' का प्रयोग नहीं होता।

कृष्ण कवि के जीवन के सम्बन्ध में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है, फिर भी उनकी रचनाओं के आधार पर उनके रचनाकाल तथा जीवन-काल का अनुमान किया जा सकता है। काल निश्चय करने के हेतु 'धर्म-समाधि', 'विदुर प्रजागर', 'बिहारी-टीका' तथा 'राग-

---

१. श्री मोतीलाल गुप्त, श्री महाराज कुमार कालेज, जयपुर के द्वारा लिखित लेख, 'ब्रिटेन के पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रंथ', हिंदी अनुशीलन वर्ष १४, अंक २।
२. हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास (रीतिकाल), डा० नगेंद्र द्वारा सपादित, पृ० ५३०।
३. पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
४. पुरातत्व मंदिर जोधपुर।

रत्नाकर' को आधार बनाया गया है। यहाँ यह देख लेना अप्रासंगिक न होगा कि इन पुस्तकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है। 'विदुर-प्रजागर' तथा 'विहारी-टीका' एक ही कवि की रचनाएँ हैं, यह स्पष्ट है।

विहारी की टीका के प्रारंभ में कवि कहता है—

'मैं अति ही ढीठ्यो करी कवि कुल सरल सुभाय।
भूल चूक कछू होइ सों लीज्यो समुझि बनाय।'

और 'विदुर प्रजागर' के अन्त में भी यही शब्द हैं—

'मैं अति ही ढीठी करी, कवि कुल सरल सुभाय।
भूल चूक कछु होइ हीं लीजो समझ बनाय।

इसके अतिरिक्त 'विहारी-टीका' और 'विदुर-प्रजागर' दोनों ग्रंथ कुछ ही वर्षों के भीतर, राजा जयसिंह के मन्त्री आपामल्ल की आज्ञा से लिखे गए हैं। विहारी की टीका के लिए—

'आपामल्ल कवि कृष्ण परि ठर्‌यो कृपा के ठार।
भांति भांति विपदा हरी दीनों दरब अपार।
एक दिना कवि सों नृपत कही, कही क्यों जात।
दोहा दोहा प्रति करो कवित्त बुद्धि अपार।'

और 'विदुर-प्रजागर' की भी—

'राजा आपामल्ल की आज्ञा अति हित जान'

'भाषा में बखान' किया गया है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'राग-रत्नाकर' का रचयिता, विहारी-टीका रचने वाला कवि ही है।

डा० विजयेन्द्र स्नातक ने 'कृष्ण-कवि' की 'विहारी-टीका' तथा 'विदुर-प्रजागर' नामक ग्रन्थों के आधार पर उनका रचनाकाल सं० १७९२ ('विदुर-प्रजागर' का रचना-काल) माना है तथा जन्म संवत् की कल्पना संवत् १७७० के आस पास की है,[1] परन्तु कृष्ण कवि की एक रचना 'धर्म-समाधि' प्राप्त होती है, जिसका रचना-काल सं० १७७५ है, अतः इसके अनुसार इनका जन्म-संवत् १७६० माना जाएगा।

'सत्रह सै पचहत्तर समयो कीलक नाम।
सावन सुदि परमा तिथि सुरगुरु पहिलौ जांम।
ताही दिन यह ग्रंथ को कीनौ अल्प बखान
कवित सवैया दोहरा करन लगै उच्चार।'[2]

इस ग्रंथ के रचना-काल के अनुसार, ग्रियर्सन का कथन उचित प्रतीत होता है। ग्रियर्सन ने कृष्ण कवि को संवत् १७७६ में उपस्थित बताया है।[3] रचना-काल-निर्धारण पूर्व यह देखना आवश्यक है कि धर्म समाधि का रचयिता, 'विदुर-प्रजागर' का रचयिता भी है।

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास—डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ५३०।
२. धर्म-समाधि, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
३. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक, किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ १९८।

ऐसी शका अवश्य होती है कि 'धर्म-समाधि' के रचयिता कोई अन्य कृष्ण कवि हों, तथा 'विदुर प्रजागर' तथा 'बिहारी-टीका' के रचयिता यही कृष्ण कवि हो। इस शका के दो आधार हैं।

एक तो 'धर्म-समाधि' मे बिहारी-टीका तथा 'विदुर-प्रजागर' की अपेक्षा व्याख्यात्मक प्रतिभा की कमी दिखलाई पडती है। 'बिहारी-टीका' मे बिहारी के दोहो के समान ही इनके कवित्तो मे सौन्दर्य दिखाई देता है, एक उदाहरण उक्त कथन को प्रमाणित कर देगा।

'नप रुचि चरन डारि के ठगु लगाय निज साथ।
रह्यो राषि हठि ले गयो हया हथी मनु हाथ।

टीका। इह हाथ की सोमा देषि नायकु को मनुँ याके हाथ नाही रह्यो। सु नाइक अपने मन की गति सषी सो कहतु है। नायका हू सो कहै।

कवित्त—

बुद लसे मेहदी के सुरग डही अरुनाइ के रग रचे कें।
रष बसी कर मत्र दिषाय कें साथ लगाइ लियो अपने कें।
चारु नपै तुती चरन डारि अधीन कियो बहु भाति भुरै के।
राषे हू पैं न रह्यो मन हाथ हाथा हाथी हाथु गयो सुमिलें के।'[1]

इसी प्रकार 'विदुर-प्रजागर' मे कथा प्रधान होने के कारण यद्यपि काव्यात्मकता इतनी अधिक नहीं आ पाई है। परन्तु विविध छदो का प्रयोग करके कवि ने अपनी क्षमता का परिचय दिया है। तोटक, सोरठा, तोमर, भुजगप्रयात आदि छदा का निरन्तर परिवर्तन करते हुए कथा कही गई है।[2]

उपर्युक्त दोना ग्रन्थो की तुलना मे 'धर्म-समाधि' काव्यात्मक दृष्टि से कुछ नीची कोटि का ग्रथ दिखाई पडता है। उदाहरणार्थ—

एक समै कभी यहै जनमे जपने आनि।
धर्म दुदिष्टिल की कथा कहियो वैसपानि।
कौन भाति दरसन दयो धर्म राय ने आनि।
राउ दुदिष्टिल को तबै सुनौ चहियतु ठान।[3]

यद्यपि इन ग्रन्थो की परीक्षा करने के उपरांत उपर्युक्त शका की सभावना होती है, तथापि गभीरतापूर्वक विचार करने पर यह शका निर्मूल सिद्ध हो सकती है। 'धर्म-समाधि', कृष्ण कवि की प्रथम रचना है। पूर्वोक्त कथन के अनुसार इसका रचना काल स० १७७५ निश्चित होता है, तथा 'विदुर-प्रजागर' और 'बिहारी-टीका' क्रमश स० १७९२[4] तथा स०

---

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२. वही।
३. वही।
४. सत्रह सैं अरु बानवे संमत कातिक मास।
सुफल पाद पाये गुरउ कीन्हों ग्रन्थ प्रकास। —विदुर प्रजागर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

१७६३ है।[1] इसके अतिरिक्त कृष्ण कवि ने प्रतिभावान बालक होने के नाते अपनी अल्पायु में ही यह प्रयास किया है, जो निश्चय ही कलात्मक नहीं हो सकता था, फिर भी एक दो कवित्तों में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय इस ग्रंथ में भी दे ही दिया है।

'कवित्त—

कंचरन के द्रलकै अति पम्ह चुनी मन पंनग जोति विराजै।
भाट व भारत वेद पढ़ै दु जगंत्रय गावत दुंदुभी वाजै।
झूमत पीर पगार बवे गज दिग्गज से उपमा पर छाजै।
कृष्ण कहै कवि भिमवली हनमंत सो राजन है दरवाजै।[2]

इस प्रकार 'धर्म-समाधि' को कवि का प्रारंभिक प्रयास कहा जा सकता है।

दूसरी शंका कवि के निवास-स्थान सम्बन्धी विभिन्न कथनों से उत्पन्न होती है। 'बिहारी-टीका' के रचयिता 'कृष्ण कवि' जयपुर के राजा जयसिंह के मंत्री राजा आयामल्ल का आश्रित था;[3] अतः जयपुर का निवासी था। 'राग-रत्नाकर' में कृष्ण कवि ने अपना निवास-स्थान उनियारा ठिकाना (जयपुर) में बताया है।[4] 'धर्म-समाधि' में कवि ने 'भांडौर' में निवास बताया है।

वेदे भेद व्यौहार। कवि वासी भांडौर के।
रतनगंज सौ ठाउं। निकट चतुर्भुज वैतमैं।
संनावढ सब वरन कुल रावत करै बपान।
सेवक सवई दुजन के कविता कृष्ण बपान।
वरनत धर्म समाधि को तन मन सव धरि ध्यान।
यह प्रताप गुर को भयो कृष्ण सुकवि को ग्यान।[5]

इस भ्रम का निवारण भी इस प्रकार किया जा सकता है कि कवि विभिन्न आश्रय-दाताओं के पास रहा, परन्तु लगभग स्थान सभी राजस्थान में थे। 'भांडौर' नगर भी जयपुर से बहुत अधिक दूर नहीं है।

यह सिद्ध हो जाने पर कि 'धर्म-समाधि', 'विदुर-प्रजागर', 'बिहारी-टीका' तथा

---

१. "सत्रह सै है आगरै असी वरस रविवार।
कातिक वदि चौथि भए कविता सकल रस सार।
—'बिहारी-टीका', आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. "लीला जुगल किसोर की, रस की होइ निकेत।
राजा आया मल्ल कों ता कविता सौं हेत।" बिहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. 'द्विज वासी जय नगर को गौड़ जाति अभिराम।' राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. धर्म-समाधि, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

'राग-रत्नाकर' का रचयिता एक ही व्यक्ति राधाकृष्ण अथवा कृष्ण कवि है, हमे इनके जीवन तथा रचना-काल का निर्धारण करना होगा।

कृष्ण कवि की अंतिम रचना 'राग रत्नाकर' का समय स० १८५३ है।

सवत गुण सरवसु मही। अगहन मास अनूप।
सुदि पाचै रविवार जुत भयौ ग्रथ सुप रूप।[1]

इस प्रकार प्रथम और अतिम ग्रथ को देखने से इनका रचना काल स० १७७५ से स० १८५३ तक माना जा सकता है। यदि स० १७७५ से पद्रह वर्ष पूर्व भी इनका जन्म माना जाए और स० १८५३ के बाद दो वर्ष भी जीवन और माना जाए तो इनका जीवन काल स० १७६० से स० १८५५ तक अर्थात् पचानवे वर्ष का होगा, जो असभव नही तो दुर्लभ तो लगता ही है। फिर तिरानवे वर्ष की अवस्था मे मस्तिष्क और हृदय दोनो का 'राग-रत्नाकर' की रचना करने योग्य रहना असभव सा जान पडता है।

'राग-रत्नाकर' के आधार पर इनका कविता-काल स० १८५३ तक होना चाहिए, परतु यह भी सदिग्ध सा जान पडता है। ऐसा लगता है कि इनके 'राग-रत्नाकर' की प्रशसा सुनकर जयपुर म उनियारा ठिकाने के राव भीमसिह ने इनको बुलाया हो और 'राग रत्नाकर' सुनाने को कहा हो—उनके राज्य मे जो 'राग रत्नाकर' लिपि बद्ध हुआ, उसकी रचना सं० १८५३ है। इसके अध्याय 'रागाध्याय' की एक प्रति स० १८४६ की लिपिबद्ध की हुई प्राप्त होती है।[2] इसका नाम 'राग-समूह' है। स० १८४६ मे लिपि-बद्ध करने का अर्थ है, इसकी रचना लगभग स० १८०० से १८३० के बीच हुई। इसके अतिरिक्त जयपुर मे लिखी गई 'राग-रत्नाकर' के अन्त मे जो समय सूचक दोहा है वह अलवर व प्रयाग आदि मे प्राप्त प्रतियो म नही है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि स० १८५३ केवल जयपुर के राव भीमसिह के लिए लिखी गई प्रति का समय है। 'राग-समूह' इन्होंने श्री भोजपाल के लिए लिखी है।

कलि म कविताई सकल भिग रज गुन गाइ।
इद्रजीत पाछै करी भोजपाल चित चाह।
ऐसो को कवि जो तुमै रिझवै प्रवीन
तुम्हरी आग्या पाइकै करिहौं ग्रथ नवीन।[3]

अन्त मे कवि कहता है—

महादानि अरि जुद्ध जुरि जीत्यो कै अहेट

---

१. पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, याज्ञिक सग्रह, वाराणसी।
"इति श्री यदुवशावतस श्री भोजपालस्य विरचिते राग समूहे षट राग वर्णन समाप्तोय सप्तमोध्याय ।७। शुभमस्तु स० १८४६ लिखित सेवादास पुस्तकं पठनार्थ समाप्त।"

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

> जो कोउ रस रीति को समझ्यो चाहे सार।
> पढ़ै बिहारी सतसई कविता को शृंगार।[1]

बिहारी के समान काव्य-प्रतिभा कृष्ण कवि में पाए जाने के कारण ऐसा जान पड़ता है कि यह भी कवि कुल-गुरु तथा असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न थे, तभी अल्पायु में ही ग्रंथ-रचना प्रारंभ कर दी। यह भी संभव है कि इनकी बुद्धि और चातुर्य से ही प्रभावित होकर आयामल्ल ने इनसे बिहारी-सतसई की काव्य-टीका करने का अनुरोध किया हो। आत्म विश्वास का अभाव होने के कारण बड़े संकोच से ग्रन्थ-रचना की। बड़े दैन्य के साथ कवि प्रस्तावना करता है—

> 'पहले हू मेरे यहै हिय में हुतो विचार।
> करों नायका भेद को ग्रंथ बुद्धि अनुसार।
> जे कीनो पूरब कविन सरस ग्रंथ सुख दाइ।
> तिनहिं छाडि मेरे कविन को पढ़ि है मन लाइ।
> जानि यहै अपने हिये कियो न ग्रंथ प्रकास।
> नृप को आयस पाइ कै हिय में भयो हुलास।[2]

इस प्रकार यह जाना जा सकता है कि आयामल्ल जी जयपुर के नृपति जयसिंह के मन्त्री थे, उनके आश्रय में इन्होंने कविता करना आरंभ किये थे। संभव है जीवन के प्रारंभिक काल में यह कुछ कठिनाइयों में घिरे हों, उनको आयामल्ल ने दूर किया हो और धन आदि से भी इनकी सहायता की हो। कवि एक स्थान पर कहता है—

> आयामल्ल कवि कृष्ण परि ढर्यो कृपा के द्वार।
> भांति भांति विपदा हरी दीनो दरब अपार।[3]

इसके पश्चात् यह राजा भजराम और जयपुर के उनियारा ठिकाने के राव भीमसिंह के दरबार में भी रहे।[4]

इनकी रचनाएँ 'मर्म-समाधि' 'विदुर-प्रजागर', 'बिहारी-सतसई की टीका' और 'राग-रत्नाकर' अथवा बड़ी ग्रंथ 'राग कुतूहल' और 'राग-समूह' के नाम से प्राप्त हैं। एक ग्रन्थ 'बारहमासी' भी आर्य भाषा पुस्तकालय वाराणसी में संग्रहीत है। डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने बलिभद्र सनाढ्य मिश्र कृत 'नखशिख' के एक अज्ञात टीकाकार का उल्लेख किया है जो उनियारा के राजा थे।[5] 'सरोजकार की भ्रांति से यह नाम खो गया

---

१. वही।

२. बिहारी-सतसई, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. 'बिहारी सतसई की टीका' आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. राग रत्नाकर—राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, किशोरीलाल गुप्त द्वारा अनूदित, पृ० १५२।

है।"[1] संभव है, यह टीका कृष्ण कवि की हो, क्योंकि कृष्ण कवि उनियारा ठिकाने में सं० १८४२ के आस पास थे, जो समय इस टीका का दिया गया है।[2]

विदुर-प्रजागर

'विदुर-प्रजागर' महाभारत के उद्योग-पर्व को आधार बनाकर नौ अध्यायों में लिखा गया ग्रन्थ है। केशव के समान सम्पूर्ण काव्य में छन्दों की विविधता मिलती है। उदाहरणार्थ—

छंद तोटक—

पुन ता नृप के सुत तीन भये। मुन आप कृपा कर आप दये।
धृतराष्ट्र पंडवली भनिये। विदुरो हर भक्त नमो गिनिए।[3]

इसके पश्चात् सोरठा, तोमर और फिर भुजंगप्रयात छंद परिवर्तित होते चले गए हैं। यह ग्रंथ राजा आपामल्ल के आश्रय में उन्हीं की आज्ञा से लिखा गया है। प्रारंभिक रचना होने के नाते इसमें काव्यात्मकता बहुत कम है। विषय धार्मिक होने के नाते कवि को काव्य-कौशल दिखाने का अधिक अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ है। विविध छन्दों के प्रयोग से इनकी प्रतिभा का परिचय तो मिलता ही है। यह पुस्तक सं० १७९२ में लिखी गई।[4]

बिहारी-टीका

इस रचना के पश्चात् ही इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपामल्ल ने इनसे बिहारी-सतसई की टीका लिखने का आग्रह किया। इनकी विनम्रता से पता चलता है कि यह उस समय छोटे ही थे, तभी इनमें तब तक आत्म-विश्वास नहीं था और संकोच के साथ काव्य-रचना की।

इनके हृदय में स्वयं टीका लिखने का विचार था, परन्तु इस संकोच से कि अन्य कवियों के सामने मेरे काव्य को कौन पढ़ेगा, लिखने का साहस नहीं किया। किन्तु आपामल्ल के आग्रह ने इनको टीका लिखने की प्रेरणा दी।[5]

---

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, किशोरीलाल गुप्त द्वारा अनुवादित पृ० २७९।
२. वही।
३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
४. विदुर-प्रजागर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
५. 'एक दिना कवि सों नृपत कही, कही क्यों जात
दोहा दोहा प्रति करो कवित बुद्धि अवदात।
पहले हू मेरे यहै हिय में हुतो विचार
करों नायका भेद कों ग्रंथ बुद्धि अनुसार।
जे कीनो पूरव कविन सरस ग्रंथ सुपदाइ
तिनहि छांडि मेरे कवित को पढ़िहै मन लाय।
जानि यह अपने हिये कियो न ग्रन्थ प्रकास।
नृप को आयस पाइ के हिय में भयो हुलास।
करे सात से दोहरा सुकवि बिहारीदास।
सब कोऊ तिन को पढे गुनें सुने सविलास।' बिहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

यह टीका कृष्ण कवि की काव्यात्मकता बताने के लिए भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने ब्रज भाषा के गद्य में दोहों के सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए, स्वय एक कवित्त टीका स्वरूप के लिए बनाया है, जिसमें बिहारी के दोहों का भाव भी ज्यों का त्यों बना रहा है और स्वय इनकी मौलिकता भी प्रदर्शित हो सकी है।

उदाहरण स्वरूप—

'मेरी भव बाधा हरा, राधा नागरि सोइ
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होई।

टीका—यह मंगलाचरन है तहां श्री राधा जू की स्तुति ग्रथकर्ता कवि करतु है। तहां राधा और्हु है यातें जा तन की झाईं परें स्याम हरित दुति होत है। या पद तें वृष भान सुता की प्रतीत भई।

कवित्त—

जाकी प्रभा अवलोकित ही तिहु लोक की सुंदरता गहिवारी।
कृष्ण कहे सरसीरुहे नैनि को नाम महामुदमंगलकारी।
जातन की झलकें झलकें हरित दुति स्याम की होत निहारी।
श्री वृषभानु कुमारि कृपा के सु राधा हरो भव बाधा हमारी।

स्वकीया नायिका।'[1]

अर्थ-स्वरूप दिए हुए कवित्तों में विशेषतया शब्द-लालित्य, ध्वन्यात्मकता, अलंकारिकता आदि सभी गुणों की झलक मिलती है। बिहारी के दोहे—

'रह्यो मोद मिलनो रह्यो, यों कहि गही मरोर।
उत दै सखी उराहनो इत चितई म मोर।'

का अर्थ कृष्ण कवि बताते हैं—

'ता दिन की वह ग्वाल गली में मिली हित कैं ले गई चित चोरिकै।
एक ही ठौर करी इक ठौरी, मनो विधि रूप की रासि बटोरि कैं।
छाड्यो मया करिवा मिलिवोउ परोसनि सों कह्यो भोंह मरोरि कै।
मो सजनी सो उराहनो दे परि मा तन हेरि गई मुहु मोरि कै।

उपर्युक्त कवित्त में मूल से भी अधिक सौन्दर्य आ गया है।

राग-रत्नाकर

'राग-रत्नाकर',[2] 'राग कुतूहल',[3] 'रागचंद्रिका'[4] और 'राग-समूह'[5] सब एक ही

---

१ बिहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
२ पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३ आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
४. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
५. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

रचना के विविध नाम हैं। इस ग्रंथ में संगीत के सभी अंगों पर शास्त्रीय विवेचना हुई है। रागाध्याय में कवि ने रागों के उदाहरण स्वरूप जो कवित्त प्रस्तुत किए हैं, उनसे इस ग्रंथ और ग्रन्थ कर्त्ता की काव्यात्मकता का परिचय प्राप्त होता है।

संपूर्ण 'राग-रत्नाकर' अभी तक कहीं भी प्राप्त नहीं है। जहाँ भी इसकी प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, हर स्थान पर केवल 'रागाध्याय' है। पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर की जो प्रति है, उसके प्रारंभ के पृष्ठ फटे हैं, परन्तु प्रारंभिक अंश आर्य भाषा पुस्तकालय में प्राप्त है। सरस्वती की स्तुति से इन्होंने ग्रंथ का प्रारंभ किया है; उसके पश्चात् संक्षेप में चालीस दोहों में नाद स्वर, गायन-दोष आदि के विषय में बताया है।

'राग निरूपण', 'राग-समूह' तथा 'राग कुतूहल' एक ही ग्रंथ के विविध नाम हैं। इनमें रागों का लक्षण तथा स्वरूप आदि बताकर रागों का मिश्रण कर 'गान-कुतूहल' का वर्णन किया है। यही 'राग-रत्नाकर' ग्रंथ की भी समाप्ति है।

संभव है कि इतना ही ग्रंथ इन्होंने प्रारंभ में बनाया हो। इसमें रागों को महत्त्व दिया गया है, इसलिए ग्रंथ का नाम 'राग-रत्नाकर' रखा। इस दृष्टि से इसको विशिष्टांग निरूपक ग्रंथों में रखा जा सकता था, परन्तु वाराणसी में प्राप्त एक प्रति में इसी अध्याय की समाप्ति पर लिखा है—'इति......सप्तमोध्यायः।' इसका अर्थ है कि कहीं अन्य अध्याय भी लिखे गए होंगे। एक प्रति 'राग समूह' के नाम से आर्य भाषा पुस्तकालय में है, जिसमें सात सौ पाँच श्लोक हैं, जिनमें अन्य अध्यायों का कुछ अंश है।

'राग-रत्नाकर' का प्रकाशन हो चुका है। इसे खेमराज श्री कृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस में छापा था। प्रकाशन काल सं० १९५९ है, परन्तु इसमें कवि अथवा आश्रयदाता किसी के विषय में कुछ नहीं दिया गया है।

सम्पूर्ण ग्रंथ की प्रति अप्राप्त होने पर भी केवल रागाध्याय ही के अवलोकन से इनके संगीत-ज्ञान तथा कवित्व का परिचय मिलता है। शास्त्रीय दृष्टि से रागों का लक्षण कहीं कहीं अशुद्ध है। इसका कारण यही हो सकता है कि उस समय राग का प्रचलित रूप आज से भिन्न हो अथवा स्वयं कवि को संगीत का ज्ञान न हो। जैसे भूपाली के स्वर—

'षिरज ग्रेह सरि ग म प ध नि संपूरन सुरगीत' लिखे हैं, जबकि भूपाली औडव जाति की रागिनी है और स्वर हैं—'स रे ग प ध स'। कहीं कहीं लक्षण में जिन स्वरों का निषेध है वही उदाहरण में प्रयुक्त हैं।

उदाहरण स्वरूप लिखे गए कवित्त रीतिकालीन काव्य के समान, अलंकारों से पूर्ण हैं।

भूपाली उदाहरण--

> 'चंदन हू ते सुख चारु कलेवर कंचन सों कर सोभित लाली।
> केशरि के रंग ही चोर बनो कुच छूटि रही लट नागिन काली।
> भांवन भांवन क्यों न भयो यह प्रीति प्रतीति बनावत आली।
> साहस सों मन धीर धरे सब अंग अनंग भरी भूपाली।'[1]

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी के याज्ञिक संग्रह में एक पुस्तक 'सार-संग्रह' है,

---

१ राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

सं० १८९३ माना गया है[1], इस समय तक कृष्ण कवि का जीवित रहना असंभव जान पड़ता है।

श्री पूर्ण मिश्र

मिश्रबंधु-विनोद, तृतीय भाग (संख्या १५४६) में एक कवि 'पूरण मिश्र' का उल्लेख आया है, जिनकी रचना 'रागनिरूपण' और 'नादोदधि' (नादार्णव) बताई गई है। 'पूरण मिश्र' नामक एक अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख है, जिनका ग्रन्थ 'राज निरूपण' बताया गया है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इनके जीवन के विषय में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है। इनके ग्रन्थ 'संगीत-नादोदधि' के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यह राजा 'वीरशाह' के दरबार में संगीतज्ञ थे। उन्हीं से इन्होंने संगीत का ज्ञान प्राप्त किया। वीरशाह के दरबारी कवि 'दयाल' से इनका बहुत प्रेम था। कवि और मित्र होने के नाते कवि दयाल ने इनसे यह ग्रन्थ लिखने के लिए कहा। धन की प्राप्ति के लिए भी यह उनके कृतज्ञ हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि कहता है—

'प्रेम कियो कवि द्याल सों वीर साह अवतार
तासों पायो भेद हम नाद भेद वीस्तार।'

अन्त में भी यही कहकर समाप्त किया है—

'आदर कर महाराज श्री दीयो हमें यह भेद।
वीर साह अवतार नृप नाद ताल औ भेद।
कवि दयाल सों प्रेम बहु कीनो हित सों काज।
विद्या दे लक्षमी जुगत जस लीनों महाराज।'

'वीर शाह' राजा के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। 'दयाल' नाम से गियर्सन के इतिहास में उल्लेख आता है, जो बेंती जिला रायबरेली के थे तथा भौन कवि के पुत्र थे। भौन कवि रायबरेली के भाट थे तथा इन्होंने 'शृंगार-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[2] ग्रियर्सन ने भौन कवि का जन्म काल १८२४ ई० (सं० १८८१) माना है, परन्तु किशोरी लाल गुप्त ने उसको इसलिए अशुद्ध माना है कि इनके ग्रन्थ 'शृंगार रत्नाकर' की प्राचीनतम प्रति सं० १८९१ की लिखी मिलती है। इस आधार पर सं० १८८१ को जन्म काल न मान कर रचनाकाल माना जा सकता है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि इनके पुत्र दयाल १८८३ ई० (सं० १९३९) में जीवित थे।

इतना तो निश्चित है कि कोई कवि दयाल, जो चारण थे—पूर्ण मिश्र के मित्र थे। 'वीर शाह' भी रायबरेली के पास ही किसी स्थान के राजा होंगे, जिनके दरबार में पूर्ण मिश्र कुछ समय तक रहे।

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ४२९।
२. 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास'—ग्रियर्सन, अनुवादक श्री किशोरीलाल गुप्त, पृ० २६२।

राम नगर (वाराणसी) के 'सरस्वती मदिर' मे एक पुस्तक 'पचाग निरूपण' प्राप्त है, जिसमे श्री सुपदेव मिश्र कृत 'छद-विचार', श्री पूर्ण मिश्र 'कवि रागी' कृत दो पुस्तकें और नददास कृत दो पुस्तकें 'नामावली' तथा 'अनेकार्थ मजरी' लिपिबद्ध हैं। पूर्ण मिश्र की 'सगीत-निरूपण' तथा 'सगीत नादोदधि' क्रमश द्वितीय और तृतीय पुस्तकें हैं। इस पुस्तक का लिपि-काल स० १८५६ है।[1]

उक्त सामग्री के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि पूर्ण मिश्र वीरशाह के राज्य-काल मे रहे। वीरशाह के दरबार मे चारण दयाल कवि थे, जिनकी मित्रता स्वरूप इन्होंने 'सगीत-नादोदधि' की रचना की।

'सगीत-नादोदधि' की प्राचीनतम प्रति 'पचाग निरूपण' मे प्राप्त होती है, जिसका लिपि-काल स० १८५६ है।[1] यह भी सभव है कि यह रचना इनके समय मे ही लिपि-बद्ध की गई हो। इस दृष्टि से इनका रचना-काल स० १८५० के आसपास होना चाहिए। ग्रियर्सन के अनुसार दयाल कवि स० १९३९ तक जीवित थे।[2] उपर्युक्त अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यदि पूर्ण मिश्र का दयाल कवि का समकालीन माना जाए तो कम से कम स० १९१० तक जीवित माना जा सकता है। यदि 'सगीत-नादोदधि' की रचना के समय यह बीस वर्ष के भी हो, तो इनका जन्म-काल स० १८३६ अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार स० १८३६ से स० १९१० तक इनका जीवन-काल निर्धारित किया जा सकता है।

रचनाएँ

पूर्ण मिश्र कृत प्रमुख रचनाएँ 'सगीत-नादोदधि, 'सगीत निरूपण' तथा 'रूप रागावली' हैं। 'सगीत-नादोदधि' और 'सगीत- निरूपण' दोनों एक ही सी पुस्तकें हैं। बहुत सा अश दोनों का समान ही है।

नादोदधि

सगीत-नादोदधि की प्राचीनतम प्रति स० १८५६ की प्राप्त है,[3] अत इसका रचना काल स० १८५० के आस पास होना चाहिए। यह ग्रन्थ सगीत-शास्त्र पर लिखा गया एक विशद ग्रन्थ है। सगीत के सभी अगो—राग, स्वर, ताल, प्रकीर्ण आदि पर पृथक् पृथक् अध्यायो मे प्रकाश डाला गया है, परन्तु यह विभाजन बहुत नियमित नही है। उदाहरणार्थ, इसमे नृत्याध्याय नही है। तालाध्याय अलग होने पर भी मृदगाध्याय अलग दिया गया है। कुछ विषयो पर विस्तृत व्याख्या है और कुछ अग छूट गये हैं। जिन विषयो मे कवि का अध्ययन अच्छा है, उनका सूक्ष्म वर्णन है। उदाहरण के लिए, मृदगाध्याय मे, पराड भेदो मे 'छक्का' का लक्षण और उदाहरण इस प्रकार दिया है—

---

१. सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० २९९।
३. सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

'छक्का'।

आदि तीन सम कीजिए, बुर्ज दून की तीर
छका ताहि बखानिये, बांधि स्वरीहू की दी
उदाहरण विनाकृतधा। विनाकृतधा। विनाकृतना।
तत किटि किटा तविन क था। इति छक्क

संगीत के पक्ष पर तो विस्तार से विचार किया ही गया है, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य दृष्टियों से भी यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। उस समय के कुछ प्रचलित गीत, जो प्रसिद्ध गायकों द्वारा गाए गए थे, इसमें उद्धृत हैं। नायक गोपाल और बैजू बावरा के प्रचलित गीत भी इसमें दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, नायक गोपाल का बनाया एक गीत है—

'स रि गम पध पट स्वर लहो
अस्थाई व म वाल
संचाई संग लै कहो राग हिंडोल गुपाल।'[२]

'बैजू' के अनुसार उनचास तानों का उल्लेख कवि इस प्रकार करता है—

'तान भेद बैजू कहे
कर्‌यो गुपाल प्रकास
सप्त स्वरन के भेद तें
सात सतें उनचास।'

'संगीत-नादोदधि' में जो रागों का शृंगार तथा स्वरूप वर्णन किया है, वह कवित्व से पूर्ण है। इन कवित्तों के द्वारा कवि की काव्यात्मकता तथा अलंकार-प्रियता का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए, भैरव का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

'लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति
कुंडल श्रवन सुप गौर बरन।
जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चंद्रमा
लिलाट सेत बसन धरन।
सोभित त्रिनैन सूल अभै कर डमरू बजावत
लाप्त उर प्रिया करन।
कंवल अस्त्वर गान करेंगी व पूरन प्रकास
दास दोष हरन।'[३]

इनके काव्य में रीतिकालीन चमत्कारी प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। इसी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने कुछ 'स्वर-कल्प' लिखे हैं। 'स्वर-कल्प' सात स्वरों को इस प्रकार रखने का ढंग है, जिसमें स्वर लिपि भी बन जाती है और अर्थ निकालने पर कविता भी बन जाती है।

१. म्यूजियम, अलवर।
२. वही।
३. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, व

'हिंडोल स्वर कल्प ताल फाक्ता
सग साधे सरसै धाम मध्ये साधे सो पेम मधे
प म र गो प शो । मा म धे शो ग सो स्वे रवे धाम
मध में में धा सी दा से धी मे रे गोपिसो ।
"धू रौं र ग म सौधी सौधु शो सु शि धि म रंगे शो

यहाँ लिपिकार के अज्ञान के कारण कुछ अक्षर अशुद्ध लिखे गए हैं। 'श' के स्थान पर 'स' और 'स' के स्थान पर 'श' आ जाने से अर्थ में क्लिष्टता आ जाती है। उपर्युक्त पद में हिंडोल राग में प्रयुक्त स्वरों में 'स, ग, म, ध, स,' में ही कवित्त बनाया है। 'रे' का अल्प प्रयोग दिखाया है।

'संगीत-नादोदधि' की सभी प्राप्त प्रतियों में प्रारंभ एक ही समान हुआ है—

'जै गंगा गौरी करन मंगल करन सुजान'

परन्तु रामनगर, वाराणसी के सरस्वती भंडार में प्राप्त प्रति में उपरलिखित दो पंक्तियाँ नहीं हैं—

प्रेम कियो कवि ग्वाल सो वीर साह अवतार
तासो पायो भेद हम नाद भेद वीस्तार ।'

'संगीत-नादोदधि' के अतिरिक्त श्री पूर्ण मिश्र कृत 'संगीत-निरूपण' ग्रन्थ प्राप्त है', जो लगभग 'नादोदधि' के समान ही है। इसके प्रारम्भ में कोई परिचय नहीं है। इसका प्रारम्भ भैरव राग के लक्षण से होता है।

'रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थाई निध ध्याउ ।
सचाई सरि लाइ कें भैरव राग बनाउ ।'

यह लक्षण भी अपूर्ण है।

यह ग्रन्थ अपूर्ण सा जान पड़ता है। इसमें 'नादोदधि' का ही कुछ अंश और मुख्यतया रागों का लक्षण तथा स्वरूप वर्णन है। इस ग्रन्थ का अन्त 'भटहारी' के स्वरूप वर्णन से होता है।

'अति दीन प्यारी पीन तन पूजत देवी दयानी
फूल फल दल दीनी ।
धूप दीप दान करी करत विनय धरी धनि जय
दे परवीनी ।
जोति रत आवै मौन परम पियारो रौन
दीजे परम वर सेवा प्रवीनी
पूरन प्रकास दत्त सुभग सम्प सुम लषि भटहारी
मधीनी ।'

---

१. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।
२. वही ।

इसी पुस्तक का नाम 'राग-निरूपण' है।[1]

अलवर के म्यूजियम में एक पुस्तक 'रूप-रागावली' पूर्ण मिश्र के नाम से प्राप्त होती है, जिसमें राग बद्ध पद हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने उपनाम 'रूप' दिया है। ऐसा विदित होता है कि ग्रन्थ को बिना देखे उसके ऊपर विवरण लिख दिया गया है। वह 'रूप' नाम के अन्य रीतिकालीन कवि का लिखा हुआ है, जिनका उल्लेख 'रीति-काव्य-संग्रह'[2] में आया है। श्री पूर्ण मिश्र ने सदैव 'पूरन' छाप से काव्य-रचना की है।[3]

अहमद

कवि 'अहमद' के जीवन के विषय में प्रामाणिक सामग्री बहुत कम है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार उन्हें संगीत के विशिष्टांग-निरूपक ग्रंथकारों में प्रथम स्थान देना उचित होगा। इनका समय प्रस्तुत प्रबंध में वर्णित ग्रन्थकारों से पूर्व होने के कारण इनको केवल पूर्वकालिक कवियों में लिया जाना चाहिए था, परंतु विषय की समानता तथा काल की संदिग्धता के कारण इन्हें अन्य कवियों में सम्मिलित कर लिया गया है।

मिश्रबंधु-विनोद द्वितीय भाग के अनुसार अहमद का जन्म-काल सं० १६६० और रचना-काल सं० १६८६ है।[4] ग्रियर्सन ने भी अपने इतिहास में इनका जन्म-काल सं० १६६६ माना है, परन्तु श्री किशोरी लाल गुप्त ने सर्वेक्षण में इनका उपस्थिति-काल सं० १६१८ और सं० १६७८ के मध्य माना है। गुप्त जी ने अहमद को 'ताहिर' नाम का ही व्यक्ति बता कर यह समय निर्धारित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी 'ताहिर' और 'अहमद' को एक ही व्यक्ति माना है।[5]

अहमद का रचना-काल शाहजहाँ के समय से औरंगजेब के समय तक निर्धारित किया जा सकता है। दाराशिकोह के द्वारा लिखाई गई एक पुस्तक 'दोहा-सार-संग्रह' प्राप्त है, जिसमें 'अहमद' कृत दोहे संकलित हैं। 'दाराशिकोह' का वध-काल सं० १७१५[6] है, अतः लगभग सं० १७०० के आस-पास इनका रचना-काल माना जा सकता है।

'अहमद' कवि के काल-निर्धारण के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि 'अहमद' और 'ताहिर' दो व्यक्ति हैं अथवा एक। यद्यपि डा० रामकुमार वर्मा ने अहमद का ही दूसरा नाम 'ताहिर' माना है, परंतु अंतर्साक्ष्य के आधार पर एक स्थान पर ऐसी शंका होती है कि अहमद के शिष्य 'ताहिर' थे। अपनी रचना 'कोकसार' में ताहिर ने अपने को अहमद का शिष्य बताया है।[7]

---

१. सरस्वती भंडार, राम नगर दुर्ग, वाराणसी।
२. वही।
३. जगदीश गुप्त, रीति-काव्य-संग्रह।
४. प्रथम बार, सं० १९७०, पृ० ४७१।
५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५९६।
६. Mughal Rule in India. S. M. Edwardes and Garrett.
७. कोक-शास्त्र—ताहिर कृत—आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, वाराणसी।

'रचना रची सु आदि प्रगट करी सो वेद मुप
अहमद गुरहि प्रसाद कछु जोति म हू लपी ।

(इसका अर्थ 'अहमद' कवि का नाम समझ कर भी किया जा सकता है।) ताहिर जहाँगीर के समकालीन जान पड़ते हैं ।

'चारि चक्र विधान रचे जैसे समुद्र गभीर
छत्र धरे अविचल सदा राज साहि जहागीर ।'[१]

डा० रामकुमार ने भी इनको जहाँगीर का समकालीन माना है ।[२]

जहाँगीर का राज्य काल स० १६६१ से स० १६८३ के मध्य हैं ।[३] स्वय कवि भी इस रचना का समय स० १६७८ बताता है ।

'सवतु सारहि से गिनो अष्टोत्तरि अधिकाय
वदि आषाढ तिथि पचमी कही कथा समुझाई ।'[४]

इस प्रकार अहमद का समय स० १६७८ के पूर्व होना चाहिए। अहमद ने अपनी रचना 'सभा विनोद' या 'रागमाला' के प्रारभ में भी अपना परिचय देते हुए कहा है —

सर वेग को सगी वेग अकवर साहव धाई तेग
ताके सुत कवि पैदा भयो जनम अकवरावादि ज लयो ।
तिन या पोथी करी रसाला, सव रागन की वाधी माला ।[५]

अहमद के अकबर के समय म होने की कल्पना भी निराधार न होगी ।

यदि उपर्युक्त पक्ति 'अहमद गुरहि प्रसाद कछु जाति म हू लपी' म अहमद कवि का नाम समझा जाए तो अहमद का रचना-काल स० १५७८ से स० १७१० तक अवश्य माना जा सकता है । अपने ग्रथ 'वारह मासा'[६] म इन्होंने शाहजहाँ का वर्णन किया है, अत शाहजहाँ के समय म इनकी उपस्थिति ठीक माना जा सकता है। उपर्युक्त निर्धारित काल इसके अनुसार भी ठीक बैठता है ।

डा० हरदेव वाहरी ने एक कवि अहमद का उल्लेख किया है, जिनका समय स० १७५० वि० माना है ।[७] इन्होंने पजाबी म 'हीर' नामक काव्य की रचना की है । विषयो की प्रकृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, 'कोकसार', 'रागमाला', 'हीर' तथा 'वारहमासा' एक ही व्यक्ति की रचनाएँ हैं ।

'रागमाला' के आरभ म दिए हुए विवरण के अनुसार यह ख्वाजा गिजरी ... के

---

१ कोक शास्त्र-ताहिर कृत आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, वाराणसी ।
२ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ सस्करण, पृ० ५६६ ।
३ Mughal Rule in India, Edwardes and Garrett
४ कोक शास्त्र—आ० भा० पुस्तकालय, वाराणसी ।
५ म्यूजियम, अलवर में पोथी स० ३ और ४ ।
६ मोतीचद जी खजाची सग्रह बीकानेर ।
७ हिंदी साहित्य द्वितीय खड, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा सपादित, पृ० ६१५ ।

थे। इनका गोत्र 'पल' है। 'शेर वेग' के पुत्र 'संगी वेग' इनके पिता थे। 'अकबराबाद' में इनका जन्म हुआ था।[1] अपने नाम से यह मुसलमान जान पड़ते हैं, परन्तु काव्य की भाषा तथा ग्रंथारंभ हिन्दू कवियों के समान ही है। ग्रन्थ गुरु को प्रणाम करके प्रारंभ करते हैं।

प्रारंभः

'श्री गुरुम्योनमः। दोहरा।
भैरूं शिव मुप तें भयो धनी सु ग मि सुर सोय।
सारद प्रात ही गाइये जाति अैडवै होय।'

इससे अधिक कवि के विषय में इन ग्रंथों के आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

रचनाएँ

रागमाला

कवि 'अहमद' कृत काम-शास्त्र पर एक ग्रन्थ 'कोकसार',[2] संगीत पर 'राग-माला', हीर रांझा की लोक गाथा पर 'हीर' तथा एक ग्रंथ 'बारहमासा' का उल्लेख मिलता है। इन सब में, प्रस्तुत प्रबंध से सम्बंधित एक ही रचना है—'रागमाला'।[3] कवि ने 'रागमाला' का नाम 'सभा-विनोद' रखा है।

'सभा विनोद जु नाम या पोथी को जानीयो।
पैदा सुप का धाम जगमोहन बस करन यह।'[4]

इस ग्रन्थ में छः राग तथा तीस रागिनियों का शृंगार तथा स्वरूप वर्णन किया गया है। दोहा तथा चौपाई छंदों में रागोत्पत्ति, राग-परिवार तथा रागों का मिश्रण वर्णित है। उदाहरणार्थ, भैरव का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

'धैवत सुरधर ताकों जानो। सिव मूरति सकेरै वषानो।
कंकन उरग और ससि भाल। सुरसरि जटा गरै मुंड माल।
सेत बसन नैन पुनि तीनि। सिद्धि सरूप महा परवीन।'[5]

---

१. 'जाति वंश कवि को सुनि लेहु।
कौन भूमि उपज्यो केहि ग्रेहु।
ख्वाजा पिजरि जाति वषांनि।
अहमद पेल सु गोति है जांनि।
सेर वेग को संगी वेग अकबर साहब धाई तेग।
ताके सुत कवि पैदा भयो जनक अकबराबादि जु लयो।
तिन या पोथी करी रसाला, सब रागन की बांधी माला।'

म्यूजियम, अलवर

२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३. म्यूजियम, अलवर; अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

४. म्यूजियम, अलवर।

५. म्यूजियम, अलवर; अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर

'सभाविनोद' केवल रागों के लक्षण, स्वरूप तथा मिश्रण जानने के लिए महत्वपूर्ण है। काव्यात्मक दृष्टि से इस ग्रंथ की कोई उपयोगिता नहीं है।

'कोक-सार'

अहमद की दूसरी रचना 'कोक-सार' प्राप्त होती है। यदि यह मान लिया जाए कि 'ताहिर' अहमद के शिष्य थे, तो यह ग्रंथ अहमद रचित नही माना जाएगा। इसी पुस्तक के आधार पर यह भ्रम होता है कि ताहिर, अहमद के शिष्य थे।

'रचना रची सु आदि प्रगट करी सो वेद मुष
अहमद गुरहि प्रसाद कछु जाति मैं हू लषी।'[1]

इस पक्ति मे (जैसा कि पहले कहा जा चुका है) 'अहमद' कवि का नाम भी समझा जा सकता है। यदि अहमद रचित ग्रन्थ माना जाए तो अहमद का समय जहाँगीर का समय निश्चित होता है।[2] कवि ने रचना का समय भी सवत १६७८ बताया है। इस पर पहले विचार किया जा चुका है।

'कोकसार' मे कवि ने 'काम-कौतूहल', का वर्णन किया है।

'काम कौतूहल रस कथा चतुर आगरे चाइ,[3]
कविता हर या देस मह बरणी कृपा बनाई।'

काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से 'कोकसार' साधारण कोटि की रचना है।

'हीर'

अहमद कृत तीसरा ग्रंथ 'हीर' है, जिसकी गणना पजाबी लोक-साहित्य मे की गई है।[4] हीर-राँभा की लोककथा को इसमे वर्ण्य विषय बनाया गया है।

अहमद की अन्य रचनाओ मे 'बारहमासा', 'गुणसार', रतिविनोद भाषा', 'रस विनोद' तथा 'सामुद्रिक' का उल्लेख मिलता है।[5] ये सभी रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नही हैं, फिर भी अहमद की कवित्व शक्ति को प्रमाणित करती है। 'बारहमासा' मे नायिका की 'बारहो मास' मे होने वाली सुख तथा दुख की अनुभूति का वर्णन है। 'गुणसार' ही का दूसरा नाम डा० रामकुमार वर्मा ने 'गुणसागर' बताया है।

---

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. 'चारि चक्र विधना रचे जैसे समुद्र गभीर।
छत्र धरे अविचल सदा राज साहि जहाँगीर।'
आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. हिंदी साहित्य, द्वितीय खड, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा सपादित, पृ० ६१५।

५. शोध विभाग सूची, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

६. मोती चद खजाची सग्रह, बीकानेर।

भूलत हिंडोरे झूम झूम झुकि परें घुमि
विवस हिंदोल मिस रस ही के दाडंसों ।
हाहा करि लीन्हो ज्योंही अंक भरि प्यारी त्यों ही उठे हैं
सिरंग लाल प्यारे प्रेम चाउ सों ।"[1]

उक्त कवित्त की काव्यात्मकता की तुलना में पं० रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ उद्धरण साधारण सा जान पड़ता है ।

'अहिरिनि मन के गहिरिनि उतरु न देइ ।
नैना करे मथनिया मन मथि लेइ ।
तुरकिनि जाति हुरुकिनी अति इतराइ ।
छुवन न देइ इजरवा मुरि मुरि जाइ ।
पीतम तुम कचलोइया, हम गज बेलि ।
सारस के अस जोरिया फिरौं अकेलि ।'[2]

उक्त अंश में लोक-गीत का सा माधुर्य है । दोनों अंश परस्पर साहित्यिक दृष्टि से दूर होने पर भी एक कवि द्वारा रचित हो सकते हैं ।

रचनाएँ

यशोदानंदन शुक्ल कृत प्राप्त रचनाएँ केवल दो ही हैं । 'रागमाला' तथा 'वरवै नायिका भेद' । रागमाला में कवि ने स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि का स्थान, स्वरूप तथा लक्षण आदि विस्तार से बताया है । राग तथा रागिनियों के वर्णन के साथ ही सखा तथा सखी का वर्णन भी किया गया है । इस ग्रंथ से कवि के संगीत-ज्ञान का परिचय मिलता है । रागों की तीन जातियाँ, शुद्ध सालंक तथा संकीर्ण बताते समय कवि स्वरों के तीन प्रकार बताने लगता है तथा उदाहरण स्वरूप रागों का नाम बताता है । उदाहरण के लिए 'सालंक-राग' की परिभाषा देते समय कवि 'विकृत-स्वर' की परिभाषा बता देता है ।

'सोई जनौ विकृत स्वर । और ठौर तें आय ।
औरन के अस्थान में जो ढुरि ढुरि मिलि जाय ।'[3]

उदाहरण देते समय कवि 'सारंग' तथा 'कान्हरा' दो ही रागों को महाशुद्ध बताता है ।

'जामें मिले न विकृत स्वर, पूरन आपहि होइ ।
कहिये सारंग कान्हरा महाशुद्ध ए दोइ ।'[4]

रागों के स्वरूप तथा शृंगार वर्णन में कवि ने अत्यन्त कलात्मक रुचि तथा साहित्यिक सामर्थ्य का परिचय दिया है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है ।

---

१. रागमाला, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २८१ (बारहवां संस्करण)।
३. रागमाला—आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
४. रागमाला—आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

'बरवै नायिका भेद' एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमे नौ बरवै सस्कृत मे तथा तिरपन ठेठ अवधी भाषा मे हैं।[1]

गगाराम

गगाराम का रचना-काल स० १७४४ है। मिश्र-बधुओ ने भी इनका कविता काल स० १७४५ माना है।[2] ग्रियर्सन ने गगाराम का जन्म काल सन् १८३७ ई० माना है।[3] दोनो म समय का इतना बडा अन्तर है कि ये दो कवि जान पडते हैं। श्री किशोरी लाल गुप्त न गगाराम का कविता-काल स० १८४६-१८६४ माना है।[4] प्रतसाक्ष्य के आधार पर ग्रियर्सन का समय ठीक नही बैठता। अपन ग्रथ 'सभा-विलास' मे स्वय कवि ने कहा है—

'सतरह से सवत सरस। चतु अधिक चालीस।
कातिग सुदि तिथि सप्तमी। वारस रस रजनीस।
*　　　　*　　　　*
श्री भगवत प्रसाद तै इह सुभ सभा विलास।'[5]

गगाराम कवि द्वारा रचित शाङ्गदेव के सगीत-रत्नाकर की 'सेतु' नामक एक ब्रजभाषा-टीका, 'तजौर सरस्वती महल पुस्तकालय' म उपलब्ध है, जिसका समय सन् १७०० ई० अर्थात् स० १७५६ है।[6] इस दृष्टि से भी यह समय अधिक उपयुक्त है।

इस प्रकार इनका कविता-काल स० १७४४ से स० १७५६ तक तथा जीवन-काल अनुमानत स० १७२४ से स० १७७० तक माना जा सकता है।

गगाराम सागानेर नगर के राजा रामसिह के राज्य मे थे।

'सागानयर सुनगर मैं राम सिह नृपराज।
तहा कवि जन सब चैयन सौं राजन सभा समाज।
गगाराम तहा सरस कवि कीन्ही बुद्धि प्रकास।
श्री भगवत प्रसाद तैं इस सुभ सभा विलास।'[7]

रचनाएँ

गगाराम रचित 'सभाभूषण रागमाला' प्राप्त होती है, जिसमे इन्होंने राग-

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २८१ (१२ वाँ सस्करण)।
२ मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, स० १६७०, पृ० ५६४।
३. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक श्री किशोरी लाल गुप्त, प्रथम सस्करण, १६५७, पृ० २४१।
४ वही।
५ सभाभूषण रागमाला—गगाराम, म्यूजियम, अलवर।
६ सगीत शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, प्रथम सस्करण १६५८, पृ० ५।
७ सभाभूषण रागमाला, गगाराम, म्यूजियम अलवर।

रागिनियों का स्वरूप वर्णन किया है। इसकी प्रतियाँ अलवर, कांकरोली तथा काशी में उपलब्ध हैं, इससे इनकी लोकप्रियता का परिचय मिलता है।

गंगाराम रचित शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' की टीका इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि यह ब्रजभाषा की अकेली टीका है। अन्य टीकाएँ संस्कृत में हैं।

संगीत-काव्य के उदाहरण-ग्रन्थकारों में से प्रमुख कवियों के जीवन तथा कृतियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

कृष्णानंद व्यास देव

श्री कृष्णानंद व्यास देव 'रागसागर' एक बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ कवि हो चुके हैं। कृष्णानंद के पिता का नाम हीरानंद व्यास देव तथा प्रपिता का नाम अमरानंद व्यास देव था। स्वयं कवि अपने ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' भाग एक के 'गानाध्याय' के प्रारंभ में कहते हैं—

> 'अमरानन्दो महात्मा श्रुतिस्मृति निपुणस्तस्यात्मजः श्री हीरानन्दो
> तस्यात्मजः श्री कृष्णानंद व्यास देव निपुणो वेद वेदांग विज्ञः।'[1]

यह राजपूताना मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत उदयपुर के जोहैनी नामक स्थान में रहते थे और वृन्दावन-गोकुल में संगीत-शास्त्र पढ़ते थे। गोकुल के सुप्रसिद्ध संगीताचार्य दामोदर गोस्वामी, गिरधर गोस्वामी एवं कल्याणराय प्रभृति गोस्वामिगण ने संगीत-विद्या से मुग्ध हो इन्हें 'राग-सागर' उपाधि दी।[2] इनका जन्म-काल सं० १८५१ अथवा सन् १७९४ ई० तथा मृत्युकाल लगभग सं० १९४५ अथवा सन् १८८८ ई० माना जा सकता है। लगभग ९४ वर्ष की आयु में इनका निधन हुआ। यह जीवन-काल श्री नगेन्द्रनाथ वसु के दिए हुए जीवन परिचय के आधार पर निर्धारित किया गया है। इनके ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' भाग एक का संपादन करते हुए श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने कहा है—

'कोई ३२ वर्ष पहले सन् १८८४ ई० को कलकत्ते में सर राजा राधा कांत देव बहादुर के प्रासाद में हमने तेजस्वी तप्तकांचन वर्णाभ और दीर्घकाय एक ब्राह्मण देखा। उस समय हमने बंग भाषा में 'शब्देन्दु महाकोष' नामक बृहदभिधान प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया था। इस अभियान के प्रकाशन और प्रत्नतत्त्व विषय में शिक्षा लाभ के अभिप्राय से ही राजा राधाकांत के उपयुक्त दौहित्र स्वर्गीय श्री आनन्द कृष्ण वसु महाशय के समीप हम उपस्थित थे। उसी समय पूज्यपाद वसु महाशय से साक्षात् करने को वह ब्राह्मणप्रवर राधाकान्त भवन में आए थे। वसु महाशय की कृपा से हमारा उनका परिचय हुआ। परिचय प्रसंग में वसु महाशय ने कहा था—'यही राग सागर कृष्णानंद व्यास देव हैं। इस समय इनका वयस ९० वर्ष का, किन्तु देखने में ५०-६० से अधिक समझ नहीं

---

१. राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृ० ४१, संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।
२. वही।

पडता। हमारे मानामह ने जैसा शब्द-कल्पद्रुम नामक अभिधान बनाया है, इन्होंने भी वैसे ही राग-कल्पद्रुम नाम पर एक प्रकाण्ड संगीत ग्रंथ का संकलन किया है। पृथ्वीराज रायसे की बात सबने सुनी होगी। इस समय एक मात्र यही कवि चन्द का वह 'रायसा' उपयुक्त रूप से गा सकते हैं। इत्यादि।

जब हमने उन महात्मा को देखा, तब वह बहुमूल्य जरीन् कुरता, चपकन, चोगा और टोपी पहने हुए थे। उनकी यह वेषभूषा देख हम उन्हें कोई श्रेष्ठ ग्रन्थकार या गायक समझ न सके। हमने सोचा, कोई अमीर या राजा-महाराजा होंगे। वसु महाशय से उनका प्रकृत परिचय पा हम विस्मय विमुग्ध हो गए। कवि चन्द का नाम तो सुना था, किन्तु उनका गान कभी कान न पडा था। हमने बहुत डरते डरते गुरुस्थानीय वसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और राग सागर ने हसते हसते बालक का मन रख दिया। उन्होंने कवि चन्द का गाना सुनाने के लिए पहले अपना परिधृत परिच्छद समस्त खोल खाल लगोटा पहना, पीछे वीर-रसात्मक कवि चन्द का एक पद गाया।"[1] इसके पश्चात् नगेन्द्रनाथ वसु कहते हैं कि 'सिर्फ उसी दिन इन महापुरुष से हमारी मुलाकात हुई थी। उसके थोडे दिन बाद सुन पडा, राग सागर इह जगत से उठ गए। इस बात को गुजरे कोई २८ वर्ष बीते होंगे।"[2]

उपर्युक्त कथन के आधार पर कृष्णानद जी सन् १८८४ ई० म ९० वर्ष के थे, अर्थात सन् १७९४ ई० अथवा स० १८५१ उनका जन्मकाल हुआ। अंतिम पंक्ति के आधार पर २८ वर्ष उनकी मृत्यु को हुए थे तथा ३२ वर्ष पूर्व की यह घटना वर्णित है। इस प्रकार वसु जी से मिलने के चार वर्ष पश्चात् 'रागसागर' की मृत्यु हुई, अत मृत्यु काल सन् १८८८ ई० अथवा १८८९ ई० हुआ।

मिश्रबन्धु-विनोद के तृतीय भाग में कृष्णानद व्यास देव का उल्लेख हुआ है, जो उदयपुर महाराणा के संगीतज्ञ थे। ग्रियर्सन ने इनके एक मित्र का उल्लेख किया है,[3] जिनका नाम डा० राजेन्द्रलाल मित्र था, जो इनकी बाल्यावस्था में इनके व्यक्तिगत रूप से परिचित हुए थे। डा० राजेन्द्रलाल ने ग्रियर्सन को राग-कल्पद्रुम के विषय म लिखा था कि—

'ग्रन्थ तीन भागों म था। मुझे स्मरण है कि लेखक ने मुझ से कहा था कि मैं ग्रंथ को सात भागों मे पूर्ण करूगा, जैसा कि राधाकान्त देव का शब्द कल्पद्रुम सात भागों में है, परतु मैं नहीं समझता कि उनके पास तदर्थ पर्याप्त सामग्री थी। वह अपने साथ हस्तलेखों का विशाल गट्ठर लिए हुए चला करते थे, लेकिन उनकी परीक्षा का मुझे कभी अवकाश

---

१ राग-कल्पद्रुम, द्वितीय भाग, सपादक नगेन्द्रनाथ वसु का कथन, पृ० १, लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।

२ राग कल्पद्रुम, द्वितीय भाग, सपादक नगेन्द्रनाथ वसु का कथन, पृ० १, लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी; संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।

३ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रियर्सन, पृ० २७१।

नहीं मिला। मैं उस समय उनका महत्त्व जानने के लिए बहुत बच्चा था। ग्रंथकार ब्राह्मण था और उसका बहुत बड़ा दावा था कि वह तीन आक्टेवों (सप्तकों) से गा सकता था, जब कि सामान्यतया मानव स्वर की परिधि केवल ढाई 'आक्टेव' की है। उसका दावा यह भी था कि वह सभी राग रागिनियों को शुद्ध रूप में, बिना एक दूसरे को मिलाए हुए, गा सकता था। लेकिन मैंने कभी भी संगीत का ज्ञान नहीं प्राप्त किया, लड़कपन में इस संबंध में कभी चिंता ही नहीं की, अतः इस व्यक्ति के दावों का कोई प्रमाण मैं नहीं पा सका। वह सदैव गाया करते थे, पर वे पेशेवर गायक नहीं थे अर्थात् वह पारिश्रमिक पर कहीं नहीं गाते थे। वह नगर के धनी लोगों से प्रायः उपहार पाया करते थे, पर कभी भी गाने के बदले में मज़दूरी या पारिश्रमिक नहीं लेते थे।[1]

रचनाएँ

कृष्णानंद व्यास देव की केवल एक ही रचना 'राग-कल्पद्रुम' प्राप्त होती है, जो अपने वृहदाकार के कारण अनेक रचनाओं के समान है। इस ग्रन्थ में देशी तथा विदेशी पैंतालीस भाषाओं के तत्कालीन प्रचलित गानों का संग्रह है। कवि ने बीस-बाईस वर्ष तक समस्त भारत का भ्रमण करके इन गीतों का संग्रह किया था।

इनके ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' की सूचना तथा प्रथम अंश 'रंगीन राग मजमूआ' के नाम से सन् १८४२ ई० अर्थात् सं० १८९९ में प्रकाशित हुआ था। सन् १८४९ ई० को उनके ग्रंथ का अंतिम खंड निकला था। 'राग-कल्पद्रुम' प्रथम भाग का प्रकाशन मुर्शिदाबाद लाल गोले के राजा राव श्री योगींद्र नारायण राय बहादुर के व्यय से वंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता के द्वारा सं० १९०१ में हुआ। इसका सम्पादन श्री नगेन्द्रनाथ वसु, प्राच्यविद्या-महार्णव ने किया था। यह ग्रंथ चार खंडों में संपूर्ण हुआ। तृतीय भाग बंगला गानों का संग्रह है। चतुर्थ खंड अप्राप्त है। इनके सात सौ चवालीस पृष्ठ अप्रकाशित रूप में इम्पीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता में हैं।

राग-कल्पद्रुम में स्वयं 'राग-सागर' रचित गान भी हैं, जो 'कृष्णानंद' की छाप से संयुक्त हैं। उदाहरणार्थ—

> 'समझ गारी देरे कन्हैया रे मानो मोरी बल मैया
> गारी देवे जिह्वा बिगारै ऐसी चतुर ब्रजनारी दैया।
> हों तो तिहारी लाज करत हौं और करो तेरी चाह गुसैंया।
> हौं यमुना जल भरन जात थी बहियां पकर झकझोरी ग्वैया।
> राधा माधव होरी खेलैं चिरंजीवो यह जोरी कन्हैया।
> हा हा करत हौं पइयां परत हौं मानो बिनती दधि के चखैया
> कृष्णानंद आनंद करो तुम श्री गोकुल के बसैया।'[2]

---

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० २७१।
२. राग-कल्पद्रुम, कृष्णानन्द व्यास देव, भाग २, पृ० ३३०।

यह ग्रथ कवि के सगीत-ज्ञान तथा कवित्व शक्ति दोनों ही से परिचित कराता है। तत्कालीन प्रसिद्ध सगीतज्ञ तथा कवियो के नाम तथा कृतियो से परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण है।

नागरीदास

'नागरीदास' नाम के कई कवि हिंदी साहित्य जगत म प्रवेश कर चुके है। प्रस्तुत प्रबध म उल्लिखित कवि नागरीदास का नाम 'सावतसिह था। यह कृष्ण गढ़ के राजा थे। इनका जन्म सवत् १७५६ म हुआ था। 'सवत् १८०४ मे ये दिल्ली के शाही दरबार म थे। इसी बीच मे इनके पिता महाराज राजसिह का देहान्त हुआ। बादशाह अहमदशाह ने इन्हे दिल्ली म ही कृष्णगढ राज्य का उत्तराधिकार दिया, पर जब ये कृष्णगढ पहुचे, तब राज्य पर अपने भाई बहादुरसिह का अधिकार पाया, जा जोधपुर की सहायता से सिहासन पर अधिकार कर बैठे थे। यह ब्रज की ओर लौट आए और मरहठो से सहायता लेकर इन्होंने अपने राज्य पर अधिकार किया, पर इस गृह कलह से इन्हें कुछ ऐसी विरक्ति हो गई कि ये सब छोड छाडकर वृन्दावन चले गए।'[1]

विरक्त होकर स्वय इन्होने कहा है—

'जहा कलह तह सुख नही, कलह सुखन को मूल
सर्व कलह इक राज मे राज कलह को मूल।'

आत्म-विश्वास का अभाव होने के कारण एक स्थान पर कहते हैं—

'मैं अपने मन मूढ तैं डरत डरत हौं हाय
वृन्दावन की ग्रार तें मति कबहु फिरि जाय।'[2]

वृन्दावन मे सखी भाव से कृष्ण की भक्ति करते थे। इनके साथ इनकी उपपत्नी 'बनी ठनी' भी रहती थी, जा स्वय कविता रचती थी और सभवत नागरीदास को काव्य प्रेरणा देती थी।[3] इनका कविता काल स० १७८० से स० १८१९ तक माना जा सकता है।[4]

रचनाएँ

इनके सत्तर ग्रथ[5] 'नागर-समुच्चय नामक पुस्तक म सकलित हैं, जिसका सपादन राधा कृष्ण दास ने किया है तथा ज्ञान सागर प्रेस न इसको प्रकाशित किया है। ये पुस्तकें वास्तव

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचद्र शुक्ल, बारहवाँ सस्करण, पृ० ३१६।
२. वही।
३. हिंदी साहित्य, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा सपादित, पृ० ३६३।
४. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचद्र शुक्ल, बारहवाँ सस्करण, पृ० ३१६।
५. सिंगार-सार, गोपी प्रेम प्रकाश, पद प्रसगमाला, ब्रजवैकुठतुला, व्रज सागर, भोर लीला, प्रातरस मजरी, विहार चन्द्रिका, भोजनानदाष्टक, जुगल रस माधुरी, फूलविलास, गोधन आगमन दोहन, आनन्दलग्नाष्टक, फाग विलास, ग्रीष्म विहार, पावस पचीसी, गोपी

में कुछ पदों का संग्रह मात्र हैं। शीर्षक के नाम से एक भिन्न पुस्तक बन गई है। इन सभी संग्रहों में नागरीदास का कवित्व तथा संगीत-प्रियता का परिचय मिलता है। रास आदि के वर्णन में कहीं कहीं अत्यंत सूक्ष्म, चित्रोपम तथा सुन्दर वर्णन हुआ है। 'संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन' नामक अध्याय में इसका वर्णन किया गया है।

मानसिंह

महाराजा मानसिंह जोधपुर नरेश थे। इन्होंने सं० १८६० से सं० १६०० तक राज्य किया।[1] राजा भीमसिंह के मरने पर इनके चचेरे भाई मानसिंह गद्दी पर बैठे। इनको जालंधरनाथ के वरदान से जोधपुर का राज्य मिला। ये बागीराम, गाडूराम, मनोहरदास उत्तमचंद और शंभूदत्त जोशी के आश्रयदाता थे। इनके पुत्र का नाम छत्रसिंह था। यह संगीत के बहुत प्रेमी थे और स्वयं गान विद्या में निपुण थे। इन्होंने बहुत से गीत बनाए। शास्त्रीय संगीत में भी इन्हें रुचि थी, इसीलिए इन्होंने राग बद्ध गीतों की रचना की है।

रचनाएँ

इन्होंने 'रसराज' के नाम से कविता की है। इनकी बनाई हुई कई पुस्तकें प्राप्त हैं। इनके अठारह ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। १. रागां रो जीलो, २. बिहारी सतसई टीका, ३. जलंधरनाथ जी रा चरित्र, ४. नाथ चरित्र, ५. श्रीनाथ जी, ६. राग सागर, ७. नाथ प्रशंसा, ८. कृष्ण विलास, ६. महाराज मानसिंह जी की वंशावली, १०. नाथ जी की वाणी, ११. नाथ कीर्तन, १२. नाथ महिमा, १३. नाथ पुराण, १४. नाथ संहिता, १५. रामविलास, १६. संयोग शृंगार का दोहा (देसी भाषा), १७. कवित्त सवैया दोहे, १८. सिद्ध गंग।[2] इसके अतिरिक्त इन्होंने ध्रुपद, धमार, टप्पा, ख्याल सभी प्रकार के फुटकर गीत भी लिखे।

बैन विलास, रासरस लता, नन रूप रस, शीत-सार, इश्कचलन, मजलिस मंडन, अरिल्लाष्टक, सदा की मांझ, वर्षाऋतु की मांझ, कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त, सांझी के कवित्त, रास के कवित्त, चाँदनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, गोवर्धनधारन के कवित्त, होरा के कवित्त, फाग गोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्त, वर्षा के कवित्त, भक्तिमतदीपिका, तीर्थानन्द, फागविहार, बालविनोद, बन विनोद, सुजानानंद, भक्तिसार, देहदशा, वैराग्यवल्ली, रसिक रत्नावली, कविवैराग्य वल्लरी, अरिल्ल पचीसी, छूटक विधि, पारायण विधि प्रकाश, शिखनख, छूटक कवित्त, चर्चरियां, रेखता, मनोरथ मंजरी, रामचरित्रमाला, पद प्रबोधमाला, जुगलभक्ति विनोद, रसानुक्रम के दोहे, शरद मांझ, साँझी फूलबिननसंवाद, वसंत वर्णन, रसानुक्रम के कवित्त, फाग खेलन, समेतानुक्रम के कवित्त, निकुंज विलास, गोविंद परचई, बन जन प्रशंसा, छूटक दोहा, उत्सव माला और पद मुक्तावली।

१. मिश्रबंधु विनोद, कवि संख्या नं० ११२५।

२. वही।

राजा होने के नाते इनके ग्रन्थो की प्राप्त प्रतियाँ बहुत सुदर और स्पष्ट लिपि मे लिखी हुई हैं।[१]

इनके गीतो के शब्दों मे गभीरता नही है। अधिकतर भाव तथा शैली दोनो की दृष्टि से चलते चचल प्रवृत्ति के गाने हैं। 'ध्रुवपद' (गभीर गान) के शब्द भी ठुमरी और ख्याल के समान चचल हैं।

'ध्रुवपद राग सारग चौताला
मजर फूले तैसें ही फूले फूल। अस्ताई
कलिमा विकास पतवा दुहरी ले नीकें सोहत भूल।
पल्लव मृदु तर सोहत डारन मे सरसी साया अकुरे
नवीने मजुल तैसो मूल।
असे व्रजवेली के कुज मे झूले रहे है दोउ भूल।[२]

'इन्होंने बहुत से छदो मे कविता की है और रचना मे कृतकार्यता पाई है। इनकी भाषा मनोहर और सुकवियो की सी है।'[३]

गीतो की भाषा केवल व्रज ही नहीं है वरन् मेवाडी, मारवाडी आदि भाषा मे भी गीत हैं। इस पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है।

'मानसिंह' नामक एक अन्य शृगारी कवि का उल्लेख मिलता है, जिनकी दो रचनाएँ 'शृगार बत्तीसी' और 'शृ गार लतिका' प्राप्त होती हैं,[४] परन्तु यह इन मानसिंह से भिन्न व्यक्ति हैं, क्योकि यह अयोध्या के राजा थे और 'द्विजदेव' के नाम से रचना करते थे। सगीत-काव्य मे इनका स्थान महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जवान सिंह

जवान सिंह जी किशनगढ़ के महाराजा पृथ्वीसिंह के द्वितीय पुत्र थे।[५] यह सगीत के अच्छे ज्ञाता तथा कवि थे। कृष्ण के मधुर रूप के प्रेमी थे। किशनगढ के राज परिवार मे किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि इन्हे 'सुखराम' कवि ने पढाया था।[६] इनका राज्याभिषेक ३१ मार्च सन् १८२८ को हुआ। अग्रेजी सरकार की ओर से कप्तान काब राज्याभिषेक का टीका लेकर उदयपुर गए थे। यह शिकार के शौकीन थे, पितृभक्त, लोकप्रिय, अपव्ययी तथा

---

१. मुनि कांति सागर सग्रह, उदयपुर।
२. मुनि कांति सागर सग्रह, उदयपुर।
३. मिश्रबधु विनोद, सख्या नं ११२५।
४. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—देवीशरन रस्तोगी, पृ० १६३।
५. हिंदी साहित्य के इतिहास के अज्ञात आधार-रवि वृन्द के वशज, (लेख) मुनि कांति सागर जी, सम्मेलन पत्रिका, पौष-फाल्गुन, १८७६ शक।
६. वही।

विलासी थे ।[1]

रचनाएँ

जवान सिंह कृत अधिक रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं । इन्होंने फुटकर कवित्त तथा पद-रचना की है । कृष्ण के मधुर रूप पर अन्य कृष्ण भक्तों के समान, विभिन्न समयों पर गाए जाने वाले राग बद्ध गीत का निर्माण किया है । गीतों के संग्रह 'रस-तरंग'[2] तथा 'गीत-संग्रह'[3] के नाम से प्राप्त हैं । इसके अतिरिक्त जयलाल कृत 'जत्वय शहनशाह इश्क' में कुछ अंश की टीका की है ।[4] इन्होंने 'व्रजराज' तथा 'नगधर' दोनों नाम से रचना की है । कृष्ण के जिस नाम तथा स्वरूप में भक्त को अत्यधिक आनंद प्राप्त होता था, उसी नाम को अपना 'उपनाम' बना लेने का उस समय प्रचार था । प्रताप सिंह का 'व्रजनिधि', 'मानसिंह का 'रसराज' सावंतसिंह का 'नागरीदास' इसी प्रकार के नाम हैं । जवान सिंह का 'व्रजराज' नाम इसी प्रकार का है तथा 'नगधर' नाम अपना कविता का नाम रखा ज्ञात पड़ता है । 'व्रजराज' के नाम से केवल एक दो पद मिलते हैं, अन्य सभी में 'नगधर' अथवा 'नगधरदास' मिलता है । 'रस-तरंग' के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कहे गए पद में 'व्रजनाथ' नाम है ।

'श्री वल्लभ उदार जगदुच्चार करुनानिधान वर गाइयें ।
श्री विट्ठल नाथ अनाथ नाथ व्रजनाथ अवतार वर गाइयें ।'[5]

अन्य सभी पदों में 'नगधर' नाम की छाप है ।

'नगधर नेह निवाहक प्यारो मोहि हित सरसावन है ।'[6]

+ + +

'नगधर करी सुहागिनी सुर गहरें मति बोल ।
तांन विसारें ग्रह कथा करी विरह की रोल ।'[7]

+ + +

'नगधर बसन मुसिकाय नये जब व्रज जन सब हरप भई है ।'[8]

+ + +

---

१. राजस्थान के घरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ, राजकुमारी शिवपुरी, प्रथम संस्करण, पृ० ५१ ।
२. मुनि काँति सागर संग्रह, उदयपुर ।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
४. हिंदी साहित्य के इतिहास के अज्ञात आधार-कवि वृन्द के वंशज, (लेख) मुनि कांति सागर जी, सम्मेलन-पत्रिका, पौष फाल्गुन, १८७८ शक ।
५. मुनि काँति सागर संग्रह, उदयपुर ।
६. गीत-संग्रह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
७. वही ।
८. वही ।

'नगधर प्रभु की जोरी यह सुन्दर हम राधे सी निधि पाई है।'[1]

सुश्री राजकुमारी शिवपुरी ने एक कवि 'रूप सिंह' का वर्णन किया है, जो सन् १६४३ अर्थात् सवत् १६६६ मे कृष्णगढ के राजा थे। इनका कविता का नाम 'नगधर' बताया है। उदाहरण स्वरूप दिए गए पदो से स्पष्ट है कि रूपसिंह जी का 'नगधर' नाम 'रूपसिंह' के नाम के साथ आता है तथा जवानसिंह जी का केवल नगधर अथवा 'नग दास' नाम पदो मे प्रयुक्त होना है। रूपसिंह के पदो मे नाम इस प्रकार है—

'रूप सिंह प्रभु नगधर नागर वस कीनें मोहन।'[2]

\+ \+ \+

'रूप सिंह प्रभु नगधर नागर मिलि मलार सुर गावत।'[3]

यहाँ 'नगधर नागर' कृष्ण का नाम विशेष है जो कवि ने अपने उपास्य को दिया है।

जवान सिंह जी के गीत-सग्रहो म सुन्दर मधुर शब्दावली तथा रागो मे बधे गीत हैं, जो कृष्ण के विभिन्न सस्कारो पर अथवा उत्सवो पर गाए जाने के योग्य हैं। सामूहिक गीतो का बडा सुदर सकलन है। इनके उदाहरण अन्य अध्यायो मे प्रस्तुत किए जा चुके हैं, अत पुनरुक्ति-दोष के भय से यहा नहीं दिए जा रहे हैं।

उपरिलिखित कवियो के अतिरिक्त अन्य कवियो के द्वारा रचित कृतियाँ यद्यपि शृगार-युगीन सगीत-काव्य की रूप-रेखा निश्चित करने मे सहायक सिद्ध हुई हैं तथापि काव्योत्कृष्टता की दृष्टि से उनका स्थान इतना महत्वपूर्ण नहीं है, अत ऐसे कवियो की जीवनी पर यहाँ प्रकाश नहीं डाला गया है।

---

१. रस-तरग, मुनि कांति सागर सग्रह, उदयपुर।

२ राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ—राजकुमारी शिवपुरी, पृ० १५०।

३. वही।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन

संगीत-काव्य एक ओर हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि करता है, दूसरी ओर संगीत के सिद्धान्तो का निरूपण करता है। यहा इस काव्य मे प्रतिपादित संगीत संबंधी सिद्धांतो पर संक्षेप मे दृष्टिपात किया जा रहा है।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य मे संगीत-शास्त्र के सिद्धान्तो को खोजने के पूर्व, संगीत सम्बन्धी तत्कालीन स्थिति से परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। यह वह समय था, जब प्राचीन सिद्धांतो पर आधारित गायकी समाप्त प्राय थी। मुगल राजाओ के आधिपत्य के पश्चात् भारतीय संगीत, विदेशी संगीत से बहुत अधिक प्रभावित हो चुका था। सिद्धांतो को गायक बहुत अंशो मे भुला चुके थे। भारतीय संगीत के दो भाग हो चुके थे। उत्तर भारतीय संगीत और कर्नाटक संगीत। कर्नाटक संगीत मे प्राचीन सिद्धांत अपने वास्तविक रूप मे प्राप्त भी होते थे, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत म विदेशी (ईरानी, अरबी, फारसी) प्रभाव आ जाने के कारण उसका स्वरूप मूल से बहुत दूर जा चुका था। फिर भी यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शास्त्रीय ग्रंथो की रचना मे कमी नही थी, केवल उनका क्रियात्मक रूप भिन्न हो गया था। ऐसी दशा मे इस समय के रचित ग्रंथो मे प्राचीन ग्रंथो से भिन्न सिद्धांतो का आ जाना नितान्त स्वाभाविक था। यहा हमे यही देखना है कि इन ग्रंथो मे संगीत शास्त्र का स्वरूप कितना परंपरागत था और कितना मिश्रित रूप मे प्राप्त होता है।

अधिकांशत काव्य म वर्णित सिद्धांत संस्कृत ग्रंथो से लिए गये है, परन्तु अन्य कुछ ग्रन्थो मे मौलिकता भी पाई जाती है। इस दृष्टि से इन ग्रंथो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

१—परंपरा पर आधारित ग्रन्थ

२—मौलिकता से युक्त ग्रंथ

परम्परा पर आधारित ग्रंथो के भी दो विभाग हो सकते हैं—

१—शुद्ध परम्परावादी ग्रंथ, इनमे संस्कृत ग्रन्थो के सिद्धांतों का यथा-रूप अनुवाद मिलता है।

२—मिश्र परम्परावादी ग्रंथ, इनमे विविध आचार्यों के मतों का मिश्रित रूप मिलता है, साथ ही लेखको ने अपने विचारों का भी आरोपण बीच बीच मे कर दिया है।

सर्वांग निरूपक ग्रंथों मे परम्परा पर आधारित सिद्धांतों का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट

हो जाता है कि संगीत के स्वरूप में शास्त्रीय दृष्टि से अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था, किंतु क्रियात्मक रूप में वाह्य परिस्थतियों के कारण पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन प्राप्त होता है। अतएव शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण करने वाले कवि अथवा गायक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन भी करते थे और उन सिद्धांतों से परिचित भी थे। अन्य गायक, सिद्धांतों से अपरिचित होने के कारण रागों के प्रचलित स्वरूप को ही सही मानते थे, अतएव शृंगार युग में संगीत का एक भिन्न रूप वन गया। यह वदला हुआ रूप निश्चय ही रचयिताओं के अज्ञान के कारण, मूल से वहुत दूर हट गया था और मौलिकता का अवकाश प्राप्त होने के कारण यही मौलिक ग्रंथों का निर्माण करने में सहायक हुआ। ऐसे ही ग्रंथों को हम मौलिक ग्रंथ कह सकते हैं।

परम्परावादी आधारित ग्रंथ

परंपरावादी आधारित ग्रंथों के कवि अथवा संगीतज्ञ भरत के नाट्य-शास्त्र से लेकर शाङ्र्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' तक से प्रभावित जान पड़ते है। उस्तत ने अपनी 'राग-माला' को भरत के ग्रंथ का उद्धरण देते हुए प्रारंभ किया है, यद्यपि यह उद्धरण संदिग्ध है, फिर भी इससे भरत मुनि का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है।

'अथ भरत नाद ग्रंथ की साख्र।
नाद ग्राम स्वरापदा विधि गुणावर्ग लया तालया
आलित्यागमका श्च ताल रचना जोति कला मूर्छना
मुय्यायंग तुरंग राग मरणा देसी चसालंगणा।
गीति स्यापि समस्त सुप्ट सुप ना स्थाना तरंपातुकं।'[1]

भरत के सिद्धांतों से अपरिचित होने के कारण वहुत कम कवियों ने उनका आश्रय लिया है, फिर भी अन्य आचार्यों ने अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। कहीं कहीं भरत मुनि से भी साम्य दिखाई पड़ता है।

श्री कृष्णानंद व्यास देव 'राग-सागर' ने 'राग कल्पद्रुम' में विभिन्न ग्रन्थों से मान्य सिद्धांतों की स्थापना करके अपनी मान्यताएँ रखी हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. संगीत-दर्पण[2] का उद्धरण—

'प्रणम्य शिरसा देवा पितामह महेश्वरी
संगीत शास्त्र सकल सार भागौ: अयोच्यते।
भरतादि मतं सर्वमालोङ्यात्ति प्रयत्नत:
श्रीमता हरि भट्ठेन सज्जनानन्द हेतुना
प्रचुराह्लाद संगीत सारोद्धारोपिधीयते।'

---

१. यह अंश संदिग्ध है। भरत के नाट्य-शास्त्र में ऐसा कोई अंश नहीं है। 'संगीत-रत्नाकर' का ही जान पड़ता है।

२. चतुर दामोदर कृत।

२ और फिर नारद-संहिता[1] से उद्धृत 'नाद' की परिभाषा दी है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद

अथ नादोत्पत्ति

अथ नादस्य चोत्पत्ति वक्ष्ये शास्त्र विवेकत.
धर्मार्थ काम मोक्षाणमिदमेवैकसाधनम् ।'

३ हरिवल्लभ का संगीत दर्पण यद्यपि ब्रज भाषा में लिखा है, परन्तु सिद्धान्त वही है।

'जब निषाद के श्रुतिनि को आनि होत विश्राम
ताको पंडित कहत है होत काकली नाम ।
द्वै श्रुति मध्यम की गहै जब गंधार रस आई
अंतर तब ताको कहत पंडित चित के चाई ।'

भरत के अनुसार—

तत्र द्विश्रुति प्रकर्षणान्निषादवान् काकली सञ्ज्ञोनिषादः,
न षड्ज । द्वाभ्यामन्तरस्वरत्वात् । साधारण प्रतिपद्यते ।
एवं गान्धारा अध्यन्तर स्वरसञ्ज्ञो न मध्यत । तयोरन्तरस्वरत्वात् ।[2]

यद्यपि ढूंढने पर लगभग सभी ग्रंथों के सिद्धान्त इन पुस्तकों में प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु अधिकतर कवियों ने शाङ्र्गदेव के संगीत-रत्नाकर का ही आश्रय लिया है। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।

सर्वप्रथम सात अध्यायों का विभाजन ही रत्नाकर' के अनुसार हुआ है। हरिवल्लभ, उस्तत, राधाकृष्ण, महाराणा प्रतापसिंह जी देव ने क्रमश स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय में ग्रंथों को विभाजित किया है।

नाद का भेद बताते हुए हरिवल्लभ 'संगीत-दर्पण' में कहते हैं—

'ब्रह्मरध्र में प्रान को प्रेरतु पावक आइ ।
पावक प्रेरे तब जु वह उरध पथ को धाइ ।२६।
अनि सूछम धुन करतु सो निकट नाद के होइ ।
बढ्यो धुनि सूछम करें हिऐं धाइ कैं सोइ ।३०।
करे पुष्टि धुन कंठ में सीसहिं मधिम भाइ ।
कृत्रिम धुनि पुनि वदन में तब ही प्रकटन पाइ ।३१।'

'संगीत रत्नाकर' में भी लगभग यही शब्द हैं, केवल भाषा का अंतर है।

---

१. नारदसंहिता—ऋषिवर नारद कृत, भरत का संगीत सिद्धान्त, आचार्य कै. च. देव बृहस्पति ।

२. भरत नाट्यशास्त्र बम्बई संस्करण, अध्याय २८ पृ० ४३७ भरत का संगीत-सिद्धान्त—आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृ० ७ पर उद्धृत ।

ब्रह्मग्रंथि स्थित: सो थ क्रमादर्ध्वपर्येचरन्
नाभिहृतकण्ठमूर्वास्येष्वाविर्भवयति ध्वनिम ।
नादो तिसूक्ष्म: सूक्ष्मश्च पुष्टो पुष्ट श्च कृत्रिम :
इति पंचामिधा धत्ते पंचस्थानस्थित: क्रमात् ।[1]

इसी प्रकार 'राग-रत्नाकर' में कवि राधाकृष्ण ने मन्द्र, मध्य और तार तीन प्रकार की नादों का स्थान क्रमश: हृदय, कंठ और मस्तिष्क से बताया है ।

'मन्द्र हृदय तैं जानिये, मध्य कंठ ते होय ।
उपजै तार कपाल तैं भेद कहे कवि लोय ।'

* * *

व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मन्द्रो मिधीयते
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तर: ।[2]

इसी प्रकार से अन्य सिद्धांतों में श्रुतिभेद, राग वर्णन, ताल वर्णन आदि 'संगीत-रत्नाकर' से अक्षरश: मिलते हैं ।

संगीत-ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ आधार इन संगीत रचनाओं के ऐसे हैं, जो केवल सुने हुए रूप में सुरक्षित रखे गए जान पड़ते हैं । इनकी प्रामाणिकता अलग से संगीत-विषयक खोज का कार्य है । यहीं पर उनका निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा । नाथ और सिद्ध साहित्य में संगीत प्रचलित था । गोरखनाथ स्वयं संगीत के अच्छे ज्ञाता थे, ऐसा इन्हीं संगीत-काव्यों से पता चलता है । अनेक स्थलों पर राग और रागिनियों के विषय में कवि 'गोरख' का नाम लेता है अथवा उन्हें 'गोरख' रचित बतलाता है । एक स्थान पर 'श्री' राग का विचार करते समय सत्रह मिश्रित रागिनियों का वर्णन करके कवि अंत में कहता है :—

'ए रागणी गोरपनाथ कृत है'[3]
इसके पश्चात्,
'केदार सुध इमिन तीनु मिले तो हमीर कहिए ।
ए रागनी गोरपनाथ बनावी छें ।'[4]

मौलिक ग्रंथों में दो विशेषताएँ प्राप्त होती हैं । प्रथमत: प्राचीन सिद्धांतों में ही नवीनता का प्रतिपादन है । और दूसरे, अन्य रागों और रागिनियों के स्वरूप और लक्षणों में नवीनता का समावेश कर दिया गया है ।

---

१. "Sangit Ratnakar", Sharangdeva, edited by Pandit S. Subramanya Sastri, Vol. I, Adhyaya III, p. 62.
२. "Sangit Ratnakar", Sharangdeva, edited by Pandit S. Subramanya Sastri, Vol. I, Adhyaya III, p. ...
३. राग सागर—अज्ञात कवि, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
४. वही ।

उदाहरण के लिए, उस्तत कवि ने मन्द्र, मध्य और तार नादो का प्रसिद्ध स्थान, कण्ठ और मस्तिष्क न मानकर नाभि, हृदय और कण्ठ से प्रसूत क्रमश. घोर, मद्र और तार ध्वनियाँ बताई हैं।[1]

अधिकतर संगीत के सात स्वरों (षड्ज, रिषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धैवत, निषाद) का मूल विभिन्न पशु पक्षियो मे, क्रमश केकी, चातक, छाग, क्रौंच, कोकिल, दादुर और गज मे माना गया है,[2] परन्तु उस्तत ने इन स्वरा का मूल रागा मे माना है। षड्ज का स्थान भैरव म, रिषभ का माल कोष म, गाधार का श्री म, पचम का कोकिल म, धैवत का दीपक मे, निषाद का मेघ मे और मध्यम का सभी रागा म बताया है।[3]

उस्तत के इस मौलिक कथन की व्याख्या आवश्यक है। यो तो पक्षियो से स्वरों का सम्बन्ध जोड़ना भी कवियों ने परम्परा से ही सीखा है, परन्तु यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो इसका कारण यही जान पडता है कि प्रकृति मे रहने के कारण जैसे मनुष्य ने प्रत्येक वस्तु का मूल प्रकृति मे ही खोजा, ऐसे ही स्वरा का मूल भी पशु पक्षियो मे बताया।

श्री एस० एन० रतनजनकर ने पक्षिया के स्वरो से सगीत के स्वरो का साम्य दिखाने का कारण यह बताया है कि प्रारम्भ मे सगीत का प्रत्येक स्वर निर्दिष्ट स्थान पर माना जाता था। कही भी षड्ज और रिषभ का प्रयोग नही होना चाहिए। इन स्वरा की पारस्परिक दूरी बनाने के लिए सगीत शास्त्रियो ने पक्षियों के स्वरो का आश्रय लिया।[4]

ऐसा प्रचलन रहा है कि जब भी मनुष्य को अपने भावो को समझाने की आवश्यकता पडी है तो इसने जड के लिए चेतन से और चेतन के लिए जड से समानता रखने वाले उपमानो को ढूँढ कर स्पष्टीकरण करने की चेष्टा की है। अत पहली वीणा पर स्वरा को निर्धारित करने के लिए उसने पक्षियों के स्वरो से साम्य रखते हुए स्वरो का नामकरण कर

---

१ 'घोर नाभि मद्र हरिदं कठ बसत है तार।'—रागमाला उस्तत, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

२ 'षड्ज सुरहि केकी कहै रिषमहि चातक आनि।
छाग कहै गधार को, मध्यम क्रौंच बखानि।
पञ्चम सुर कोकिल कहै, धैवत दादुर भाई।
सातो गजु बोलै सदा पुनि निषाद या दाइ।'—अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३ रागमाला—उस्तत, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

४ "The ancient musicologists had a standard key note and definite degrees of pitch in mind when they made this statement The calls of the peacock, the ox, the goat etc. referred to as representing the successive degrees of pitch of the Indian musical scale would also lend support to this idea" Aspects of Indian Music published by the Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi-8

दिया, अतः गांभीर्य और मधुरध्वनि के कारण षड्ज, कैकी के मृदुल परन्तु गंभीर स्वर के मूल में खो गया। और इसी प्रकार प्रत्येक स्वर को अपना समान पक्षि स्वर उद्गम के रूप में प्राप्त हो गया।

तीसरा कारण शृंगार युगीन काल की विशेषता ज्ञात प्रदर्शन का मोह, इन कवियों में भी पाया जाता है। तभी स्वरों का न केवल पक्षियों से सम्बन्ध जोड़ा गया है, वरन् उसका विस्तृत परिचय देने में वंश कुल आदि का वर्णन भी किया गया है।

राधाकृष्ण के 'राग-रत्नाकर' में एक एक स्वर की विस्तृत व्याख्या है।

'षड्ज मोर सुर जानिए जन्म सु जंबू द्वीप।
विप्र जाति अरु देव कुल ब्रह्मा देव समीप।
श्वेत वस्त्र कर फरस लै बैठ्यो बैल श्रुति च्यारि।
तीव्रा बहुवि कुमुद्वति मंदा सिद्धि निहारि।'

इसी प्रकार रिषभ, ऋषि कुल का, सुरप्लक्ष द्वीप का निवासी है। इसका स्वर चातक है। क्षत्रिय वर्ण का है। अश्व पर आरूढ़ है। दयावती, रंजनी, रक्तिका, इसकी श्रुतियां हैं और सूर्य इसका देवता है।

उस्तत ने पक्षियों में उद्गम न मानकर स्वरों का मूल रागों में माना है, इसका कारण विशेषतः उनकी वैज्ञानिक रुचि प्रतीत होता है। प्रसिद्ध छः रागों में प्रत्येक स्वर की उत्पत्ति दिखाकर मध्यम को सब में बता दिया है। यद्यपि इस दृष्टि से उस्तत ने मूल छः राग बताए, श्री, मालकोष, भैरव, दीपक, मेघ, और बसंत।[1] ये भी सर्वमान्य नहीं हैं। मूल छः रागों के विषय में कवियों में मत वैभिन्न रहा है। कल्याण मिश्र कृत रागमाला में अन्य छः रागों का उल्लेख है।[2] हरिवल्लभ तथा राधाकृष्ण ने भी छः मूल रागों में किंचित मतान्तर दिखाया है।[3] इसी प्रकार और भी स्थल प्राप्त होते हैं जहां संगीत के सिद्धान्तों में

---

१. यहाँ पर कवि ने बसंत के लिए कोकिल का प्रयोग किया है। कोकिल से बसंत का सम्बन्ध होने के कारण और कोकिल का प्रसिद्ध स्वर पंचम होने के कारण, ऐसी भूल हो गई जान पड़ती है।

२. भैरव शुद्ध हिंडोल वर मालवकोष अनूप।
श्री राग मेघ मल्हार करि नट नारायण भूप।—कल्याणमिश्र कृत रागमाला।

३. 'एक समै पूछन लगी पारवती सुनि देव
राग रागिनी को कहौ मौं सों कुछु बक भेव।
तब सिव लगे कहन कछु बक मुप मुसकाइ
सुनि श्री राग बसंत पुनि भैरव को जुग नाइ।
पंचम बहुर्‍यो जानिऐ मेघ राग रस ग्रेहु।
नट नारायण छठ्यो पुरुषा कृति सुनि लेहु।'
—हरिवल्लभ कृत संगीत दर्पण।

भैरव प्रथम गिनाय मालकोश हिंडोल
कहि दीपक श्री सुप दाय मेघ राग जानहु बहुरि।
—राधाकृष्णकृत राग रत्नाकर।

परिवर्तन कर दिया गया है।

मौलिकता अधिकतर राग और रागिनियों के स्वरूप, लक्षण और परिवार में पाई जाती है, जो तत्कालीन रुचि की परिचायक है।

राग रागिनियों के विभाजन में अधिकतर हनुमन्मत का आधार लिया गया है। रागों के विभाजन के सम्बन्ध में चतुर दामोदर कृत 'संगीत-दर्पण' के अनुसार तीन मत प्रचलित हैं।[1] सोमेश्वर मत, हनुमन्मत और रागार्णव मत। सोमेश्वर मत के अनुसार छ पुरुष राग माने गए हैं। श्री, बसंत, भैरव, पंचम, मेघ और नटनारायण। इनमें से प्रथम पांच की उत्पत्ति शिवजी के पांच मुखों से और छठे राग की उत्पत्ति पार्वती जी के मुख से हुई। श्री राग की शिवजी के सद्योजात मुख से, बसंत की वामदेव मुख से, भैरव की अघोर मुख से, पंचम की तत्पुरुष मुख से, मेघ की ईशान मुख से और नट नारायण की पार्वती जी के मुख से उत्पत्ति मानी गई।[2] इनमें प्रत्येक की छ रागिनियां मानी गई हैं। श्री राग की मालवी, त्रिवेणी, गौडी, केदारी, मधुमाधवी, पहाडी, बसंत की देशी, देवगिरी, वराटी, तोडिका, ललिता, हिंदोली, भैरव की भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुणकरी, बंगाली, बहुली, पंचम की विभास, भूपाली, कर्नाटी, बडहंसा, मालश्री, पटमंजरी, मेघराग की मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी (कैशिकी), गांधारी, हरिश्रृंगारा और नट्टनारायण की कामोदी, कल्याणी, आमेरा नाटिका, सालगनाटी तथा हवीरा रागिनियां हैं।

हनुमन्मत के अनुसार छ पुरुष राग भैरव, कौशिक (कैशिक) हिंदोल, दीपक, श्री मेघ हैं, जिनकी रागिनियां सोमेश्वर मत से भिन्न हैं। भैरव की पांच रागिनियां मध्यमादि, भैरवी, बंगाली, वराटिका और सैंधवी, कौशिक की तोडी, खम्भावती, गौडी, गुणक्री और ककुभा, हिंदोल की वेलावली, रामक्री, देशाख्या, पटमंजरी और ललिता, दीपक की केदारी, कानडा, देसी, कामोदी और नाटिका, श्री राग की बसंती, मालती (मालवी) मालश्री, धनाश्री और असावेरी, मेघ राग की मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी और टक्क पांच-पांच रागिनियां हैं।

रागाब्धि मत के अनुसार भैरव, पंचम, नाट, मल्हार, गौड मालव और देशाख्य छ पुरुष राग हैं। इनकी रागिनियों की निश्चित संख्या नहीं है। किसी की चार रागिनियां तथा किसी की पांच हैं। भैरव की पंच रागिनियां बंगाली गुणकरी, मध्यमादी, वसंता और धनाश्री, पंचम की पांच रागिनियां, ललिता, गुर्जरी, देशी, वराटी और रामकृति, नाट

---

१. संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, पृ० १८५।

२. इस सम्बन्ध में भी कहीं कहीं कवि के अभ्यास और अध्ययन के परिणाम स्वरूप मौलिकता है। जैसे श्री पद्मनन्दन मुनि ने अपनी रागमाला में हनुमत् मत के अनुसार राग विभाजन करने पर भी उत्पत्ति शरीर के ही विभिन्न भागों से बताई है—

'भैरव उत्पन्न वक्तस्य कंठे मालव कोसर।
होये हींडोलस्पन्न दीपक चक्षुमेव च
नाभ्यत श्री राग गुहये मेघ समाश्रित।'

की पांच रागिनियां नट नारायण, पूर्वगांधारसालग, केदार और कर्णाट, मल्हार की चार रागिनियां, मेघ मह्लारिका, मालवकौशिका, पटमंजरी, असावेरी, गौड़मालव की पांच रागिनियां, हिंदोल, त्रवणा, आंधारी, गौड़ी और पडहंसिका, देशाख्य राग की पांच रागिनियां भूपाली, कुडायी, कामोदी, नाटिका और वेलावली हैं।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में अधिकतर हनुमत् मत के अनुसार विभाजन हुआ है,[1] परन्तु थोड़ा वहुत अन्तर फिर भी मिल ही जाता है।[2] ग्रन्थों में बाद के लिखे गए ग्रन्थों के अनुसार भिन्नता भी मिलती है। पुंडरीक विट्ठल कृत 'नर्तन-निर्णय' में छः पुरुष राग, तीस स्त्री रागिनियां और तीस पुत्र राग बताए हैं। इससे प्रभावित कुछ कवियों ने पुत्र और पुत्री वर्णन भी किया है।[3] सागर कवि की रागमाला,[4] हरीचंद की रागमाला,[5] प्रतापसिंह देव का 'राधा गोविन्द संगीत-सार'[6], श्री पद्मनन्दन मुनि की रागमाला[7] आदि कुछ ग्रन्थों में 'नर्तन निर्णय' के प्रभाव के कारण पुत्र वर्णन भी प्राप्त होता है। कहीं कहीं नवीनता का प्रेमी कवि इससे भी आगे बढ़ गया है और छः रागों के आठ पुत्रों और पांच पुत्रियों का परिवार बताया है। भैरव की पांच पुत्रियाँ भैरवी, विलावली, वंगाली, अयटनीकी, बुनगी; आठ पुत्र वंगाल, पंचम,, मध्य, हरष, देसाप, ललित, विलावल और माधो बताए हैं।[8]

कुछ कवियों ने इससे भी अधिक परिवार का विस्तार किया है और मार्या के अतिरिक्त पुत्र और पुत्रवधू तो बताई ही हैं, रागों की सखियों का भी वर्णन किया है।[9] जैसे पूर्ण मिश्र के नादोदधि में उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त श्री राग की सात सखियों का वर्णन है।

---

१. राधाकृष्ण का राग रत्नाकर, हरिवल्लभ का संगीत दर्पण, उस्तत की रागमाला, गिरधर मिश्र की रागमाला, होयदुलास, गंगाराम कृत सभाभूषण।

२. कल्याण मिश्र ने 'रागमाला' में दीपक राग के स्थान पर नट नारायण माना है। रागिनियों के नामों में मौलिकता है। उदाहरणार्थ, भैरव की स्त्री—

'मारू सिंधू भैरवी धनासरी वंगाल।
सुद्ध भैरवी नारी सब गावत गुन गोपाल।'

और प्रत्येक राग के पाँच पुत्र बताए हैं।

३. श्री पद्मनन्दन मुनि ने रागों और रागिनियों का विभाजन हनुमत् मत के अनुसार किया है, परन्तु प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ और आठ-आठ पुत्र बताये हैं।

४. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

५. वही।

६. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, श्री मोती चंद जी खजांची, संग्रहालय, बीकानेर।

७. श्री मोती चंद जी खजांची संग्रहालय।

८. वास्तव में पुत्रियाँ स्त्रियों के स्थान पर ही ली गई हैं। यह वर्णन पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर में प्राप्त रागसागर (पृ० सं० ८४७) में है। लेखक अज्ञात है।

९. संगीत नादोदधि—पूर्ण मिश्र, म्यूजियम, अलवर।

मालसिरी सखि हैं प्रथमा, अब दूजिय जैतगिरी बखानौं।
धन्यसिरि सखि लीजिये जानिये चौथि पथोनसिरी सुभ गनौं।
फूलसिरी पचई सुनि लीजै बीरसिरी छठई सखि मानो।
रूपसिरी सतई सब जानत मोहि मुनी समना मन मानौं।

इससे भी आगे बढ कर श्री मन्मात्वीय वेनी राम ने अपनी राग माला मे स्त्री, पुत्र और पुत्री दोनो बनाए हैं। हिंदोल की पाँच कन्या, सात पुत्र हैं।[1] यह विभाजन कुछ सीमा तक स्वर-साम्य के आधार पर हुआ है, अत वर्गीकरण रागो के लक्षणों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सगीत शास्त्र के ग्रन्थ लिखते समय भी कवियों के समक्ष रागो के स्वर सम्बन्धी लक्षणो की अपेक्षा उनका शृगार और स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता था। इसका प्रमाण सगीत-काव्य मे अधिकतर 'राग मालाओं' का लिखा जाना है।[2] दूसरी और तत्कालीन-शृंगारिक कलाप्रिय और विलासी रुचि के कारण रागो के नवीन, काव्यात्मक तथा चित्रोपम वर्णन किए गए। यह शृ गार वर्णन दामोदर पडित के 'राग-दर्पण' से प्रभावित होकर लिखा हुआ जान पडता है।[3] अधिकतर इन रागो का रूप भी पारम्परिक ही है। भैरव सदैव शिव रूप में अर्थात् भस्म रमाए, जटाधारी, गगा धारण करने वाले योगी के रूप में दिखाई देते हैं।[4] भैरवी अधिकतर भैरव (शिव) की पूजा मे रत, पार्वती के रूप में वर्णित है।[5]

---

१. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग (यह प्रति खंडित है, फिर भी यही महत्त्वपूर्ण है।)

२. रागमालाओं मे केवल शृंगार और स्वरूप का वर्णन होता है।

३. सगीत-दर्पण—दामोदर पडित, प्रकाशक सगीत-कार्यालय, हाथरस।

४. सीस जटानि में गग तरंग त्रलोचन चंद लिलारहिं ऊपर
लाल बिसाल फनी सिर की मनि जोति लसै कछु कुंडलि तूपर।
हर रूप किये कर सूल लिये हरिवल्लभ रीझि बजै डमरूवर।
भूषन नागनि के जनमे धरि भैरव राग बिराजत भू पर।
सगीत दर्पण—हरिवल्लभ।

भैरव रूप जटा जूट सिर नील तन भस्म थान तिलक रेख।
मुद्रा शृंग त्रिसूल धर भैरव राग सुदेश।
रागमाला—कल्याण मिश्र।

पीत जटा जूट सिरि गंग उमगत भाल बिसाल मयक बिराजै।
लोचन तीनि लसै दुग लोचन आनन कानन कुंडल राजै।
अंग बिभूति धरै अहि भूषन सूल लिए करडेरू बाजै।
रूप अनूप सदा शिव मूरति भैरव राग महाछबि छाजै।
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण।

५. गिरि कैलास में बिलास हास यनि बैठी फटिक चौकी पर गिरिजा सी जानी है।
चंदमुखी चपला सं चारु देह दुति दिपै कौल दृग मनि सिव अरचा उठानी है।

मालव कौशिक कोमलांगी कलाओं में भी निपुण है और वीरता भी उसका गुण है।[1] राग हिंडोल काम-केलि में प्रवीण है। रमणियों के साथ झूला झूलता हुआ राग रंग करता है और कला प्रिय है।[2] दीपक राग भी अत्यन्त कामी, केलि-कलाओं में प्रवीण और सुसज्जित है।[3] श्री राग लाल वस्त्रों से शोभित, किशोरावस्था का एक राजकुमार है। बहुत अधिक

इंदीवर दलहू ते दीरघ है देष दृग करि धरि तालवाल मृदु मुसक्यानी है।
जिय करि प्रीति हरिवल्लभ यों सुष जीति ऐसी रस रीति करि भैरवी वषानी है।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

प्रात समय प्यारी उठि उठी स्वेत सारी भारी फैली मुषचंद की उजारी जाति जागनी।

गोरे भुजमूल सिव पूजि कै चढ़ाय फूल दोउ कर ताल बजावे प्रेम पागनी।
आंगी उर लाल कंज लोचन विसाल वाल फटिक सिंहासन पै बैठी बड़भागनी।
गायतु कैलास के विलास में हुलास भरी भैरवी वषानी यह भैरव की रागनी।
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण।

सरवर तट भय देव को मंडए फिटक अनूप।
कुवलय संयुत कामिनी पूजा करत सरूप।
पुनि वर्णन ता सुनो गीत ताल कंसील।
गौरी नाद लिहि लीन मन नाद भैरवां वाल।

१. कंचन तें कमनीय कलेवर काम कलानि मैं कोविद मानौ।
मातौ महारस वीरहि मैं नित राते रुचै वसनौ जग जानौ।
वैरिनि मारि कपाल की माल धरी वहु वीरनि है सन मानौ।
यौं हरि वल्लभ रूप सु मालव कौशिक राग वखानौ।
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ।

२. झूलत झूला झुलावति है रमनी कमनी सुष रूप लह्यो है।
काम कुतूहल केलि करै अति कंचन कै रंग चीर गह्यो है।
लौनी लसै दुति देह की यो लषि गोत कपोत को लाजि रह्यो है।
वीना लए कर में रस रीत सो वल्लभ रागु हिंडोल कह्यो है।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

३. केलि कला में प्रवीन महा अंग अंग अनंग प्रशासि कियो है।
भामिनि मौन अंधेरे गई रति कौ अति आनंद मानि लियो है।
भूषन कै मनि की उजियारी तहां प्रगट्यो रवि मानौ उयो है।
देखि तवै तिय की हरि वल्लभ दीपक की सकुचानो हियो है।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

सुन्दर है और काम-कला में निपुण है।[1] मेघ राग नील वर्ण का पीत वस्त्र धारण किए मन्द मन्द मुस्कुराता रहता है। अत्यन्त छविवान, युवा और वर्षा का देने वाला है।[2] इसी प्रकार सभी रागिनियों का स्वरूप निश्चित है। राग और रागिनी होने के नाते 'राग' अर्थात् प्रेम का अंश और काम का तत्व प्रत्येक में मिलता है। सभी इतने सुन्दर हैं कि दर्शकों के हृदय में राग उत्पन्न कर सकें। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों से युक्त केवल कुछ राग अपवाद स्वरूप हैं।

जैसे देशाख वीर रस से पूर्ण है,[3] केदारा योगी है, समाधि लगाए बैठा रहता है।[4] आसावरी का भी शृंगार योगिनी के समान है। सर्प शरीर में लपटे, मलयगिरि में वास करने वाली है।[5] भूपाली प्रिय के वियोग में सखियों के मध्य बैठी है शान्त रस में डूबी है (यद्यपि भूपाली को शांत-रस से युक्त कहना उचित नहीं, वह विप्रलंभ शृंगार से भीगी हुई

---

१ 'वैस किसोर मनोहर मूरति मैनहु तें जनु को मन मोहें।
केलि कला में प्रवीण नवीन रसाल की मंजरि श्रौन में सोहें।
सेवे सदा षड्जादिक सातौ अनग जगं जित ही तित जोहें।
लाल धरे पट भूपति सौ हरिवल्लभ राग सिरी सम को हैं।'
संगीत-दर्पण- हरिवल्लभ।

२. 'नील सरोज लौ देह दिये कटि पै पट पीत विराजत हैं।
अति उज्जवल चंद उज्यारिहूं तें उघरैन महा छवि छाजत हैं।
तन जोबन जोति लसै हरि वल्लभ मंद हसैं मुख साजनु हैं।
जलु जाचतु चातक जाचक लौं हैं मेघ सु राग यों गाजत हैं।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

३ अग कपूर हिरै कमनीय सरोजनि हू तें विराजै विलोचन।
हरषे तन रोम उठ्यो रस वीर में धीर बडो कछु नेकु फोचन।
दीरघ सोह सहै भुज दंड प्रचंड महा चित को अति रोचन।
यो हरिवल्लभ राग देसाख सु मूरति मल्लहि को दुख मोचन।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

४. सीस जटा बिच गंग पलक्कत भाल भलक्कत चंद उजारी।
शुद्ध भयो तपि कुन्दन रग भुजग लसै अति कारो।
आसन जोग समाधि लगी दृग मूदि कै ध्यान धरे मन मारो।
तारस रूप अनूप बन्यो सब के मन भावन राग केदारो।
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण।

५ मलयागिर के बन में बनिता हरिवल्लभ आनंद भार भरी।
हार सुढार गरें गज मोतिन मोर पर्यौवन सारी करी।
चंदन के दुम तें गहि नागनि लै कर में गजरा पुय री।
रिजु देह की दीपति ही सौं असावरी दीपति स्याम घटा की हरी।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

है)[१] नट, वीर रस में छका घोड़े पर चढ़ा श्रोनित की धारों में रंगा है।[२]

इन राग-रागिनियों का स्वरूप वर्णन अधिकांशतः उनकी विशिष्ट वेश भूषा और उनमें निहित रस को लेकर ही हुआ है, परन्तु अपवाद स्वरूप ऐसा भी वर्णन मिलता है, जहाँ कवि के मस्तिष्क में केवल रस रह गया है और उस रस से सम्बन्धित काव्य-रचना की गई है। रागिनी का नाम मात्र वहाँ रह गया है। उदाहरण के लिए—

'राग ललिता—
प्रीतम चालीया हे सखी ललिता करे विलाप।
हिरदा ऊपर होडतो मो विरहण को हार।'[३]

रागों के लक्षण बताने में भी कवियों ने अधिकतर परम्परा का ही आश्रय लिया है, जो अन्तर स्वर निर्देश में मिलता है, उसके दो कारण हैं। एक तो रागों का प्रचलित रूप विदेशी प्रभाव (अरबी फारसी और ईरानी) के कारण भिन्न हो गया था, जिससे प्राचीन सिद्धान्तों से गायक दूर हो गए थे। दूसरा कारण संगीत काव्यकारों की अनभिज्ञता थी। इसके अतिरिक्त लिपिकारों की भूल के कारण लक्षण अस्पष्ट हो गए। शुद्ध और विकृत स्वरों का निर्देश न होना लिपिकारों के अज्ञान के परिणाम स्वरूप है। उदाहरण के लिए भैरव का स्वरों में लक्षण—

'धनि सनि रिसध नि स ध प म ध म
नि स म ग रे स। स रि म प म ध रि प
म ग रि रि स तस्य रागस्य।'[४]

उपर्युक्त उदाहरण में शुद्ध और विकृत स्वरों का प्रयोग स्पष्ट नहीं है। फिर भी सर्वांग निरूपक ग्रंथ संगीत-शास्त्र के लक्षणों के लिए भी बहुत उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं। इनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर तत्कालीन रागों का स्वरूप भी स्पष्ट हो सकता है। सर्वांग निरूपक ग्रंथकारों ने प्रत्येक राग और रागिनी के लक्षण और स्वरूप बताने के पश्चात् उसका स्वरालाप भी दिया है। यह स्वरालाप संक्षिप्त है। इन स्वरों से राग विशेष में प्रयुक्त स्वरों का परिचय मिलता है।

हिंडोल राग में षड्ज ग्रह है। स्वर सग म ध नि का प्रयोग होता है। औडव जाति की राग है।[५]

---

१. भूपाली विरहन परी केसरि धोरे चीर।
भयो विरह के ज्वाल सों पियरो सकल सरीर।
—हिपहूलाल रागमाला।

२. 'सोने तैं लोने बने अंग तुरंग चढ्यो रन रंग में डोलै।
लाल गुलाल सो लोहू लग्यो तन वीर महा रस मांहि कलोलै।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

३. राग माला—सागर कवि—श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

४. संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

श्री राग सम्पूर्ण जाति की बताई गई है। इसमें स रि ग म प ध नी स सप्त स्वरों का प्रयोग होता है। षड्ज ग्रह है। शिशिर ऋतु में दिवस के समय गाया जाता है।[1]

राग देसी का हरिवल्लभ ने जो लक्षण बताया है, वह महत्त्वपूर्ण है और आज के प्रचलित रूप से भिन्न है। उन्होंने बताया है कि तीन रिषभ, देसी में लगने चाहिएँ।

'तीन ऋषभ राजै, रिषभ विकृत होतु है आइ।
जाम जुगल परयो कहे देसी राग बनाई।'

स्वरों में इसकी पहिचान है—

'स ग ध प ग रि स। स ग ध प ध म ध म स ग।'[2]

स्वरों में रिषभ का केवल एक बार प्रयोग है। विकृत अर्थात् कोमल रिषभ का प्रयोग होता है। परन्तु परिभाषा के अनुसार 'तीन रिषभ राजे' का अर्थ संदिग्ध है। सम्भव है रिषभ का तीन विभिन्न श्रुतियों पर गायन प्रचलित हो।

केदार के लक्षणानुसार, निषाद स्वर ही न्यास, ग्रह और अंश माना गया है। ओडव जाति का राग है, रे और ध स्वर वर्जित हैं।

इसकी स्वरों में पहचान है—
'ग म प म प प ग म ग रि स नि स नि रि स
ग म प स स नि ध प ग प ग म।'

यह लक्षण आज के केदारा के लक्षण से भिन्न है। अतएव तत्कालीन रागों के प्रचलित स्वरूप से परिचित होने के लिए उन ग्रंथों का अध्ययन उपयोगी होगा।

संगीत काव्य का शास्त्रीय अध्ययन करते समय हम संगीत के तत्कालीन परिवर्तित स्वरूप पर एक दिन विहंगम दृष्टि डालनी आवश्यक होगी। विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय संगीत प्राचीन सिद्धान्तों से दूर हट चुका था।

भारतीय संगीत का सैद्धान्तिक स्वरूप अपने मूल रूप में तेरहवीं शताब्दी तक चला आया। दसवीं शताब्दी में गजनी और गौरी बादशाहों के आक्रमण के समय यह अपने चरमोत्कर्ष पर था। गजनी और गौरी बादशाहों के समय भी तेरहवीं शताब्दी तक संगीत उसी रूप में दक्षिणी भारत में सुरक्षित था।[3] स० १३६६ में मलिक काफूर ने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त करके दक्षिण से संगीतज्ञों को बरबस उत्तर में लाना चाहा। तभी भारतीय संगीतज्ञ अपने राग-स्वरूप संगीत को विदेशियों के हाथ छिनते देख कर सतर्क हो गए और मूल सिद्धान्तों को छिपाने की चेष्टा करते रहे। उत्तर में तुगलक राज्य में अमीर खुसरो ने ईरानी और भारतीय संगीत को मिश्रित करना चाहा। इसी समय से उत्तर-भारतीय संगीत का स्वरूप भिन्न हो गया और उसमें ईरानी प्रभाव से नवीनताएँ भी आ गई।

---

१. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत-दर्पण —हरिवल्लभ—पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
३ Evolution of Indian Music Sumati Mutatkar. Aspects of Indian Music Government of India Publication Ministry of Information and Broadcasting, Delhi—8

अभी तक जो गीत संस्कृत, व्रज अथवा अवधी भाषा में गाए जाते थे, उनको ज्यों का त्यों गाने में विदेशियों की कठिनाई होती थी, अतः भाषा में विदेशी शब्दों का समावेश हुआ। ईरानी संगीत के अन्दाज़ पर भारतीय रागों में तराना, कौल, नकशोगुल आदि बनाए गए।[१]

नवीन रागों का जैसे गारा, सरपरदा, ज़ीलफ़ का आविष्कार किया।[२] इसके पश्चात् उत्तर भारतीय संगीत विदेशियों के राज्य में ही पनपा, अतः कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन निरंतर होते रहे। ऐसा कहा जाता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में मानसिंह ने ध्रुपद का अविष्कार किया, परन्तु वास्तव में ध्रुवपद का अभी तक मंदिरों में गाया जाने वाला संयमित और शास्त्रीय स्वरूप था जिसका एक और भेद हो गया और दरबारी ध्रुपद का नवीन रूप सम्मुख आया।[३] दरबारी ध्रुपद के शब्दों में तथा गायन शैली में चंचलता आ गई। यह सोलहवीं शताब्दी की देने थी।

तोडी में कानड़ा, तोड़ी और मल्हार में कुछ विशेष स्वरों के लगा देने से नवीन रागों का निर्माण हो गया। इसी प्रकार दरबारी कानड़ा, मियाँ की टोडी, मियाँ की मल्हार तथा मियाँ की सारंग आदि नवीन रागों का समावेश हो गया। रागों को मिश्रित करके गाने में माधुर्य का आ जाना स्वाभाविक था। इस मधुर रूप से प्रसन्न होकर आश्रयदाताओं ने गायक को अमरत्व प्रदान करने के लिए, रागों के नामों में विशेषता जोड़ कर नवीन राग बना दिया और इस प्रकार गायक को अमरत्व प्राप्त हो गया। राग कान्हरा जिसे कर्नाटकी कहते थे, अकबर को इतना प्रिय था कि उसका नाम उसने दरबारी रख दिया। मियाँ शब्द तानसैन के लिए प्रयुक्त हुआ है और ये राग तानसैन के नाम से प्रसिद्ध हैं।[४]

ईरानी, अरबी और फारसी प्रभावों के कारण संगीत का स्वरूप परिवर्तित हो ही चुका था, परिणाम यह हुआ कि शृंगार युगीन संगीत के शास्त्रीय और क्रियात्मक रूप में अन्तर आ गया।[५]

पांडित्य प्रदर्शन के लिये कुछ संगीताचार्य संगीत शास्त्र पर रचनाएँ अवश्य करते थे, (जैसा कि पहले सर्वांग निरूपक ग्रन्थों में दिखाया जा चुका है) परन्तु शास्त्रीय नियमों से बहुत से गायक तो परिचित ही नहीं थे और जो परिचित भी थे, वे इन नियमों की दुरूहता को समझ कर (गायक और श्रोता दोनों की दृष्टि से) उनका पालन करना व्यर्थ

---

१. मारिफुन्नगमात—नवाव जली—अनुवादक, वि० ना० भट्ट।
२. वही।
३. Aspects of Indian Music. Government of India Publication. Ministry of Information and Broadcasting, Delhi—8, p 34
४. मारिफुन्नगमात—नवाव अली, अनुवादक—वि० ना० भट्ट।
५. "With the introduction, assimilation, and adjustment of these new artistic elements a gulf was created between the theory and practice of music." Aspects of Indian Music. The Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi—8, p. 35.

समझते थे, अतएव गुरु-शिष्य परम्परा मे जो संगीत शिक्षा दी जाती थी, उनमे इन नियमो को जानने वाले नगण्य थे। उदाहरण के लिए, यद्यपि संगीत काव्यो मे 'प्रान, अपान, व्यान, उदान, समान' वायु का स्थान शरीर के भिन्न स्थानो मे बताया गया है, परन्तु उनकी निर्दिष्ट स्थानो पर किस प्रकार साधना की जाय, इससे संगीतज्ञ अपरिचित थे।[1]

इसी प्रकार यद्यपि हर स्थान पर तीन ग्राम (षड्ज, मध्यम और गान्धार) और बाईस श्रुतियो[2] आदि की लिखित रूप मे विस्तृत व्याख्या प्राप्त है, फिर भी क्रियात्मक रूप मे केवल षड्ज ग्राम का प्रचार था और बाईस श्रुतियो मे से केवल सप्त स्वर षड्जा, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद प्रचलित थे।

'सातो स्वर जे होत है श्रुति वे तिन के नाम।
षड्ज ऋषभ, गांधार अरु मध्यम अति अभिराम।
पंचम धैवत और पुन कहत निषादहि लोइ।
तिनकी संज्ञा दूसरी सरि ग म ध नी होइ।'

तात्पर्य यह कि संगीत शास्त्र का लिखित और क्रियात्मक रूप एक दूसरे से भिन्न हो गया था। दूसरे शब्दो मे लिखित रूप मे शास्त्र प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार जीवित था, परन्तु क्रियात्मक रूप मे संगीतज्ञो ने उन नियमो को हटा दिया था, जिन्हे वे दुरूह समझते

१. "प्रान, अपान रु व्यान पुनि कहै उदान समान।
नाग कूर्म अरु ककिल पुनि देव दत्त धनिमान।
बहुरि धनंजय ये दसो इनमे मुख्ये प्रान।
मुख नासा नाभी हिए रहैं कहे सज्ञान।
कटि जंघा अरु उदर मे गुगुदि अरु अडनि माह।
वायु अपान रहै सदा ठौर ठौर यह नाहि।
नैन कान अरु गुल्फ पुनि यह स्थानहि को ठांउ।
सब सरीर मे रहति है जाहि समानो नांउ।
कर चरनन की सधि मैं कहत उदान बनाइ।
नागादिक पांचो कहै सप्त धातु सम भाई।"
संगीत दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

२. "रूप मात्रक श्रवन को तू श्रुति करि कै जानि।
ता श्रुत कै पुनि होतु है भेद बीस द्वै मानि।
तीव्रा औ कुमुद्वती मंदा बहुर्यो देखि।
चौथी छदोवति बहुरि षड्ज सुरहि मैं लेखि।
दयावती अरु रंजनी रतिका बहुर्यो जानि।
ये तीन्यो श्रुति कहत हैं रिषभ सुरहि मैं मानि।
रौद्रा अरु क्रोधा बहुरि येऊ दोऊ भाइ।
होतु जु है गंधार मैं कोविद कहत बनाई।"
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

१. इसी प्रकार बाईसों श्रुतियों का निर्देश है।

थे। सुविधानुसार गायन प्रणाली में भी परिवर्तन कर लिया था। मनोरंजन के लिए रागों के स्वरूप में भी अन्तर आ गया था। रंजक तत्त्व की वृद्धि करने के लिए रागों का परस्पर मिश्रण करके भी गाया जाता था, जिनसे एक ओर तो नवीन रागों की सृष्टि हुई और दूसरी ओर स्वरों को शुद्ध बनाए रखने का प्रयास समाप्त हो गया। लगभग सभी राग-मालाओं में इस प्रकार के मिश्रित रागों की सूची सी दी है।

इस प्रकार इस युग में संकर रागों का प्रादुर्भाव हुआ। अभी तक रागों का विभाजन तीन प्रकार से किया जाता था। शुद्ध, छायालग और संकीर्ण।[1] शुद्ध राग वे हैं, जिनमें नियमानुसार स्वरों का शुद्ध स्वरूप बताया जाए।

'सास्त्र रीति सौ मनु हरै राग सुद्ध सो होइ।'[2]

छायालग वे राग हैं, जिनमें किसी राग की छाया पड़ती प्रतीत हो।

'जुगल सुद्ध छाया मिले छायालगि तूं जोइ।'[3]

संकीर्ण उन रागों को कहा है, जिनमें शुद्ध और छायालग दोनों ही रूप मिलें।

'सुद्ध रु छायालगि मिले संकीरन है होत
सोत सुनत ही करत है जन मन सदा उदोत।'[4]

इस विभाजन के अनुसार यद्यपि छायालग और संकीर्ण रागों में भी मिश्रण है, परन्तु यह मिश्रण भी विशेष नियमों में बद्ध था, अतः गायकों का क्षेत्र सीमित था। अब चमत्कारिक रुचि के कारण लगभग सभी रागों का परस्पर मिश्रण करके गाया जाने लगा, जो श्रोताओं के हृदय में कौतूहल की सृष्टि करने में सहायक होता था, अतः 'गान-कुतूहल' के नाम से प्रसिद्ध है।

'गान-कुतूहल' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि जहाँ सभी रागों के रूप आकर मिल जाएँ, वहाँ स्वर-भेद से जो अनेक स्वरूप बन जाते हैं, वही 'गान-कुतूहल' है।

जहाँ सारंग और गौरी के सभी अंग मिल जाएँ, वहाँ गौड़ सारंग हो जाएगा।

'मिले सारंग में गौरी के सब अंग।
दोऊ इक आलाप तैं होत गौड़ सारंग।'[5]

बनाश्री और पूरवी, जब शुद्ध नट में आकर मिलें तो भीम पलासी हो जाती हैं।

'बनासरी अरु पूरवी मिले सुद्ध नट आनि

---

१. 'अब मंतग के मतहि ले रागहि त्रिविधि बषानि
सुद्ध और छायालगं पुनि संकीरन मानि।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. वही।

३. वही।

४. वही।

५. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण—पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

इक सुर करि गाइये भीम पलासी जांनि ।"

इसी प्रकार किन्ही दो अथवा तीन रागों को मिला कर नवीन रागा की सृष्टि हुई। इतना ही नहीं, कला का प्रेमी गायक इसमे भी भेद प्रभेद बनाता चला गया। दो रागा का, तीन रागो का, चार रागो का मिश्रण होता चला गया। इस प्रकार विभिन्न रागिनियो को मिलाकर गाने मे गायन कला की दक्षता और रागा के पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा थी। इसके परिणाम स्वरूप गौरी, मारू और जैतश्री को मिलकर धनाश्री गाई गइ,[२] देसी, टोडी और ललित को मिलाकर देसकार बनाई गई,[३] आसावरी, पूरवी, भैरव और देव गधार, चार रागा का समिश्रण करके 'चोराष्टका' गायी गई।[४] लेकद्रन मधुमाध्वी, विलावल, सकराभरन मे मिला देने पर नटनारायण बना दी गई।

रागो के मिश्रण से ही सगीताचार्यों की सन्तुष्टि नहीं हुई, अतएव कुछ रागा के भेद भी किए, जिनसे सगीत शास्त्र के रागाध्याय का नवीन रूप सम्मुख आया।

कानडा के पाँच प्रकार के भेद, शुद्ध कानडा, वागश्वरी कानडा, अडाना, सहाना, मगलाष्टक अथवा पूरिया किए गए।[६] गौरी के पाँच भेद, पहाडी, त्रिवन, पूरवी, बहहम, फरोदस्त हुए।[७] कामोद के पाँच भेद कामोद, शुद्ध कामोद, कल्याण कामोद, सामत कामोद,

---

१ राग रत्नाकर, राधाकृष्ण पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर, सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी

२. 'गौरी मारु जैतासिरी यहै धनासिरि धन्य।' सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

३. 'देसी टोडी ललित मिलि देसकार परिमान।' सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

४. सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

५ वही।

६ 'प्रथम कहत हैं गाइ कैं सुद्ध कानरो एक।
भेद चारि कैं गाइये ताको सुनहु विवेक।
बाहु कानरो धनासिरी दोऊ मिलि अभिराम।
एकै सुर करि गाइये वागेसुरी सुनाम।
मिलैं मलारहि कानरो तहां अडानो होई।
फरोदस्त अरु कानरो कहत सहानो सोई।
जैतसिरी अरु कानरो दोऊ सुर सम भाग
मगल अष्टक सो कहयो यहै पूरिया राग'
सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जयपुर।

७ यद्यपि ये पांचो अलग पाँच रागिनियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, पर ग्रन्थकार ने विभिन्न रागों के मिश्रण के साथ गौरी को गाने पर इन रागों का निर्माण होना बताया है।—सगीत दर्पण, हरिवल्लभ—पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

तिलक कामोद किए गए।[1] इसी प्रकार अन्य रागों में भी भेद मिलते हैं। कहीं पर भेद न कहकर रागिनी की सपी कह कर कवि ने विभिन्न रूप बताए हैं। पूर्ण मिश्र कविरागी ने अपने सगीत-नादोदधि में श्री राग की सखियों का वर्णन किया है। मालश्री, जैतगिरि, वन्यश्री (वनाश्री), पघोतश्री, फूलश्री, वीर श्री, तथा रूप श्री, सात सखियां हैं।

मालसिर सपि है प्रथमा अव दूजिय जैतसिरी वपानी।
वन्य सिरी सपि तीजिये जानिए चौथि पघौत सिरी सुभ गनो।
फूलसिरी पचई सुनि लीजिए वीर सिरी छठई सखि मानो।
रूप सिरी सतई सव जानत, मोहि मुनी समता मन मानों।[2]

फ़ारसी संस्कृति के सम्मिश्रण और प्रभाव के कारण भारतीय संगीत में एक ओर तो रागों का नवीन रूप सम्मुख आया दूसरी ओर संगीत शैलियों में परिवर्तन और परिवर्द्धन हुआ।

गायन-शैली में अभी तक गीन के शब्दों को महत्त्व दिया जाता था, जब शब्दों के विस्तार क्रिया पर वल दिया जाने लगा। इसका कारण यह भी था कि गीतों के शब्द संस्कृत भाषा के होते थे, जिन्हें गायक भली भाँति समझ नहीं सकता था,[3] अतः राग विशेष के स्वरों में एक ही अक्षर अथवा शब्द को भिन्न भिन्न प्रकार से गाकर दिखाने पर अपने कौशल का प्रदर्शन कर सकता था और अपने अज्ञान को बड़ी चतुरता से छिपा लेता था। इसी परिस्थिति-वश गायन-शैलियों में ख्याल का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें एक ही गीत की तीन लयों (विलम्बित, मध्य और द्रुत) में गाया जाता था। ख्याल गायकी में क्रमशः विलम्बित और द्रुत लय में स्वरों के विशिष्ट आरोहण-अवरोहण का प्रवेश हुआ, जिससे स्वर-आलाप, वोल-आलाप, तान, वोल-तान, मुरकी और मींड का महत्त्व गीतों के शब्दों से अधिक बढ़ गया। एक ही पंक्ति को कलात्मक ढंग से स्वरों के काल्पनिक विस्तार के साथ गाया जा सकता था। ख्याल का अर्थ ही है कल्पना, अतः यह शैली इस वातावरण के बड़ी अनुकूल थी।[4] इसके अतिरिक्त ठुमरी, तराना, टप्पा, चाकर, होली आदि शैलियों का विकास हुआ, जिसमें शास्त्रीय पक्ष से अधिक कलापक्ष प्रवल था।

ठुमरी में गीत महत्त्व रखता है। अधिकतर शृंगार रस और भावों को लेकर ठुमरी

---

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत-नादोदधि, पूर्ण मिश्र, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
३. मारिफुन्नगमात, नवावअली, अनुवादक—वि० ना० भट्ट।
४. "Khayal literally means imagination and the from had a much more frail structure than the 'dhrupad' its massive and sublime predecessor. The khayal admitted of a great deal of extempore tonal elaboration within a particular composition." Evolution of Indian Music. Sumati Mutatkar. Aspects of Indian Music. Tbe Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi-8.

गाई जाती है।[1] इसीलिए कृष्ण और राधा को लेकर अधिकतर ठुमरियाँ बनाई गईं। इसकी ताल की गति चलती हुई होती है। गायक श्रोता को प्रभावित करने के लिए भावो के अनुरूप मुखाकृति पर भी अभिनयात्मक अनुभाव लाता जाता है। शृंगारिक शब्दावली और गाने के ढग के कारण मुख्यतया ठुमरी स्त्रियो म प्रचलित हुई। स्वाभाविक रूप से ऐसी रचनाएँ विलासी राजा, पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो के मुख से सुनना चाहते थे और तभी कालान्तर में यह शैली विशेष प्रकार की स्त्रियों म ही प्रचलित होकर रह गई जो वेश्या, गनिका, पातुर, तथा नर्तकी आदि कहलाती थी। जो पुरुष ठुमरी गाते थे, वे भी स्त्रैण कहलाते थे।

'टप्पा' पजाबी लोक गीतों मे प्रसिद्ध है, जिसका स्वरूप पजाब के ऊँट हाँकने वालो के गानो के समान होता है। गुलाम नबी ने इसे शास्त्रीयता मे बाँध कर 'टप्पे' का रूप ही बदल दिया।[2] इसमे छोटी छोटी ताना को अलकारो के साथ गाया जाता है। एक ही स्वर अथवा निकट के दो एक स्वरो को लेकर विशेष प्रकार से कठ म कपन उत्पन्न करके गाया जाता है। इसमें शब्दो से अधिक उनके विस्तार पर बल दिया जाता है। यह अरबी और फारसी गायन शैली से प्रभावित है। अत इसमे अधिकतर अरबी और फारसी के शब्दो का प्रयोग होता है। इसकी गान-शैली मे चचलता ही प्रधानतया पाई जाती है। मानसिंह का बनाया एक 'टप्पा' यहाँ उद्धृत है—

'टपा सवरा जलद तिताला—
जोरा जोरी त्याइस घुंम घुंमा ले
लहगावाली नू। स्थायी
क्या खूब लचके कमर से रसी मैंडी कीनि चित चोरी मा।'[3]

अथवा 'ईमन टपा
यारी तेरे ननु लगदा मेरे दलवान।
नजदास रूप चलना तेरा जोर हो आए

---

१. 'मालनिया मीठी मीठी री अनारे मेंह को देती जा। अस्ताई।
तोरे पास हैं पके पके तरबुजवा और अछे अछे अथवा ताके मोल लेती जा।
बट पारो तेरो मोहना री मोरो गांव लूटे मा।
मोरे पास अछे अछे साल दुसाले कर भर दीनें तौहूँ गंल नाहि छुटे मा।'
ध्रुपद और ख्याल—महाराजा मानसिंह, मुनि कांति सागर सग्रह, उदयपुर।

२. "A regional form like the punjab camel driver's song gave rise to the supple Tappa through the creative imagination of a gifted musician named Ghulam Nabi who later came to be known as Shori Mian." Aspect of Indian Music, The Publication Division, Government of India, p. 35.

३. ध्रुपद और ख्याल—'मानसिंह 'रसराज', मुनि कांति सागर सग्रह, उदयपुर।

लगी कछु दलवान ।"[1]

तराना केवल चामत्कारिक गायन शैली है। इसमें ताना, री, आदि मृदंग तबले आदि के बोलों को तोड़ तोड़ कर द्रुत लय में गाया जाता है, जिसमें द्रुम, दीम आदि शब्दों को जल्दी जल्दी कहने में भी चातुर्य अपेक्षित है। इन्हीं अक्षरों में आलाप और तान ली जाती है। यह विभिन्न रागों में गाया जाता है। प्रत्येक गायक अपने पूर्ण ज्ञान का परिचय देने के लिए 'खयाल' तीनों लयों में गाने के पश्चात् उसी राग में तराना भी गाता है। कभी कभी, छोटे ख्याल के शब्दों को ही ठुमरी में गा देता है।[2] तराने के शब्दों का, शृंगार युगीन साहित्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु तराने की शब्दावली पर विचार करने के उपरान्त यह पता चलता है कि इसका निर्माता आलंकारिक शैली में विशेष रुचि रखता है, विशेष रूप से छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास का प्रयोग तराने को सुन्दर बनाने में सहायक होता है।

'राग केदारा—एक ताली ताले
हई या रे तुम तन दे रे ना।
द द दाना ओ दा ना नी द द अल ली अ ल।
ली नी दी तर थ र र ता नु दी ल्ह खनी।
द द द दी त्र्में द द द दी त्र्में ता द द व १
म म अली या अली म अलंकार ग द फनी मानी।"[3]

जो जितना ही तैयार तराना गा सकता है, वह उतना ही ऊंचा गायक समझा जाता है।

उपर्युक्त गायन-शैलियों में किसी न किसी शास्त्रीय नियम का पालन आवश्यक होता है, अतः इनको शास्त्रीय शैलियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। व्यावहारिक संगीत में भजन, कीर्त्तन, होली, मांड रास-गीत, तथा दादरा प्रधान रूप से रखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त गौण रूप में और भी शैलियाँ प्रचलित थीं।

इन गीतों में शब्दों का महत्त्व बहुत अधिक था। कृष्ण राधा आलम्बन के रूप मे अभी काव्य में प्रचलित थे, अतः प्राप्त साहित्य में कृष्ण और राधा को लेकर बनाए गए पद इन शैलियों में प्रचारित थे।

कीर्त्तन और भजन की शैली भक्ति-कालीन परम्परा के अनुसार ही थी। यदि कहा जाए कि इस काल में शब्दों में शृंगारिकता अधिक आ गई थी, तो यह भी बहुत उचित न होगा, क्योंकि कुछ भक्त कवियों की रचनाओं में भी अश्लीलता की सीमा तक, लौकिक

---

१. राग-संग्रह, गुटका नं० ६२६२, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. खयाल से ठुमरी में बदलने के लिए केवल ताल का परिवर्तन होता है। खयाल यदि तीन ताल में गाया जा रहा है, तो तीन ताल सोलह मात्रा का होता है और ठुमरी की ताल भी सोलह मात्राओं की होती है, केवल लय में अन्तर होता है।
३. राग-संग्रह-गुटका नं० ६२६२, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

शृंगार मिलता है, भले ही उसे अलौकिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाता रहा हो। यहाँ तक कि सूरदास के काव्य में भी कुछ पद शृंगारिक भावनाओं से पूर्ण हैं। भक्ति युगीन तथा शृंगार-युगीन कीर्तनों और भजनों में केवल इतना ही अन्तर है कि भक्त कवि शान्त रस में मग्न होकर गाते थे तथा संगीतज्ञ कवि शृंगार रस में लीन होकर गायन करता था। शृंगार युगीन काव्य में सर्वत्र शृंगार से युक्त प्रेम और माधुर्य भक्ति को लेकर रचनाएँ मिलती हैं। इसीलिए माधुर्य का जितना सुन्दर स्वरूप यहाँ मिलता है, उतना अन्यत्र मिलना कठिन है।

'राग सोरठ
तैं तो चितवनि में मन मोह्यो
है रंगीलो छैल भवर रिझवार।
तू तो महामदन मनुहारी है छबीली नवजीवन सुकुँवार।

दोहा— हूवैं अधीर चितवन फिरै मृदु बोलनि की आस।
तो देखें बिन भावतो आतुर तुव भुप प्यास।
लीनो मानो मान गढ़ टूट लागी सुप रास
प्रान प्रिया सग विलस सुप नट नाचलि पिय पास।
रट लागी नद लाल कै तू हठ ठान्यो आज
नटा नटी क्यों करत है चलिये नट सुप साज।
नगधर नटहि सुहावनो तुव नट लीनी बान।
हट तजि तुव बिन नट भजो यह कहा लीनो मान।''[1]

यह अवश्य है कि अन्य शृंगार-युगीन रचनाओं की भाँति इस काव्य में भी भक्ति से अधिक लौकिकता प्राप्त होती है। कहीं कहीं साधारण नायक-नायिका का ही वर्णन जान पड़ता है।

'राग धूरिया मल्हार
रसिया रस रूप सुभायो सुन्दर सरस सुहाये।
झूलत हिंडोरे सघन कुंज में अति आतुर दरसायो।
अलक माल अरुझी बेसर में पीताबर फहरत मन भायो।
राग मलारहिं गावत सुन्दर सरस रसीली तान सुनायो।
नगधर प्रीत अरुझे प्यारी सों क्यो सुरझे सुरझायो।''[2]

इनके गाने का ढंग वही होता था, जो भक्त कवियों में प्रसिद्ध था, जिसका आंशिक

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह; उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर तथा शोध-संस्थान, विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर।
२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर संग्रहालय, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर तथा शोध-संस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर।

रूप आज भी प्राचीन मंदिरों में देखा जा सकता है।[1] राग विशेष में बाँधने का कारण यही जान पड़ता है कि किसी पद अथवा भजन को जिस समय के लिए बनाया गया, उसी के अनुकूल राग में उसे बाँध दिया गया, उदाहरणार्थ, श्रावण मास में झूला झूलने के लिए बनाए गए गीत को उपयुक्त राग मल्हार में गाया गया। टेक के रूप में एक या दो पंक्तियों को द्रुत गति में गाना और फिर दोहे के रूप में विलम्बित लय में अन्तरा गाते जाना यही कीर्त्तन अथवा भजन गाने का ढंग था। उपर्युक्त उदाहरणों में 'राग सोरठ' का उद्धरण इसी प्रकार का है।

संगीत काव्य में जहाँ शास्त्रीय वर्णन है, वहाँ तत्कालीन परिस्थितियों के कारण कुछ विशेषताएँ आ गई हैं।

चमत्कारी प्रवृत्ति के कारण, संगीत-शास्त्र के वर्णन में भी सूक्ष्मता आ गई है।

सूक्ष्मता राग-रागिनियों के स्त्री-पुत्र-पुत्री वर्णन में आई है।[2] अन्य प्रकार से साहित्यिक रुचियों के आधार पर रागों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है, जैसे राग का 'षट् ऋतु वर्णन'। इसमें छओं ऋतुओं में रागों का विभाजन किया है। रागों का 'औषधि वर्णन' किया गया है। यह वास्तव में अलग विषय है। रागों और स्वरों की साधना से रोगों का ठीक हो जाना आयुर्वेद का विषय है। फिर भी कुछ संगीताचार्यो ने अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने के लिए इस विषय को लिया है। यह सूक्ष्मता इन कवियों के संगीत विषयक ज्ञान के पूर्णत्व की परिचायक भी हो सकती है। नृत्य तथा ताल आदि के वर्णन में सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व की ओर निर्देश तथा उसकी व्याख्या करना भी एक विशेषता है।

रागों के नामों को लेकर श्लेष अर्थ में संयुक्त काव्य-रचनाएँ की गई। रागों में प्रयुक्त स्वरों (स, रे, ग, म, प, ध, नी) को लेकर काव्य रचनाएँ की गई, जिनमें श्लिष्ट अर्थ के कारण चमत्कार उत्पन्न हो गया।

उपर्युक्त विशेषताओं पर कुछ प्रकाश डालना उचित होगा। रागों और रागिनियों का भोर से रात्रि तक का विभाजन तो किया ही गया है,[3] छओं ऋतुओं के अनुसार भी रागों

---

१. नाथद्वारा (राजस्थान), काँकरोली (राजस्थान), मथुरा आदि के मंदिरों में अभी भी पारंपरिक गान प्रचलित है।

२. इसका उल्लेख इसी अध्याय के प्रारम्भ में किया जा चुका है।

३. 'प्रातः समय जो गाइये तिनके सुन तूं नाम।
देशी अरु मध माधवी भूपाली अभिराम।
बिलावली अरु भैरवी, मल्लारी इहि भाइ
स्याम गुज्जरी और है बंगालिहि गनाइ।
मालसिरी रु धनासरी मेघ राग गनि अंत
देसकार अरु पंचमी भैरव ललित वसंत।

को बांटा गया है। कौन सा राग किस ऋतु के अनुकूल है, इसका निर्देश किया गया है। श्रीराग अपनी रागिनियो समेत शीत ऋतु म, राग वसत अपनी रागिनिया समेत वसत ऋतु म, भैरव अपनी रागिनिया के साथ ग्रीष्म ऋतु म पचम अपनी युवनियो क साथ शरद ऋतु म, मेघ राग, रागिनियों समेत वर्षा ऋतु म और नट नारायण अपनी स्त्रिया क साथ हमन्त ऋतु म गाया जाता है।[1] कवियो की अपनी रुचि के अनुसार इस विभाजन म मत वैभिन्य भी प्राप्त होता है।[2]

कुछ कविया ने रागो का सम्बन्ध औषधियो से दिखाया है। वास्तव म कठ म माधुर्य लाने के लिए औषधिया का प्रयोग बताया गया है। लगभग सभी कवियो न इसका प्रयोग बताया है। 'हीय हुलास' की रागमाला के अनुसार कठ का सुन्दर बनान क लिए निम्नलिखित औषधि बताई है—

'सपा हुलो मुलहटी ब्राह्मी वीसा आन।'
हरद्र कुटि अरु वावची सँधा जारा जान।
मगरा अर अजमाद है बहुरि मतावर लय।
सम कर पीसँ छाव के प्रात सम मुप दय।

कौसिक बहुरमो गुज्जरी सावेरी सुप माइ।
देवा अरु पटमजरी बहुरि गुरकरी गाइ।
रामकली अरु सोरठो बहुरि भंरयी होइ
एक पहर ऊपर इन्हें गान करौ चित्त जोइ।'
सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

१, 'श्री रागिहि रागहि सहित सीत रितुहि सुप वाइ।
राग बसतहि जुवति सग रितु बसत मे गाइ।
भैरव अपन सग सों ग्रीषम पावे मोद।
पचम निज जुवतनि सहित सरदहि करें विनोद।
मेघ राग रागिनो लिए वर्षांहि शोभा देत
नट नारायण साथ मिलि हेमतहि सुप लेत।
—सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

२ 'भंरों सारद कार्तिकी सिसर हिण्डोल बसत।
दीपक ग्रीषम हेम श्री, मेघ सो पावस अन्त।'
—हीय हुलास, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. इस पक्ति का बनारस, आर्य भाषा पुस्तकालय, म प्राप्त 'हीय हुलास' मे पाठान्तर मिलता है।

'सिंगावली औ मुलहटी बिरहिनि यासो आनि
हर्द कूठ अ वरा सौं सोंधा जीरा आनि।'

एक हथेली भर सदा सावे दिन चालीस ।
हिरदै उपजे वहुत कर विथा वुध जगदीश ।'[1]

इन कवियों ने अपने पांडित्य-प्रदर्शन के हेतु अथवा विषय की पूर्ण जानकारी वताने के हेतु सूक्ष्म तत्त्वों का भी वर्णन किया है । उदाहरणार्थ, 'धूयामाठा' एक विशेष प्रकार का गीत है । कवि के शब्दों में—

'धूयामाठा गीत में जानो परम प्रधान ।
तिनकी जुगति वपान हौं, सुनिए सरस सुजान ।
ज्यों दिन विन सूरज लगे, विन ससि रैणी अंघ ।
धूयामाठा जानिए, गीत संगीत प्रवन्ध ।'[2]

धूयामाठा गीत छः प्रकार का होता है । धूया, प्रमजे, कला, कमल, सुन्दर और वल्लभ । इनमें से प्रत्येक का विस्तृत परिचय दिया गया है । कला वर्णन में अंग कला, लिपन कला, पवन कला, गनत कला, वनुप कला, तरन कला, युद्धकला, वैद्य कला, छंदकला, अर्थकला, छंदक राग कला, नाच कला, कपट कला, अदिप्टकला, वाजित्र कला आदि उनसठ कलाओं का सूक्ष्म परिचय दिया है ।[3]

मार्गी और देशी संगीत के समान ताल के भी दो भेद हैं, मार्गी और देशी । अणु, द्रुत आदि सात अंगों को मिला कर ध्रुव मार्ग से पंडितों ने जो सात तालों का वर्णन किया है, उन्हें देशी ताल कहते हैं । इन तालों को जिन गीतों के साथ वजाना होता है—ऐसी देवताओं की स्तुति-रूप गीत चौदह प्रकार के हैं ।[4]

देशी ताल के गीत—

१—मंद्रक, २—अपरांतक, ३—उलोप, ४—प्रकर्ण, ५—वेणुक, ६—रुरु, ७—इंदुकौत्तर ।

मार्ग ताल के गीत

१—छंदिका, २—आसादिता, ३—वर्द्ध मानक, ४—प्रकर्ण, ५—ऋचा, ६—गाथा, ७—साम ।

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन है ।

नृत्य का वर्णन करते समय कवि ने शास्त्रीय ढंग से मुद्राओं का तथा ताल का वर्णन करना ही पर्याप्त नहीं समझा, वरन् भाव प्रदर्शन के लिए साहित्यिक गीतों का प्रश्रय लिया जाता था, उनका भी निर्देश करके क्रियात्मक ज्ञान को, लिखित रूप में स्पष्ट और पूर्ण वना दिया है ।

---

१. हीय हुलास ग्रंथ तथा रागमाला, श्री मोती चन्द जी खजांची-संग्रह, वीकानेर ।
२. उस्तत कृत रागमाला, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, वीकानेर ।
३. उस्तत कृत रागमाला, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, वीकानेर ।
४. राधा-गोविन्द संगीत-सार, तालाध्याय, प्रतापसिंह जी महाराज; श्री खजांची पुस्तक-संग्रह, वीकानेर ।

पति के रूठने पर नर्तकी को नचाने के लिए नृत्य के साथ किन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए—

'जहां नृत्य करने वाली स्त्री रूठे पति के मनाइवे की नक्ल करि प्रसन्न करिवे को जू वाके वचन कह, नाना प्रकार के अरयन सों सयुक्त गीत कहे, सो उक्त प्रयुक्त श्लोक प्राप्यो—वसत समय- सम मान भिन्नो दोष परित्रपज्य भज स्वमयि प्रसाद उतुग पीवर पयोधर, भूरि भारा माराधिनोपिनहि रक्षतु मोहरुयेम ।'

'ऐसे मतलब के श्लोक दोहा कवित्त आदि पढिय या श्लोक को अर्थ मानवती स्त्री को नायक मनावत है ।'[1]

चमत्कार प्रियता के कारण रागों का स्वरूप वर्णन करते समय जहाँ अन्य स्थानों पर रागों का स्वरूप और शृंगार वर्णन हुआ है, वहाँ कृष्णानद देव व्यास 'राग सागर' ने राग-रागिनियों के नामों से श्लेषार्थ लेकर कविता की है ।

'प्रथम भए मनीं बस प्यारे बिम्ब उदे आए
राम किरिया खात ।
विवस भए देखियत गात अदेशकार कौन तीय
ललित वचन बोलत हो तुमरात ।
बेला बेर बीत गई आली आस पज गई देव
गरीब नेवाज कावाभी सगम खटपट गई रात ।
देशाख सुधरतीय मुग्रा वस्त्र पहर खडी
सुघराई जानि परात ।
हम आसवारी सारी रैंन तुम देव गन्धारी गावत
गुजरी सुन बीती परभात ।
तोडी हम सों प्रीन जौनपुर बसत है नवल तीय
देशीय उने जाय लाचार हो वहादुरी डरात
जगल जगल ढूढत हारी भिमवट जिन
करो मेरे प्यारे आसा जावन विहान ।
सारग नयनी पास जावो मधुमाधवी बड हसनी
सामन्त प्यारे वृन्दावन मय इहा लक दहान ।
धन धन श्री मूलतान मत्र पढ डास्यो अभी मैं
पल छन निरखत तुमको पुरिया बड भाग गात
जैत श्री वारी पूरव पूरे पुण्यफल जाको पूरवा लम्वान ।
मारवा ने दई है काम की श्री महाराज गौरी गौरी
टक रान ।

---

१. राधा-गोविन्द संगीत-सार, तालाध्याय, प्रतापसिंह जी महाराज, श्री सडांजी पुस्तक-संग्रह, बीकानेर ।

एमन होत कल्याण को चाहत भूपाल बड़े
हमीर पूरी रात ।

कौमोदियत करछाया पग डगमगात
ऐडात जनात बहुनायक ही जु कान्हर बागेकेसरी
कण्ठमाल कौस्तुभ भरिव सहाना बोल सुहात ।
वाके दरबार में गए बहार करन हिंडारे ।
पांच में वसत हो भंवर नाम कहात ।
बिहागत भई भैरी खंभा पकर ठाढी रहत
पर जो दुख बीती मारू कासे कहूं बात ।
सो रटन लागी सास मेरी जय-जय बतियां
करार कर गए सोहनी मोहनी कर घात ।
मोहे अहोरी जान गोकुल ग्वालिया एराकी चाल
चलत छलक छांद कहीं जात ।
कपोल कहां पीक लागी जानि है जु जानी दीपक
चन्द्र प्रकाश भए नीलाम्बर ओढ आए कलिगए
अबध दे रात
हे घन श्याम मौलार नट वर है वाही के गोड़े पग धरात
वाके श्री बिहारी लहर लोभ पहाड़ पै
कंगन गड़ात खड़ो ता नाथ काकी बात
बैजु बावरी रावरी हितु हितारी राग सागर गावत
तीन तिलक शिर मांझ देखात ।[१]

उपर्युक्त गीत में राम क्रिया, देशकार, ललित तथा वेलावली आदि रागों का नाम भी ले लिया गया है, साथ ही श्लेष तथा मुद्रालंकार के सहारे अर्थ में चमत्कार उत्पन्न कर दिया गया है ।

स्वर-कल्प

इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्र के कलात्मक वर्णन का सुन्दरतम उदाहरण 'स्वर-कल्प' में मिलता है । 'स्वर-कल्प' को एक विशेष प्रकार का छन्द कहना चाहिए, जिसमें गति की नहीं, वरन् विषय की सुन्दरता है । इसमें कवि राग विशेष के स्वरों का वर्णन इस प्रकार करता है, जिसमें गीत और उसकी स्वर लिपि एक ही पद में श्लेषार्थ से प्राप्त हो । संगीत के सप्त स्वरों की सहायता से ही पद का निर्माण करना विशेष कौशल और चमत्कार

---

१. राग-कल्पद्रुम, कृष्णानन्द व्यासदेव 'रागसागर' भाग १, पृ० ७०१
लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी ।

का परिचायक है। इसमें राग का स्वर निर्देश करने के पश्चात ऐसे स्वर-कल्प दिये गए हैं।

> 'अथ हिंडोल-स्वर कल्प, ताल फाक्ता
> सग साध सरदा धाम मध्ये साधे सोपे ममधे
> पमर गोपसो। मा मधे शोग सा स्वे रवँ धाम मध म मैं
> घासो श सँ धी मैं रो ग गम शो।
> मे मध मे ध सौ सौ सोधी मैं रँ गोपिशा। पूरो रगम सा धी शा
> धु शो सु शिधि म रगे शो।'[1]

उपर्युक्त अश में राग हिंडोल म प्रयुक्त स्वरों, स रे ग म ध स (आरोह म) और स ध प म ग रे स (अवरोह मे) को लेकर गोपी और कृष्ण पर रचना की गई है।

इससे भी अधिक आगे बढ कर किसी कवि ने कान्हरा के सत्रह भेद कल्याण के चौदह टोडी के उन्नीस, केदारा के ग्यारह, बिलावल के बारह श्री के बारह तथा नाट के बारह भद कर दिए।[2] इन भेदों का नामकरण दो मिश्रित रागों का नाम देकर ही कर दिया गया, उदाहरणार्थ दरबारी और कान्हरा मिला कर गाने पर दरबारी कानरा, बागेश्वरी और कानरा मिलाकर गान पर बागेश्वरी कानरा, अडाणा और कानरा मिलाने पर अडाणा कानरा का नाम दे दिया गया।

---

१ संगीत-नादोदधि, पूर्ण मिश्र 'कविरागी', म्यूजियम, अलवर।

२ कानरा १७ प्रकार का

सुद्ध कानरो १, दरबारी कानरो २, मियां का कानरो, ३, बागसरी कानरो ४, सियाना कानरो ५, अडाना कानरो ६, गौसी कानरो ७, मुद्री कानरो ८, नायकी कानरो ९, प्रभाती कानरो १०, कुकुबो कानरो ११, दौलती कानरो १२, आनंद कानरो १३, गारा कानरो १४, बसती कानरो १५, गभीरी कानरो १६, पुरिया कानरो १७।

अथ कल्यान का १४ नाम

सुध कल्यान १, इमन कल्यान २, साम कल्यान ३, कामोद कल्यान ४, हमीर कल्यान ५, दरबारी कल्यान ६, पुरिया कल्यान ७, परदीपकी कल्यान ८, अंत कल्यान ९, जमन कल्यान १०, भोपाली कल्यान ११, साजनी कल्यान १२, हेम कल्यान १३, प्रेम कल्यान १४।

अथ टोडी वर्णन

जोनपुरी टोडी १, बागेसरी टोडी २, साचारी टोडी ३, मराठी टोडी ४, बरारी टोडी ५, भैरवी टोडी ६, बहादुरी टोडी ७, रामदासी टोडी ८, भींया टोडी ९, देसी टोडी १०, सोहनी टोडी ११, सजावली टोडी १२, भिमासी टोडी १३, पचमी टोडी १४, बंगाली टोडी १५, आसावरी टोडी १६, बहारी टोडी १७, डाहेरी टोडी १८, जगाली टोडी १९।

अथ नाटक वर्णन

रागों के इन भेदों प्रभेदों से तत्कालिक प्रचलित रागों का परिचय मिलता है। इनमें से कुछ राग अब प्रचलित भी नहीं हैं, इसलिए ऐसे रागों का महत्त्व अधिक हो गया है।

इस प्रकार संगीत-काव्य का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यद्यपि संगीत का क्रियात्मक रूप शास्त्रीय नियमों से दूर पहुँच कर कलात्मक विकास को प्राप्त कर चुका था, तथापि शास्त्रीय पक्ष पुस्तकों में लिखित रूप में पूर्ण रूप से सुरक्षित रहा। संगीत-काव्य को विकास देने में चित्र कला तथा काव्य कला दोनों ही समान रूप से सहायक हुई।

हमीर नाटक १, कामोद नाटक २, सांभ नाटक ३, छाया नाटक ४, नारायन नाटक ५, जेत नाटक ६, सुद्ध नाटक ७, केदार नाटक ८, भिभास नाटक ९, मलारी नाटक १०, सावनी नाटक ११, हेम नाटक १२।

केदारा वर्णन

साम केदार १, जेत केदार २, सिहाना केदार ३, मियां का केदार ४, पंचम केदार ५, जलधर केदार ६, सावनी केदार ७, रामदासी केदार ८, सुद्ध केदार ९, मारू केदार १०, सोहनी केदार ११।

विलावल वर्णन

सुध विलावल १, अलैया विलावल २, काराणा विलावल ३, मियां का विलावल ४, गोड विलावल ५, सुठा विलावल ६, श्री विलावल ७, देवनागरी विलावल ८, कुकुब विलावल ९, सोरठी विलावल १०, सुरदासी विलावल ११, यमनी विलावल १२।

अथ श्री वर्णन

सिरी १, धन्यासीरी २, जेत श्री ३, मालश्री ४, धौलश्री ५, फलश्री ६, पटश्री ७, भीमपलासी श्री ८, लंक प्रस्ताव श्री ९, पुरिया धन्याश्री १०, मियां की श्री ११, गांड श्री १२।

इति श्री राग संपूर्ण

राग सागर, कवि अज्ञात, समय (सं० १८०० तथा १९०० के मध्य का) पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन

शृंगारयुगीन साहित्यिक रचनाओं का पर्यवेक्षण करने पर यह जाना जा सकता है कि शास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण करने के लिए आचार्यों तथा कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों का आधार बनाया है। विषय का चयन भी उन्हीं ग्रंथों से किया गया है और काव्य के सिद्धान्तों का निर्णय करने के लिए भी आचार्य मम्मट, दण्डी और भामह आदि का अनुसरण किया गया है। इन ग्रंथों में विषय के क्षेत्र में मौलिकता का प्रायः अभाव सा ही है। संगीत-काव्य के विषय में भी ऐसा कथन उपयुक्त है।

संगीत शास्त्र के ग्रन्थों का निर्माण करते समय कवियों के सम्मुख संस्कृत संगीत ग्रन्थों के आचार्यों के ही आदर्श रहे हैं। संगीत-काव्य के शास्त्रीय पक्ष की आलोचना 'संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में की जा चुकी है। यहाँ इन रचनाओं के काव्यात्मक सौन्दर्य पर प्रकाश डालना उचित होगा।

शृंगार कालीन राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ इस प्रकार की बन गई थी, जिन्होंने इस काल के कवियों में आचार्यत्व की ओर रुचि उत्पन्न कर दी थी, यह पहले कहा जा चुका है। अन्य कवियों के समान संगीत-काव्यकारों में भी आचार्यत्व का पद प्राप्त करने की लालसा थी। यह भी कहा जा सकता है कि इसी आचार्यत्व की पदवी के प्रलोभन ने कवियों को संगीत-काव्यकार बना दिया।

आचार्य के लिए मुख्य रूप से दो गुण अवश्य होने चाहिएँ। एक तो विविध विषयों का ज्ञान आवश्यक है और दूसरे किसी भी विषय में नवीन मान्यताओं का निर्धारण करने की क्षमता अवश्य हो।

इस दृष्टि से देखने पर अनेक कवि तो ऐसे प्राप्त होते हैं, जिन्होंने विषयों की विविधता का ज्ञान प्रदर्शन करने के लिए ही रचना की। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध कवि देव ने अन्य सग्रह ग्रन्थों के अतिरिक्त एक 'राग रत्नाकर' का भी निर्माण किया।[1] घनानन्द ने अन्य रीति ग्रन्थों के अतिरिक्त राग-बद्ध गेय पद लिखे। सवाई महाराज प्रतापसिंह ने प्रीति-लता, सनेह सग्राम आदि ग्रंथों के अतिरिक्त 'राधागोविन्द संगीत-सार' की भी रचना की। नागरीदास, महाराज विश्वनाथ सिंह जी, मानसिंह जी और राधाकृष्ण भी इसी प्रकार के कवि थे।

---

1 हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, डा० नगेन्द्र द्वारा सपादित, पृ० ३३१।

नवीन मान्यताओं की स्थापना सहज नहीं थी, अतः प्राचीन मतों को लेकर लगभग ज्यों का त्यों हिन्दी में लिख दिया गया है। मौलिकता के नाम पर रागों का मिश्रण करके नवीन रागों की सृष्टि करने की चेष्टा की गई है। यही 'गान-कुतूहल' के नाम से प्रसिद्ध है।[१] इसी प्रकार के वर्णन को नवीन मान्यता का निर्धारण समझ कर आचार्यत्व का प्रदर्शन मात्र किया गया है।

संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित अंगों पर विचार करना उचित है।

१—रसात्मकता
२—वस्तु वर्णन
३—रूप वर्णन
४—प्रकृति वर्णन
५—कल्पना-तत्त्व
६—भाषा तथा
७—छन्द

रसात्मकता

कवि के हृदय में भाव का अंकुर जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के जल से सिंचित होकर प्रस्फुटित हो जाता है, तभी कवि को आनन्द की अनुभूति होती है। यह आनन्द कवि के उद्गारों को द्रवित कर देता है, वह स्वयं ही इस 'रस' में डूब जाता है और अपनी भावुकता को कविता में ढाल देता है। कवि की यह रसानुभूति काव्य में परिणत होकर, पाठक को भी रस मग्न कर देती है। 'न तो रस के बिना कोई भाव होता है और न भाव के बिना रस। इन भावों से रसों का भावन किया जाता है और रसों के द्वारा भावों का।'[२] बिना दान दिए लक्ष्मी जिस प्रकार शोभित नहीं होती, उसी प्रकार वाणी भी रसों के बिना शोभित नहीं होती।

'लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा।८।'[३]

मनुष्य के हृदय में मूल रूप से नौ स्थायी भाव रहते हैं। रति, हास, करुण, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य, तथा निर्वेद भावों से क्रमशः शृंगार, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रस की निष्पत्ति होती है। रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है।[४]

---

१. इसका विवेचन संगीत-काव्य के शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत किया जा चुका है।
२. 'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसविवर्जितः।
भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥१२॥'
अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ३९।
३. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, तृतीय अध्याय, पृ० ३८।
४. 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' भरत का नाट्य शास्त्र।

विभाव के दो भेद होते हैं, आलम्बन और उद्दीपन। जिस वस्तु अथवा व्यक्ति को देखकर भाव जागृत हो, उसे आलम्बन कहते हैं। भावों को उद्दीप्त करने वाले उपकरण, उद्दीपन कहलाते हैं। भाव के उद्दीप्त हो जाने के फलस्वरूप मनुष्य के मन, शरीर तथा वचनों में कुछ विकार आ जाता है। इन्हीं विकारों को क्रमश सात्विक, कायिक तथा वाचिक अनुभाव कहते हैं। मन की स्मृति से, वाणी की इच्छा से, बुद्धि की प्रेरणा से एव शरीर के यत्न से, आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध एव परिष्कृत भावों के आरम्भ को विद्वानों ने अनुभाव कहा है, क्योंकि इसका अनुभव किया जाता है, इसीलिए इसे अनुभाव कहते हैं।[1] इसके अतिरिक्त इन भावों से सम्बन्धित कुछ पल पल में विलीन हो जाने वाले भाव आते हैं, जिनको सचारी अथवा व्यभिचारी के नाम से पुकारा जाता है। शास्त्रों के द्वारा ऐसे सचारी भावों की सख्या, चौंतीस रखी गई है। स्तम्भ, स्वेद, पलक, स्वर-भेद, वेपथु, वैवर्ण्य अश्रु प्रलय, आठ व्यभिचारी तथा निर्वेद ग्लानि, शका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व उत्सुकता, अवहित्था, दीनता, हर्ष, व्रीडा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जडता, चपलता और वितर्क तैंतीस सचारी माने गये हैं। कुछ विद्वान मूर्छा को चौंतीसवाँ सचारी मानते हैं। इन सबका अनुभव करते हुए आश्रय के हृदय में रस की अनुभूति होती है। रस अपनी पूर्णावस्था पर विभाव, अनुभाव तथा सचारी भावों के उदय होने पर ही पहुँचता है। स्थायी भाव कोई भी हो, रस की अनुभूति होने पर प्रत्येक दशा में समान आनन्द प्राप्त होता है। इस आनन्द को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है, अत जब वास्तविक रस की अनुभूति की अवस्था पर कवि पहुँचता है, तब उसके लिए आलम्बन उद्दीपन तथा सचारियों का वैभिन्न्य कोई अर्थ नहीं रखता, केवल 'आनन्द' में वह डूब जाता है। प्रत्येक रस की चरमावस्था समान रूप से कवि को विभोर कर देती है और कवि उसी आह्लाद को अपने काव्य में प्रकट करता है।

शृगार के रस-राजत्व के पक्ष में आचार्यों ने समय-समय पर प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। यह सर्वमान्य है कि शृगार के स्थायी भाव रति में जो व्यापकत्व निहित है, वह अन्य आठ रसों में नहीं; अत शृगार रस जितना अधिक प्रभावशाली हो सकता है, उतना अन्य रस नहीं। सगीत काव्य में हमें मुख्य रूप से शृगार रस ही प्राप्त है। अन्य रस भी आवश्यकतानुसार वर्णित है।

सगीत-काव्य में नव रसों के अतिरिक्त एक रस को लिया गया है, जिसे शृगार रस का एक नवीन रूप भी कहा जा सकता है, वह है काम रस। शृगार रस का वर्णन, आश्रय (पति-पत्नी, स्वकीया), परकीया तथा गणिका नायिका, राधा, कृष्ण, गोपी, प्रेमिका, सखी

---

१. "आलम्बन विभावस्य भावैरुद्बुद्ध सस्कृतै ।
मनोवाग्बुद्धि वपुषां स्मृतीच्छा द्वेषयत्नत: ।४४।
आरम्भ एवं विबुधामनुभाव इति स्मृत: ।
स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते ।४५।"
अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग तृतीय अध्याय, पृ० ४५।

तथा भक्त के हृदय में रति स्थायी भाव को रखकर किया गया है। संगीत-काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह देखा जाता है कि एक नवीन भाव स्थायी बन कर आता है, जिसे हम 'काम' भाव की संज्ञा दे सकते हैं और यह भाव रति भाव से पृथक स्थान बनाता है। 'रति' भाव से प्रेरित मनुष्य आलम्बन में पूर्ण रूप से 'रत' हो जाना चाहता है। यह 'रत' हो जाने की अभिलाषा मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही रूप में होती है। 'काम' तत्त्व इससे भिन्न है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणित कर दिया है कि काम तत्त्व संसार के जड़ तथा चेतन प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। मनुष्य चेतना प्रधान प्राणी होने के कारण इसकी अनुभूति करता है। 'काम' भाव को स्थायी भाव के रूप में धारण करने वाले व्यक्ति (आश्रय) का लक्ष्य आलम्बन की प्राप्ति नहीं है, वरन् उसके प्रति आकर्षण, आदर तथा प्रेम भाव हैं, जो रति भाव को जाग्रत करने में गौणरूप से सहायक हैं, अतः इसका स्वरूप अधिक व्यापक हो जाता है। यह काम तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान रहता है। बालक उत्पन्न होते ही, इस काम तत्त्व के कारण माता के प्रति आकर्षित होता है।[1] अनुकूल परिस्थितियों के न मिलने के कारण कभी-कभी काम भाव दबा रहता है, अतः मनुष्य का व्यक्तित्त्व विकास को प्राप्त नहीं होता। काम भाव के अनुभाव भी भिन्न होते हैं। स्वेद, कम्पन, अश्रु, स्वर-भेद आदि विकार नायक तथा नायिका के परस्पर प्रेम के कारण प्रकट होते हैं, इनके सीमित क्षेत्र में काम रस बँधा नहीं रहता, वरन् इस रस की अनुभूति से आश्रय का हृदय कभी तो प्रकृति प्रेमी हो जाता है, वह प्रकृति में जा कर आनन्द का अनुभव करता है, कुंजों के बीच सुन्दर लताओं में झूला झूलने के लिए आकुल हो जाता है, कभी कला प्रेमी हो जाता है, कभी एकान्त में बैठ कर चित्र बना कर आनन्द का अनुभव करता है, कभी नृत्य तथा संगीत के माध्यम से अपने रस का प्रकटीकरण करता है और कहीं स्फटिक शिला पर, तरु के नीचे प्रकृति के सुखद वातावरण में वीणा बजाने लगता है, मधुर स्वर में गायन करने लगता है अथवा रास नृत्य में मग्न हो जाता है।[2] यह काम रस की निष्पत्ति में सहायक अनुभाव हैं। किसी न किसी रूप में काम भाव का प्रस्फुटन होता है। चौंतीस संचारियों में से अधिकांश वही इस रस में रहते हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक संचारियों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार 'काम' स्थायी भाव, मुस्कान, हास, विलास, नृत्य, गान, वादन, मदिरा-पान, आदि अनुभावों से युक्त होकर आह्लाद, स्वेद, कम्पन, रोमांच, स्मरण, विषाद आदि संचारियों की क्षणिक अनुभूति करते हुए काम रस में परिणत हो जाता है।

काम तत्त्व (सेक्स) की व्यापकता के कारण काम रस की व्यापकता भी बढ़ जाती

१. "The first love object of the boy is his mother, ... for the little girl, too her mother must be her first object."
Dictionary of Psycho-Analysis, Freud, p. 136.

२. "Sublimation is a process that concerns the object-libido and consists in the instincts directing itself towards an aim other than, and remote from, that of sexual gratification, in this process the accent falls upon the deflection from the sexual aim". Dictionary of Psycho-Analysis, Freud, p. 136.

है, अत प्रिय की अनुपस्थिति में जड प्रकृति का सान्निध्य (जिसमे प्रच्छन्न रूप से चेतना व्याप्त है) तथा चेतन प्रकृति पशु-पक्षी का सामीप्य भी सुखद प्रतीत होता है । काम भाव प्राणी को आत्म-प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है । इस रस की विवेचना करने पर सगीत-काव्यकार के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचय मिलता है । आत्म-प्रदर्शन का स्वरूप भिन्न भिन्न होता है । शृ गार रस से काम रस प्रधानतया इसी क्षेत्र मे भिन्न है कि जहाँ शृ गार रस म डूबा व्यक्ति (नायक अथवा नायिका), स्वय आनन्दित होकर रह जाता है, तथा किसी न किसी विकार के द्वारा अपने 'रस' का प्रकट करने म समर्थ होता है, वहाँ काम रस की अनुभूति-प्राप्त नायिका किसी न किसी प्रकार प्रदर्शन करके अपने हृदय के भीतर के भाव को प्रकट करती है । शृ गार रस की नायिका प्रकाश रूप मे रस की अभिव्यक्ति करती है । काम रस की नायिका प्रच्छन्न रूप मे अपन रस का संकेत भर करती है । नेत्रो का तिरछी चितवन के कारण दीर्घाकार बन जाना, कुण्डलों को हिलाकर कपोलो पर ले जाना, केश राशि से अलको का बिखर कर मुख पर आ जाना, ओठो पर अनजाने स्मित हास का बिखर जाना, अगो के सौन्दर्य का इतना अधिक ध्यान रखना कि कटि का सूक्ष्मत्व वक्षस्थल का उभार आदि स्पष्ट हो जाना, अलकरण के प्रति सजग रहना, गति मे मादकता तथा सौन्दर्य ज्ञान का भाव होना, आदि विकार स्पष्ट रूप से आत्म प्रदर्शन कराते हैं । शृ गार युगीन सगीत-काव्यो मे 'काम-रस' का इतना सजीव, तथा स्पष्ट चित्र देखकर पारपरिक शास्त्रीय व्याख्या से हटकर शृ गार रस के इस नवीन विश्वव्यापी 'काम रूप' को मान्यता प्रदान करनी पडती है ।

सगीत-काव्य मे सर्वाधिक मात्रा म काम रस प्राप्त होता है —

'राग सारग नट

> बँसि सिंगार मनोहर भूपन कचन तें अति गात गुराई ।
> छूटि रही मुप पै अलकैं तन जोवन की भलकैं अरुनाई ।
> चपकैं ढिगि बैठि तिया परवीन महा रस बीन बजाई ।
> अम्बर लाल बिसाल बनै छवि सारग नाट सबै सुखदाई ।'

इस सवैया म आश्रय राग सारग नट है । स्थायी भाव काम है । आलबन प्रिय है । मनोहर आभूषणो को धारण करना, यौवन की अरुणाई का मुख पर भलक आना, मुख पर अलको का आ जाना, वीणा का बजाना, तथा शरीर को लाल अम्बर से सजाकर 'छवि सुखदाई' बनाना अनुभाव हैं । सचारी भाव, स्मृति, ध्यान, औत्सुक्य, तथा हर्ष हैं । 'ध्यान' सचारी भावो के अन्तर्गत रखा नहीं गया है । परन्तु काम के वशीभूत होकर नायिका प्रिय के ध्यान म रत हो जाती है, यह ध्यानावस्था जडावस्था स भिन्न है, अत एक सचारी यह भी है । इसके अतिरिक्त स्मृति तथा प्रतीक्षा मे बैठी नायिका को पल भर के लिए अतीव आनद होता है, फिर लुप्त हो जाता है । आकस्मिक आह्लाद होने के कारण 'आह्लाद' भी एक सचारी होना चाहिए । हर्ष, चित्त की प्रसन्नता को कहते हैं ।[1] चित्त की प्रसन्नता 'आह्लाद'

---

१. 'हर्षश्चित् प्रसन्नता,' अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, तृतीय अध्याय, पृ० ४२ ।

से अधिक स्थायी है। हर्ष का प्रकटीकरण व्यक्ति की ज्ञात अवस्था में होता है। आह्लाद अज्ञातावस्था में शरीर में व्याप्त हो जाता है। 'अरुनाई का झलक आना' आह्लाद है, हर्ष नहीं। आह्लाद की अनुभूति मानसिक, परन्तु उस की व्याप्ति शारीरिक है, हर्ष की अनुभूति शारीरिक, परन्तु व्याप्ति मानसिक है। आह्लाद इन्द्रियों के प्रयास से जन्य नहीं है, जब कि हर्ष कुछ मात्रा में प्रयास-जन्य है। काम रस की निष्पत्ति में यह संचारी विशेष रूप से महत्त्व रखता है। इस कथन की पुष्टि के लिए एक और उदाहरण देना उचित होगा।

"हे री मोहन ललित त्रिभंगी
नूपुर बजत गजत मुरली धुनि ललित किसोरी जीरो संगी।
रास रसिक रस अद्भुत राजत तान तरंगन संगी।
ब्रजनिधि राधा प्यारी चित पर मननि भरे है उमंगी।"[1]

यहाँ कृष्ण के हृदय में काम भाव जग रहा है। राधिका आलम्बन है। राधा को रिझाने का कृष्ण प्रयास करते हैं। आत्म प्रदर्शन के लिए त्रिभंगी का विचित्र रूप, धारण करते हैं। मन को मोहने वाला लालित्य आ जाता है। नूपुरों की ध्वनि करके, मुरली की ध्वनि सुनाना अनुभाव है। तानों की तरंगें रास में रस भर देती हैं। इसमें संचारी भाव हर्ष, आह्लाद, औत्सुक्य तथा चपलता है।

राधिका झूला झूल रही है। उस सौन्दर्य को देखकर कृष्ण के हृदय में काम रस जागता है। राधिका का कृष्ण की ओर देखना काम रस को उद्दीप्त करता है। कृष्ण झोंटा दे रहे हैं। बहाने से प्रिया के अंग का स्पर्श कर लेते हैं। यह चेष्टा ही आत्म-प्रदर्शन का एक स्वरूप है। यहीं काम रस जग जाता है।

'आज हिंडोरे हेली रंग बरसें।
झूलें श्री वृषभानु किसोरी सुन्दरता सरसें।
धन्य भाग अनुराग पीय को दृग सुहाग दरसें।
झोंटा रे मिस ब्रजनिधि नेही प्रिया-अंग परसें।'[2]

संगीत-काव्य में काम रस के अतिरिक्त शृंगार रस की विस्तृत योजना की गई है। संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार दोनों ही के उदाहरण भरे पड़े हैं।

आश्रय भैरवी के हृदय में आलम्बन भैरव के प्रति 'रति' जागृत होती है। नायिका भैरवी श्वेत साड़ी पहने चन्द्र मुख की उजियाली को फैलाती हुई प्रातःकाल शिव की उपासना करती है। कायिक अनुभाव, प्रेम में पगकर दोनों हाथों से ताली बजाना है, 'कैलाश के बिलास में हुलास पूर्ण' गीत गाना, वाचिक अनुभाव है। यहाँ हर्ष, चापल्य, औत्सुक्य आदि संचारी भावों का भी समावेश है।

'प्रात समै प्यारी उठि उठी श्वेत सारी भारी
फैली मुख चन्द की उजारी जोति जागती।
गोरे भुजमूल सिव पूजि कैं चढाय फूल

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० १७५।
२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० २५०।

दोऊ कर ताल बजावैं प्रेम पागनी ।
अंगी उर लाल कंज लोचन बिसाल
बाल फटिक सिंहासन पै बैठी बड़ भागनी ।
गावतु कैलास के बिलास में हुलास भरी
भैरवी बखानी यह भैरव की रागनी ।'[1]

कृष्ण के हृदय में राधिका के साथ नृत्य करते हुए 'रति' भाव जागता है । शरद का चन्द्रमा, मंद पवन, किनारे पर फूली हुई फुलवारी, रति भाव को उद्दीप्त करते हैं । मृदंग की गति तथा तानों की तरंगों में रंग बढ़ जाता है और नर्तकों की गति में भी उमंग बढ़ जाती है । और तभी छबीली की छवि देखकर कृष्ण के हृदय में रस उत्पन्न हो जाता है ।

'नचत मनि मन्डल पर स्याम प्रिया सुकुमारी ।
उदित सरदचंद बहत पवन मंद पुलिन पवित्र जहाँ फूली है विचित्र फुलवारी ।
बाजत मृदंग गति लेत है सुगन्ध दोऊ तान की तरंग रंग बाढ़्यो है महारी ।
निरखि छबीली की छवि 'ब्रजनिधि' प्यारे प्रेम विवस उर धारी ।'[2]

वियोग शृंगार का वर्णन करते समय भी कवियों ने पारस्परिक उद्दीपनों का आश्रय लिया है । पपीहा 'पिया' की आवाज सुना कर विरहिणी को और अधिक दुख देता है । घन का गर्जन, चपला की चमक, वर्षा आदि विरह को उद्दीप्त करते हैं ।

'कैसे कटें दइया परवत सम री रतिया
घन गरजन अति चपला चमकत बरसत झर जिय पर इह घतिया ।
सुरत दिवावन पीय पपीहा भारत मदन बदन को कतिया ।
ब्रजनिधि बिन छिन नाही जीवन दार्‌यो ज्यो दरकत है छतिया ।'[3]

नायिका में रति भाव को प्रिय के न रहने पर रात्रि के समय, घन, चपला तथा वर्षा उद्दीप्त करते हैं । पपीहा प्रिय की याद दिलाता है । इस प्रकार उद्दीप्त होकर नायिका की विकलता, 'छतिया दरकने' से, पता चलती है । स्मृति, पुलक, प्रलय, चपलता तथा उन्माद संचारी भाव हैं ।

राग धनाश्री वियोग की पीड़ा को दूर करने के लिए शीतल जल के पास जाकर बैठ जाती है । मुख से दुख के कारण कुछ नहीं कहती । 'मन भावन की सुधि' आ जाने से 'विरहानल अंगों में लगी' ही है, फिर अनंग दुखी कर रहा है । छवि क्षीण हो गई है, 'कंज-दृगों में जल-धार' बहने लगती है ।

रति मन्दिर के ढिग बाग तहां जल सीतलता सरसाय रहैं ।
तन की पीर मिटावन कौं तिय बैठि कछु दुख नाहिं कहैं ।

---

१ राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२ ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २०० ।
३ वही, पृ० १७७ ।

मन भावन की सुधि आय गई बिरहानल अंग अनंग दहैं।
छवि छीन बनासरि दीन भई दरग कंजन ते जल धार वहैं।"[1]

आश्रय राग धनाश्री का आलम्बन राग श्री है। 'दुख से कुछ न कहना', 'छवि क्षीण हो जाना, 'आंखों से जल धार बहना', सात्विक तथा कायिक अनुभाव है। वैवर्ण्य, अश्रु, स्मृति, जड़ता, अवहित्था, औत्सुक्य, चपलता, व्रीड़ा, उन्माद, व्याधि तथा अपस्मार संचारी भाव हैं।

शृंगार का संयोग तथा विप्रलम्भ इन कवियों का प्रिय रस है, अतः इसके अनुभावों तथा संचारियों में इतनी विविधता है कि ये तैंतीस अथवा चौंतीस की संख्या में नहीं बाँधे जा सकते। मनोविज्ञान की दृष्टि से, इन नायक तथा नायिकाओं का अध्ययन करने पर बड़े विचित्र तथा रस के उपयुक्त संचारियों का परिचय प्राप्त होता है। प्रिय के प्रति अतीव प्रेम भावना के कारण, उसकी अनुपस्थिति में उसके विषय में बात करके अथवा सुनकर बड़ा आनन्द तथा सन्तोष प्राप्त होता है। प्रिय की चर्चा सुनते समय मन ही मन नायिका मुसकाती जाती है। इस मुसकान में प्रिय के साथ बिताए क्षणों की मधुर-स्मृति का संकेत है। प्रिय की बात सुनते ही मिलन के दृश्य की कल्पना करके उसे (नायिका को) मुस्कुराहट आ जाती है—कभी उन्हीं क्षणों की याद करके उसे लज्जा आ जाती है। इसे 'स्मृति-मिलन' की संज्ञा दी जा सकती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अनुराग का बड़ा सुन्दर अनुभाव है। इसके लिए संचारियों में कोई स्थान नहीं है, परन्तु यह क्षणिक भाव न केवल संयोगिनी नायिका के, बल्कि वियोगिनी के भी हृदय में उठ सकता है।

'नव नेह की बात सुनै मुसकात लजात सपी सुप साजत है।'[2]

नवीन प्रेम से भरी नायिका असंयत हो जाती है। प्रेम की मादक भावना उसे भाव विभोर बना देती है। प्रिय के समीप न रहकर भी वह आवश्यकता से अधिक उल्लास से पूर्ण रहती है। अकारण ही गाना-नाचना यह उसके अनुभाव हैं। भाव-भरे गीतों में स्वर स्वभावतः मधुर हो जाता है।

'मधुरैं सुर गाय नचैं तरुनी सब प्रीतम कैं अनुराग भरी।'[3]

व्यक्ति हर्षातिरेक से अपनी सामान्य स्थिति का सीमोल्लंघन करके नाच कर प्रसन्नता को अभिव्यक्त करता है।

विप्रलम्भ में पूर्वानुराग, मान तथा प्रवास तीनों प्रकार से वियोग दिखाया गया है। विरह की शास्त्रीय दस दशाएँ अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण तो आ ही गई है; इसके अतिरिक्त भी अनेक दशाएँ देखी जा सकती हैं। उपर्युक्त राग धनाश्री के उदाहरण में प्रवास के कारण वियोग हुआ है तथा अभिलाष, चिंता, स्मरण, उद्वेग और उन्माद दशाएँ दिखाई गई हैं। कुछ ऐसी भी दशाएँ हैं जो इन दस दशाओं से परे हैं।

'छैल छबीले की छवि आंखों में बसी हुई है, अतः उनके सम्मुख न रहने पर भी गोपी

---

१. राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वही।

जिधर देखती है उधर ही साँवरे की सूरत दिखाई देती है। भुलाने से भूलती नहीं। घर में छिप कर बैठती है, तो आँखें आकर झलकने लगती हैं। मोहन मूर्ति मुड़ मुड़कर मृदुल ढंग से मुस्कुरा देती हैं। जैसे 'चाक पर मन चढ़ गया हो, चक्कफेरी सी खाता रहता है।'

'हेली नेह रीति कछु अटपटी कैसे कै कहि जाई।
छैल छबीले नन्द नन्दन की छवि रही नैन समाई।
जित देखौ तित साँहैरो हली और न कछू सुहाई।
बिसरायो बिसरै नहीं हेली करिए कौन उपाई।
हो जब दुरि घर म रहौं री झलकै अखियन आई।
मोहन मूरति माधुरि हेली मुरि मुरि मृदु मुसकाई।
चाक चढ्यो सो मन रहे हेली चक फेरी सी खाय।
किबलनुमा की सी भई री वाही दिसि ठहराय।'[1]

इसमें स्मरण, उन्माद का कुछ मिश्रित सा रूप है। इससे अधिक प्रेम की ऐसी अवस्था है, जो इन दस दशाओं की परिभाषा म नहीं आ सकती। मनोविज्ञान में जिसे दिवा-स्वप्न' कहते है, वही स्थिति कुछ नायिका की है। 'रस-मग्नता' भी एक दशा हो सकती है, जो नायिका को नायक के रस म निरन्तर मग्न रखती है। इस प्रकार के अनेक चित्र इन शृंगारिक चित्रों में प्राप्त होते हैं।

शृंगार रसान्तर्गत निर्दिष्ट पुरुषोचित आठ भाव, भाव, शोभा, विलास, माधुर्य, गाभीर्य, ललित, औदार्य, तेज तथा स्त्रियोचित बारह भाव, भाव, हार, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रागल्भ्य, उदारता, स्थिरता, गम्भीरता दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं। हाव तथा वचन वक्रता के भेद—आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, सलाप, अपलाप, सन्देश, निर्देश, तत्व देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश तीन प्रकार की व्याजोक्ति, रीति वृत्ति, प्रवृत्ति, सभी के उदाहरण इस काव्य में दृष्टिगत होते हैं। 'लीला हाव' का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जहाँ कृष्ण राधा का और राधा कृष्ण का वेष धारण कर आते हैं —

'भोर ही आज भले बलि आए देखत मेरे नैन सिराए।
चटकीलो, पट पीत बदलि कै सुन्दरि सुरग चनरी लाए।
फब्यो भाल बेंदा जावक की अलकनि पद-भूषन उरझाए।
बलि बलि जाऊं भावती छवि पर ब्रजनिधि सोए भाग जगाए।'[2]

इसी प्रकार 'विलास हाव' में नायिका भाँति भाँति से नायक को रिझाती है। मालश्री *रागिनी अपने प्रिय को रिझाने के लिए कुसुम रचित आभूषण पहनती है तथा काम-वासना* के साथ हँसती है।

'कुसुम रचित भूषन पहर विहरत पिय के सग।
मालसिरी नवयौवना हसतहि सहित अनग।'[3]

---

१. हरिपद संग्रह, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० २६८।
२ ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० २०५।
३. राग माला, यशोदानन्दन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

शृंगार रस में आलम्बन विभाव का विशेष रूप से महत्त्व है। आलम्बन के अन्तर्गत नायक तथा नायिका का वर्णन होता है। इस वर्णन में संस्कृत तथा हिन्दी कवियों ने विशेष रुचि दिखाई है, अतः नायक तथा नायिकाओं के गुण, अवस्था, रति, तथा देश आदि के आधार पर भेद-प्रभेद होते चले गए। परिणाम यह हुआ कि नायक के तो धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित तथा धीर शान्त भेद करके, प्रत्येक के अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट चार उपभेद करके कवि सन्तुष्ट हो गए, परन्तु नायिका भेद एक अलग विषय बन गया जिनको लेकर कवियों ने अपनी मौलिकता का परिचय देना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप नायिकाओं की संख्या बढ़ती ही गई।

यहाँ पर नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन करना अभीष्ट नहीं है। केवल इतना दिखा देना पर्याप्त होगा कि, इस काव्य में नायक-नायिका भेद का क्या स्वरूप रहा। राग-रागिनी वर्णन में तथा कृष्ण-राधा को आधार बना कर लिखे गए काव्य में अधिकतर नायक को धीर ललित ही दिखाया गया। धीर ललित नायक शारीरिक रूप से सर्वांगीण सौन्दर्यपूर्ण होता है। अन्य नायकों की अपेक्षा उसमें एक गुण अधिक होता है। वह कलाओं में निपुण होता है। राग स्वाभाविक रूप से ही संगीत कला से पूर्ण होते हैं। कृष्ण भी संगीत तथा नृत्य कला में दक्ष थे। नायिका के प्रति आचरण की दृष्टि से नायक के चार भेद हैं। अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। अनुकूल नायक को केवल एक पत्नी में रत रहना चाहिए। शठ अनेक स्त्रियों के साथ रहकर भी प्रेमिका को कपटीप्रेम करने वाला तथा धृष्ट धृष्टता के साथ अनेक स्त्रियों के साथ एक साथ विहार करने वाला नायक होता है। दक्षिण नायक एक से अधिक प्रेमिकाओं को समान रूप से प्रेम करता है। संगीत-काव्य का नायक सर्वत्र दक्षिण नायक है। कृष्ण सभी गोपियों को समान भाव से प्रेम करने वाले हैं, अतः दक्षिण नायक हैं। राग-नायक भी एकाधिक रमणियों के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं। राग वसंत स्वयं कला प्रेमी है और गायिका और नर्तकी तरुणियों के मध्य शोभित है।

'सिर मौर पपा उर मोतिन माल रसाल कि मंजरी कांनि धरी।
तन सुन्दर रूप अनूप ज्यौं पट पीत लसैं कर फूल छरी।
मधुरैं सुर गाय नचैं तरुनी सब प्रीतम कै अनुराग भरी।
रितुराज वसंत विलोकत है नव पल्लव बसु द्रुम कुंज हरी।'[1]

राग श्री भी कला में अत्यन्त 'परवीन' है, अतः 'तरुनीन' को रिझाता रहता है। मालव कौशिक कोक तथा कला में प्रवीण है और तरुणियों का मन रंजन करता रहता है। यह स्वरूप धीर ललित, दक्षिण नायक का है। प्रत्येक राग नायक की पांच पांच भार्या होने के कारण, वह स्वतः दक्षिण नायक हो जाता है।

उदाहरण काव्य में, सखियों के साथ कृष्ण भी आनन्द मनाते हैं, परन्तु कृष्ण के प्रेम में समानता होने के कारण किसी के हृदय में ईर्ष्यादि भाव नहीं है।

'आज की झूलन पर हौं वारी।

---

१. राग-रत्नाकर—राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

भूलत चंपक-बरनी राधा भुलवत स्याम बिहारी।
मुरज बजावनि सखी बिसाखा गावति अलि ललीता री।
यह सुख निरखि महल कौं 'ब्रजनिधि' अखिया टरत न टारी।'[1]

नायिकाओं मे स्वकीया, परकीया तथा गणिका तीनो प्रकार के वर्णन मिलते हैं। राधा, स्वकीया नायिका के रूप मे भी मिलती है, परकीया के रूप मे भी। जहाँ दाम्पत्य भाव की प्रतिष्ठापना की गई है, वहाँ स्वकीया भाव दिखाया गया है। माधुर्य भाव की भक्ति मे राधिका का परकीया रूप प्रसिद्ध ही है। केवल शृंगार ही वर्ण्य विषय होने के कारण स्वकीया के भेद मुग्धा, नवोढा, मध्या, प्रौढा, इनके प्रभेद ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, इनमे भी ज्येष्ठा-कनिष्ठा, परकीया के ऊढा, अनूढा तथा अन्य भेद, तीन प्रकार की गणिका, अन्य सुरतिदुखिता, मानवती, गर्विता, सभी प्राप्त हो जाते हैं। रति की दृष्टि से दस प्रकार की नायिकाएँ, प्रोषित पतिका, खडिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी तथा आगतपतिका का वर्णन भी मिल जाता है। उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा का विभाजन भी दृष्टिगत होता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे संगीत काव्य मे प्राप्त नायिका-भेद की विशेषताएँ दिखा देना पर्याप्त होगा। नायिका-भेद की दृष्टि से आलोचना करना पिष्ट-पेषण मात्र होगा, अतएव संगीत-काव्य की नायिकाओं की विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

सर्व प्रथम तो इस काव्य मे प्रयुक्त समस्त नायक तथा नायिकाएँ किसी न किसी कला मे निपुण हैं। संगीत, नृत्य तथा चित्र के अतिरिक्त काम कला को भी कलाओं मे स्थान दिया गया है। अत मूल रूप से ये नायिकाएँ कला-पारखी हैं, इसके पश्चात् काव्य-शास्त्र के आधार पर मुग्धा, मध्या आदि के गुणो से समन्वित है। इनका एक नवीन रूप, संगीत-काव्य मे, पाठकों के समक्ष आया है। नामकरण करते समय इन्हें 'मुग्धा नायिका' 'मुग्धा-नर्तकी', 'मुग्धा-कामिनी' आदि कहा जा सकता है, अथवा कलाकारिता एवं सामान्य गुण होने के कारण 'कलाविद् मध्या', 'कलाविद् प्रौढा' आदि वह कर पुकारा जा सकता है। ये नाम नवीन कल्पना-जन्य अवश्य हैं, परन्तु केवल मुग्धा, मध्या, प्रौढा कह देने से इन संगीत-नायिकाओं का स्वरूप सम्मुख नहीं आता। अत प्रचलित नामों मे कुछ परिवर्द्धन करना अत्यन्त आवश्यक है।

उदाहरण के लिए —

'छाजति है अग अग बनी छवि स्याम घटा के छटा की छई।
बेस सुदेस लगै अति ही रग उज्जल है तन सारी नई।
पल्लव आसन बैठी लिया कर चन्दन के है सुवास भई।
हरिवल्लभ बीन लए कर मैं यह दखिन गूजरी बैस लई।'[2]

यह दक्षिण गूजरी रागिनी, वासक सज्जा नायिका है, जो अपने प्रिय के लिए सज

---

१ ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० २५०।
२ संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

सजाकर तथा शृंगार करके बैठी है। रस शास्त्र के लक्षणों के अनुसार वासक सज्जा नायिका प्रिय-मिलन के लिए सेजादि सजा कर बैठी रहती है।

'सार्जाहि सेज सिंगार तिय पिय मिलाप के काज।
वासक सज्जा नाइका ताहि कहत कविराज।'[1]

रागिनी नायिका में वासक सज्जा नायिका से अधिक एक विशेषता है कि वह 'बीना' लिए प्रतीक्षा कर रही है, अतः इसे 'कलाविद वासक सज्जा' नायिका कहा जा सकता है। लगभग सभी रागमालाओं में वर्णित नायिकाओं का स्वरूप ऐसा ही है। उदाहरण-काव्य की आलम्बन स्वरूपा अथवा रस को आश्रय देने वाली नायिका भी यदि संगीतादि ललित कलाओं में निपुण नहीं होती तो काम अथवा केलि कला में पारंगत होती है।

इसके अतिरिक्त नायिका भेद में एक प्रकार का वर्गीकरण और प्राप्त होता है, जिसमें विशेष रागों को उनमें निहित भावों के अनुसार विशेष प्रकार की नायिका से सम्बद्ध किया गया है। उदाहरण के लिए, भैरवी को यदि कवि ने शुक्लाभिसारिका के रूप में देखा तो उसे 'भैरवी शुक्लाभिसारिका' का एक नवीन रूप देकर नायिका भेद के प्रभेदों में संख्या वढ़ा दी है।

राग पहाड़ी 'मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी' नायिका वनी है।

'पहाड़ी

प्रिय परदेस चल्यो चहत, सुनि भांमनि सुधि भूलि।
गह्यो पांच तब पाहिडा, ग्रीवा डारि दुकूल।
चलत प्रवास प्रिय सुनि कै भई उदास आई तिय पास लै उदास कुछ कहि रही।
भूले पान पान वोलत है आंन आंन लागै मैंन वान हिय गाढ़ी पीर सहि रही।
ऐन से नयन दोऊ देपत है पिय मुख वैन हू कह्यो न जात दुप आगि दहि रही।
पाहिडा सी प्यारी वह प्यारे रंगाले लाल जू की चरन सरोज कर कंजन सौं गहि रही।'[2]

प्रवत्स्यत्प्रेयसी वह नायिका है, जिसका पति विदेश जा रहा है। मुग्धा होने के कारण दुखी होती है, गाढ़ी पीर को सहन कर रही है, दोनों नेत्रों से देखती रहती है, पर कुछ कह नहीं पाती, केवल कमल के समान हाथों से चरण सरोजों को पकड़ लेती है। पहाड़ी रागिनी के स्वर-विस्तार में कुछ करुणा तथा पीड़ा के स्वर निकलते जान पड़ते हैं। मधुर रागिनी होने के नाते वियोग शृंगार के रूप में इसे कवि ने देखा है। वियोगिनी से भी अधिक इस नायिका की दशा करुण है, जो प्रिय को जाते देखकर दुखी है और अपने अन्तर की व्यथा को शब्दों

---

१. जगद्विनोद, पद्माकर, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित, पृ० २६।
२. रागमाला, यशोदानन्दन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

म प्रकट भी नहीं कर सकती, अन कवि न पहाडी प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का वणन दिया है। कहीं कहीं कवि ने स्वय ही दोना रूपा का मिश्रण करके नामकरण कर दिया है। नायिका का लक्षण देकर राग तथा रागिनी का वही स्वरूप दिखाया है।

धीराधीरा लक्षण

पिय आए रति. तिय जिय अपना जान।
ताका धीराधीरा मान।

अथ सूरती (सोरठी) धीराधीरा

सुघ स विहारी सारी रैन के पुमारी
आवत थके हैं अब हालके।
अजन महा उर को रग भाल पीक लीक
मु रे विनगन माल के।
प्रम रस भाते रग अलसाते आजु आए उठि
भार ही जगाए बाल क।
झूमत झपत झुकि उघरत वलो ऐस ए
सुल है अधखुल नैन लाल के।[1]

यहाँ रागिनी तथा नायिका के स्वरूप म साम्य दिखाकर कवि ने एक नए प्रकार का वर्गीकरण कर दिया है। ऐसा प्रभेद नायका म भी मिलता है। भैरव अनुकूल नायक है।[2]

संगीत-काव्य के नायक नायिका भेद' का तीसरा वर्गीकरण नायिकाओ का सम्पक छन्दो से जोडकर, किया गया है। नायक तथा नायिका के परुषत्व तथा कोमलत्व के आधार पर, छन्दा की लय से साम्य दिखाकर नायिका भेद किया गया है।

भैरव को शादूलविक्रीडित छन्द में दिखाकर उसका नाम 'भैरव शार्दूल विक्रीडित द दिया गया है। रागिनी सोरठी को 'भुजगप्रयात' म लिखकर उसका नाम 'सारठी भुजग प्रयात दे दिया गया है।

'सदा दाडिमी बीज से दन्त सोहैं।
धरे हम भूपा विभूषा सहिहैं।
लस हाथ चूरी, महा गोर काया।

1 श्री मन्माल्वीय वेनीराम कृत रागमाला, प्रयाग सग्रहालय, प्रयाग। यह ग्रन्थ दुर्भाग्यवश असावधानी के कारण नष्ट हो चुका है। दीमक से खाई हुई प्रति लेखिका को देखने को मिली। यह ग्रन्थ संगीत-नायिका भेद की दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण है।

2 'और को रूप यं सुनं अरु कोऊ कत कऊ ठीक चढ़ानं।
आप तार सो नेह निवाहत सकर सो गिरिजा जिमि ठानं।
रापत हैं हरि सो हिय मो निज नारि के पूरन समाने।
याही के रग मो रातो रहे तिय ए अनुकूल के लछन जाने।'
श्री मन्मालवीय वेनीराम द्वारा रचित रागमाला, प्रयाग सग्रहालय, प्रयाग।

तहां चित्र है वस्त्र सोभा लही है।
हिये लाल चोली दिये भाल टीका।
मिली लट मोतिनी सों भा रही है।'[1]

सोरठी के इस स्वरूप वर्णन को पढ़कर रागिनी का भुजंगप्रयात छन्द के समान शृंगारमय राजसी रूप कल्पना में आता है। सोरठी शृंगारिक प्रवृत्ति की रागिनी है। 'भुजंगप्रयात' छन्द में गेयत्व बहुत अधिक है, अतः दोनों के गुणों का सम्मेलन कर, 'सोरठी भुजंगप्रयात' के नाम से एक नवीन नायिका का निर्माण हो जाता है।

इस प्रकार नायक-नायिका भेद की दृष्टि से संगीत-काव्य में पारंपरिक वर्णनों को छोड़कर मौलिक सामग्री बहुत अधिक है। इन मुक्तकों की परीक्षा करने पर शृंगार रस के अनुभाव, संचारी, भाव, हाव तथा हेला आदि के नवीन रूपों का परिचय मिलता है।

नवरसों में चार रस शृंगार, वीर, रौद्र, तथा वीभत्स स्वाधीन रस हैं और शेष इन्हीं से उत्पन्न होते हैं। शृंगार रस से हास, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है, अतः इन्हीं प्रमुख चार रसों की विवेचना यहाँ की जा रही है। संगीत काव्य में वास्तव में केवल शृंगार रस का ही वर्णन है, अतः शृंगार का विस्तृत वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अन्य सभी रस शृंगार के आश्रित होकर आते हैं, फल स्वरूप वीर भी युद्ध में जाकर वीरत्व दिखाने में समर्थ नहीं है। शृंगार से प्रेरित वीर रस है। काम भाव से प्रेरित रौद्र रस प्राप्त होता है। शृंगार की विचित्रता अथवा प्रेमाधिक्य के कारण हास्य मिलता है। करुण वियोग जन्य ही है। नायक अथवा नायिका का असीम सौन्दर्य अद्‌भुत की सृष्टि कराता है। शृंगार का, अश्लीलता की सीमा पर पहुँचा हुआ वर्णन, वीभत्स रस को जागृत करता है। राग तथा रागिनियों का योगी तथा योगिनी के समान अलंकरण, भयानक को उद्दीप्त कर सकता है तथा वियोग की अत्यधिक पीड़ा निर्वेद की सृष्टि करके शान्त रस को प्रोत्साहित करती है। सारांश यह है कि वर्णन चाहे किसी भी रस का किया गया हो, शृंगार रस, प्रकाश अथवा प्रच्छन्न रूप में अवश्य निहित रहता है।

वीररस का एक उद्धरण देशाप के मल्ल रूप में प्राप्त होता है। रागिनी देशाप 'पवा ठोक कर शरद मेघ के गर्जन के समान आवाज़ करती है। मल्लयुद्ध के लिए कछनी कसे है। गुमान हृदय में धारण किए है। बाहु विशाल हैं, उसके उचंड रूप से भूखंड में कम्पन हो जाता है।' ऐसा प्रचंड वीर रूप धारण करने पर भी 'प्रीतम चितु पैम लपि पगी' इससे यही स्पष्ट है कि प्रियतम के प्रेम के कारण ही यह रूप बनाया है।

'भाल भेष देशाप विराजै। जाकी दुति हिमकर छवि लाजै।
पवो ठोकि कर रहि अवाज। मानो शरद मेघ की गाज।
मल जुध को कछनी किये। है सन मधु गुमान हि लिए।
बाहु विसाल ऊचंडु, जाके रूप कपै भुव खंडु।
ताकी अली माल वपु धारें। आनद उमगि अवागाध झालरें।

---

१. राग-विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती-भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

भाल रूप इव माडी लगे । प्रीतम चित्तु पैम लपि पगे ।
लगति लगनि ऊपर चढि गई । नीचे नागन बनि फिरि लई ।"[1]

इस प्रश मे देसाख रागिनी प्राश्रय है, मालम्बन प्रिय है । 'पवा ठोकना', कायिक अनुभाव, 'आवाज करना' वाचिक तथा 'गुमान का भाव' तथा 'मल्ल-युद्ध की भावना', सात्विक अनुभाव है । आवेग, गर्व, अमर्प तथा उग्रता आदि सचारी भावो का समावेश है ।

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है । रौद्र शृगार का विरोधी रस है, अतएव रौद्र का अधिक प्रयोग असम्भव है । कभी कभी कवि वीररस का वर्णन करते हुए ही उसका आवश्यक अग समझकर कोप का निर्देश करता है, अत लाल रग के नेत्रा का दिखाना, भुजाओ का फडकाना दिखाकर रौद्र की सृष्टि करना चाहता है । यहाँ रौद्र रस का पूर्ण परिपाक नही हो पाता ।

वीभत्स रस के दो भेद होते हैं, उद्वेजन तथा क्षोभन । उद्वेजन का प्रदर्शन उछल-कूद द्वारा और क्षोभन का प्रदर्शन रुधिरपातादि द्वारा किया जाता है ।[2] इस व्याख्या के अनुसार वीररस के अन्तर्गत ही वीभत्स का प्रसार होता दिखाई देता है । जहाँ राग नट भुक्ति श्राहृत है कर बाल झरा झरि सत्रुन के कर सीस झरै', तथा 'लपट्यो अति श्रौनति धारन सौं',[3] वहाँ वीभत्स कहा जा सकता है, परन्तु यहाँ 'शीश को झाडना' तथा 'श्रोणित की धाराएँ बहाना' दोनो युद्धवीर के परिचायक हैं, अतः केवल लक्षण के आधार पर काव्य मे वीभत्स का प्रयोग दिखाना उचित नहीं होगा ।

वीभत्स रस का स्थायी भाव घृणा है । घृणा को उत्पन्न करने मे गन्दी गली, तथा कूडे आदि का वर्णन सहायक होता है । मुखाकृति से सम्बन्धित ऐसे भाव या अग-प्रत्यग का वर्णन जिनको देख या सुनकर नाक सिकुड जाए, जुगुप्सा को जगाती हैं । ऐसे वर्णन सगीत-काव्य मे नहीं हैं । कही कहीं घोर शृगार का वासनात्मक चित्र खींच दिया जाता है, उसकी सम्पना के निम्नतम स्तर पर भी न रस सकने के कारण अश्लील तथा घृणित कहा जा सकता है । वीभत्स रस इसी रूप मे प्राप्त हो सकता है । ऐसे स्थल भी नगण्य से हैं ।

'सरक्यो सिंगार अंग भूखन दरकि रहे,
मुख पै अलक छूटि रस सारसानी है ।
तरकी तनी हू और अगिया दरकि रही,
नीवी बध ढीलो नीवी सरस सुहानी है ।'[4]

अथवा रगरेज नायक से नायिका अपनी 'चुनरिया' रँगाने के लिए अनुरोध करती है, परन्तु

---

१ रागमाला, लछिमन दास, भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी, बनारस ।

२ 'उद्वेजन क्षोभन (च) इव बीभत्सो द्विविध स्मृत ।
उद्वेजन स्यात्पूत्याद्य क्षोभनो (णो) रुधिरादिभि ।१६।'
अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ५७ ।

३. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर, जोधपुर ।

४ व्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १२३ ।

मूल्य रुपये के स्थान पर 'अधरन का रस' देने के लिए तत्पर हो जाती है।

'चुनरिया मेंइको रंगा दे रे छैला रंगरेजा तैं।
पिय कुं मैं कहुं जा, मोरे पास तो रुपइया नाहीं।
मोल चहै तो क्या करूं, मोरे अधरन को रस ले जा तैं।'[1]

ऐसे चित्र अशिष्टता से पूर्ण हैं। साहित्यिक सौन्दर्य को नष्ट करने के कारण घृणोत्पादक हैं, अतः वीभत्स रस के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं।

हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' है। जिस रूप, अलंकरण तथा दृश्य को देखकर हँसी आए, वहां हास्य रस होता है। अधिकतर रूपादि में वैचित्र्य होने पर ही हास उत्पन्न होता है। शृंगार रस में प्रयुक्त हास्य रस शृंगार से उत्पन्न है, अतः कृष्ण तथा राधिका का अलौकिक सौन्दर्य अथवा स्वरूप देखकर हास्य की उत्पत्ति होती है। कहीं कहीं लीला हाव के कारण पुरुष तथा स्त्री के परस्पर वस्त्रादि धारण कर लेने पर हास भाव जागृत हो जाता है। हास्य की सृष्टि शब्दावली में नहीं, वरन् वातावरण के द्वारा होती है। इस दृष्टि से होली प्रसंगों में कहीं कहीं हास्य रस का प्रादुर्भाव होता है। होली में कृष्ण गोपी की आंखों में गुलाल डाल देते हैं, तब सन्मुख आकर मटकते हैं, कमर लटकाते हैं, नैन नचाते हैं, भौंह उचका कर मुस्कुराते हुए केसर की भरी पिचकारी लेकर भाग जाते हैं, यह दृश्य ही हास्योत्पादक है।

'अनि हे माहि को आंखिन माहि डारि।
गुलाल ढीठ लंगर यह नंद कुंवर ने बरजोरी करकर।
सनमुख होकर मटकत है लटकावत कटि को।
नैन नचावत भौंह उचकावत मुसकावत है धावत उत को।
कर पिचकारी ले केसरिया भर भर।'[2]

इसी प्रकार अद्भुत रस की सृष्टि कृष्ण राधा के असीम सौन्दर्य की कल्पना में है। मनमोहन के अलौकिक सौन्दर्य के कारण उस रूप को देखने वाले के हृदय में आश्चर्य जागता है। उसे सावन के अन्धे के समान हरा ही हरा सूझता है। लोक-लाज, कुलकानि वेद-विधि आदि छोड़ देता है। यही कृष्ण के रूप से आश्चर्यान्वित होने वाली गोपियों के कायिक तथा सात्विक अनुभाव हैं।

'जाकी मनमोहन दृष्टि पर्‌यो।
सो तो भयो सावन की आंधी, सूझत रंग हर्‌यो।
लोक-लाज कुल कांनि वेद विधि छांडत नाहि डर्‌यो।
व्रजनिधि रूप उजागर नागर गुन-सागर अर चर्‌यो।'[3]

करुण रस, जिसका स्थायी भाव शोक है, वह नगण्य प्राय है। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है, अतः यह शृंगारिक संगीत-काव्य का विरोधी रस है। यदि संसार से

---

१. मानसिंह कृत ध्रुपद और धमार, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
२. व्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० १६३।
३. व्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० २१८।

विरक्ति की भावना होगी तो शृंगार काव्य की सृष्टि नहीं हो सकती। उदाहरण काव्य में भक्ति के भजनों में अवश्य ऐसे कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। उस समय अधिकांशतः भक्ति भी राधा कृष्ण के माधुर्य रूप की प्रचलित थी, अतः ऐसे उद्धरण कम ही प्राप्त होते हैं।

सारांश यह कि संगीत-काव्य में एक ओर जहाँ शृंगार रस का संस्कृत शास्त्र ग्रंथों के अनुसार सर्वांग वर्णन हुआ है, वहीं शृंगार का नवीन रूप बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अन्य रस भी अल्प मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं।

वस्तु वर्णन

वस्तु वर्णन के अन्तर्गत उन वर्णनों को लिया जाता है, जिनमें कवि के कौशल से वस्तु विशेष का सौन्दर्य बढ़ गया है। वर्ण्य वस्तुएँ अधिकतर राजसी वातावरण से सम्बन्धित ही थीं, अतएव हाथी घोड़े आदि का वर्णन और आभूषण वस्त्रादि का वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। इन वस्तुओं का वर्णन आलम्बन के शृंगार और स्वरूप को सुन्दर बनाने के लिए ही किया गया है। मुख्य रूप से नायिका अथवा किसी रागिनी का ही वर्णन करना कवि प्रारंभ करता है, परन्तु आभूषणादि के प्रति प्रेम होने के कारण प्रमुखता वस्तु वर्णन को दे देता है।

रागिनी सभावली के वर्णन में कवि उसके वस्त्रों का वर्णन करते हुए कहता है —

'भूषन अंग जराव जरे तिन की दुति कुंदन तें सरसावें।
अंबर लाल हरी अंगिया उर मोतिन माल बिसाल सुहावें।'[1]

अथवा शुद्ध बंगाल का वर्णन करते समय कल्याण मिश्र कहते हैं—

'पीत बसन तनु गोर छबि कुंडल मुकुट जराव
शुद्ध बंगालो बानरो मिलत होत सुर भाव।'[2]

इस प्रकार के वर्णनों में जो विशेषता पाई जाती है, वह यह कि कवि ने सदैव रंगों के सम्मिलित प्रभाव का लक्ष्य बनाकर यह देखने का प्रयास किया है कि राग अथवा रागिनी के शरीर के वर्ण पर किस रंग का वस्त्र, किन रंगों के आभूषणों अथवा पुष्पों आदि के साथ कितना सुन्दर लग रहा है। ऐसा वर्णन संगीत काव्य में विशेष रूप से अलग महत्त्व रखता है। इससे कवियों का वर्ण परिज्ञान, विशेषज्ञता आदि का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही कवि यह बताना चाहता है कि संगीत में राग विशेष में प्रयुक्त अलग अलग स्वर महत्त्व नहीं रखते, वरन् स्वरों का सामुदायिक गान तथा स्वरों का परस्पर वादित्व, समवादित्व और विवादित्व महत्त्व रखता है। राग का प्रभाव सम्पूर्ण रूप से वर्णन पर पड़ता है। उसी की कल्पना करके कवि जब रागों का स्वरूप अंकित करने लगता है, तो राग का नग-

---

१ राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२ रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

भिन्न वर्णन न करके एक सामूहिक प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। मेघ मल्हार का शरीर नीले कमल के समान है, परन्तु शरीर में कांति है। उस पर पीले वस्त्र कटि में शोभित हैं। अत्यन्त उज्ज्वल चन्द्रिका से भी अधिक छवि उत्पन्न हो रही है। यौवन की ज्योति शरीर में है ही, फिर मुस्कान मुख पर शोभित है।

'नील सरोज लो देह दिपै कटि में पट पीत विराजतु है।
अति उज्जल चंद उज्यारिहुं तैं उपरे ना महाछवि छाजतु है।
तन जोबन जोति लसै हरिवल्लभ चंद हंसै मुख साजतु है।
जल जाचतु चातक जावक लौ हय मेघ सुराग यो गाजत है।'[१]

वस्तु वर्णन में उपमान के रूप में लाने के लिए कवियों की रुचि अधिकतर प्रकृति के अंग, भिन्न भिन्न रंगों के पुष्प, पल्लव, द्रुम तथा विभिन्न रंगों के मोतियों की ओर रही है। इसका एक कारण यह है कि राजसी वैभव में पले तथा अभ्यस्त संगीतकार किसी भी रूप को कांति से अलग नहीं देख पाते थे, अतः चमकते हुए भिन्न भिन्न वर्णों के मोती उनकी कल्पना में सदैव उपस्थित रहते थे।

पुष्पों में नील सरोज, लाल सरोज, कुमुदनी, चंपक, रसाल की मंजरी, कुंद, केसर, वृक्षों में चंदन, बहुमूल्य पत्थरों में स्वर्ण, प्रवाल, कुन्दन, मुक्ता आदि प्रिय रहे हैं। हरे रंग के लिए पल्लव का आश्रय लिया है। इन्हीं के आधार पर वर्णों के सहारे रागों का मन को हरने वाला रंजक रूप कवियों ने उपस्थित किया है। इसके अतिरिक्त आभूषणों के लिए नागों को भी लिया गया है। जहाँ भी राग और रागिनी का शांत रस का स्वरूप है, वहीं नाग को धारण किया गया बताया है। इससे नगर और वन के आभूषणों का अंतर स्पष्ट होता है। शृंगार का अर्थ जहाँ अलंकरण है, उसका विभाजन निम्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

एक—सौन्दर्य वृद्धि में सहायक प्रयुक्त सामग्री। इसके दो रूप प्राप्त होते हैं—
(क) राजसी (ख) नैसर्गिक
दो—रस की दृष्टि से अलंकरण सामग्री—
(क) शृंगार रसानुकूल (ख) वीर रसानुकूल (ग) शांत रसानुकूल।
तीन—संस्कृति के अनुकूल—
(क) हिन्दू (ख) मुग़ल
चार—चित्र शैलियों के अनुसार—

इन सभी के दो रूप, पुरुष रूप और स्त्री रूप, प्रभेद हो जाते हैं। अलंकरण के हेतु प्रयुक्त सामग्री के आधार पर दो रूप प्राप्त होते हैं।

१—राजसी तथा नैसर्गिक

राजसी शृंगार में रागों तथा रागिनियों को सुन्दर और रंगीन वस्त्रों से आवृत किया गया है। आभूषणों के स्थान पर बहुमूल्य पत्थर पहनाए गए हैं। शरीर मे चंदन तथा कुमकुम का लेप कराया गया है। संग में सखी अथवा परिचारिकाएँ रहती हैं, ताम्बूल का सेवन

---

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

किया जाता है।

ऐसे राजसी वैभव स सम्पन्न रागिनी नायिका का सम्बन्ध राग नायक से भी ऐसा दिखाया गया है, जिसमें नायक के साथ राग रग कर रही है अथवा मान करके बैठी है। इससे नायिका का ग्रह तथा उसका रूप-गर्व स्पष्ट रूप स आभासित होता है।

श्री राग की स्त्री गुणकरी प्रिय की प्राण स्वरूपा है। श्याम वर्ण की है परन्तु सखियो के मध्य बैठी है। श्वेत वस्त्र धारण किए है, वेसर के मोती की झलक बडी सुन्दर प्रतीत होती है।[1]

'गोरी' जडाऊ फूल शीश पर धारण किए हैं। श्वेताम्बर म अत्यन्त सुन्दर लगती है, अत 'गुमान भरी प्रीतम को रग दिखाती है।'

'सीस को फूल जराय जरो जनु रागन की मुख चद विराजै।
बाल रसाल कि मजरि कानि धरै मत्राकन कुडल राजै।
अवर स्वेत मनोहर सुयत उज्जवल अग महा छवि छाजै।
गौरी गुमान भरी गति सौं अति रग दिखावत प्रीतम काजै।'[2]

रामकली जराऊ भूषण पहने हैं, गले म मोतियो की माला है। कचन की सी शरीर की छवि पर नीलाबर अत्यन्त शोभित हो रहा है। यह भी नायक को अपराधी देखकर उससे मान किए बैठी है।[3]

इसी प्रकार राजसी अलकरण युक्त रागिनियाँ सुगन्धित पदार्थों का सेवन करती हैं। धनाश्री 'मृगमद तिलक सुवास' माथे पर दिए हैं,[4] भूपाली वस्त्रो को केसर मे डुबोए है,[5] और देसकार 'चदन सा गात म चदन चिरचि' कर बैठी है।[6] स्त्री रागो मे भी मदिरा

---

१ 'स्याम बरन सग गूजरी पिक बैनो प्रीय प्रान।
स्वेत बसन बेसर झलक मति गुनकरी सुजान।'
रागमाला, कल्यान मिश्र, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

३ 'भूषन अग जराय जरे, उर मोतिन माल विसाल ठई हैं।
अबर नील अनूप बन्यो तन कचन की छबि छीन लई हैं।
नायक को अपराध लख्यो मनुहारिन तें मन फेरि गई हैं।
राजत रूप गुमान भरी यह रामकली मन मान गई हे।'
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

४. 'सुगध धनासी सोवनहु मृगमद तिलक सुवास'
रागमाला, हरिचन्द, श्री अभय जैन, ग्रन्थालय, बीकानेर।

५. 'भोपाली विरहन लखो केसर बोरे चीर', होयदूलाल, मोतीचद जी खजांची सग्रहालय, बीकानेर।

६ 'कचन सौं गात तामें चंदन चिरचि राख्यौ', राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

का सेवन प्रचलित है। तुरकतोडी सुरा का सेवन करती है।[1]

राजसी शृंगार से युक्त पुरुष राग विष्णु स्वरूप शंख, गदा, चक्र, कमल धारी भी हैं और मनोहर आभूषणों को धारण किए विविध वर्णों के वस्त्र पहने बहुमूल्य वस्तुओं से अपने शरीर को सुसज्जित किए राग, रागिनियों अथवा सखियों के साथ राग-रंग करते भी दिखाई देते हैं। अत्यन्त राग पूर्ण तथा विलास प्रिय दिखाने के लिए कहीं कहीं मदिरा में उन्मत्त भी दिखाया है।

'राग सारंग का स्वरूप
गदा संख धरिनु[2] चक्र धरि च्यारि भुजातन स्याम
पीत बसन वाहन गरुड़ सारंग याको नाम।'[3]

यह रूप विष्णु के रूप से साम्य रखता है।

राग श्याम शृंगार किए युवतियों के साथ विलास में रत हैं।
'ग्रीव विसाल लसै मनि माल सुभाल में राजत कुमकुम टीको।
छीन लई छवि स्यांम घटानि की स्यांम बनों तनु ही अति नीको।'[4]
सोहत पीत दुकूल महा दुति देषत कंचनु लागतु फीको।
हास विलास करैं जुवती हरिवल्लभ स्यांम है भावतो नीको।'

कहीं कहीं राजसी शृंगार के प्रेमी कवि ने भैरव को स्त्री बना दिया है और उसे शिव का प्रसिद्ध योगी रूप न देकर राजसी रूप दिया है।

'तिय भैरों भूषण अंग साजे। कांम रूप कांमिण संग राजे।
करत किलोल काम रस भीनों। भुजा पसारि आलिंगन दीनों।
बढ्यो नेह नैन टक लागी। रीति तरंग अनंग अनुरागी।
चेरी चतुर चमर कर लीयो। अति विचित्र चितवत चित दियो।
महल सुरंग सेज सुखकारी। ये ते रुचि सुप पावत पिय प्यारी।'[5]

नैसर्गिक शृंगार में प्राकृतिक वस्तुओं से राग तथा रागनियों का शृंगार किया गया है। आभूषण अधिकतर पुष्पों के पहनाये गए हैं, जिनमें श्वेत, नील और अरुण कमल कुंद अधिक प्रचलित हैं। पक्षियों में मोर का पंख नायक और नायिकाओं दोनों का ही प्रिय रहा है।

---

१. 'अंग लसे भूषन वसन तुरकाने की रीत
कहे तुरक तोडी यहै पियै सुरा करि प्रीत।'
हरिवल्लभ, संगीत दर्पण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. 'धरिनु' शब्द स्पष्ट नहीं है। ऐसा लगता है कि लिपिकारों की भूल से कमल के किसी पर्याय के स्थान पर यह विकृत शब्द आ गया है।

३. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. रागमाला, भगवान कृत, म्यूजियम, अलवर।

ललित रागिनी गले म 'शतदल'[1] का हार धारण किए हैं। तोडी रागिनी तुषार से उज्ज्वल अगो पर कुद का हार पहने हैं। केसर और कपूर का शरीर मे लेप किए है।

'उज्ज्वल अग तुषार हुते अति कुद को हार धरै छवि छाज।
केसरि और कपूर को धारि किए तन मे सुप सोभा साजै।'[2]

पुष्पो के आभूषणो के अतिरिक्त पुरुष राग ने बाण भी पुष्प ही का धारण किया है। नटनारायण का पुत्र 'विहागडा पुष्प धनुष धारण करके विहगो के साथ क्रीडा करता है।'[3]

वन मे प्राप्त पक्षियो के पखो का आभूषण धारण करना भी नैसर्गिक शृगार का एक ढग है। बसन सिर पर शिखी का पक्ष धारण कर और श्रवन म रसाल की मजरी पहने श्याम शरीर मे नील सरोज से भी अधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा है।[4]

नट नारायण का एक पुत्र राग गुड 'स्याम वरण सिर वेल दल मोर पछ कटि काछ, मुक्त माल मल्हार मिलि गुड धनुष धर आछ' रूप म शोभायमान है।[5]

अधिकाशत इन कवियो न प्रच्छन्न रूप म इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि सगीत भी प्राकृतिक वस्तु है। सगीत आडम्बर रहित है। अत नैसर्गिक शृगार से सुसज्जित जो राग और रागिनियाँ प्रकृति के किसी रम्य स्थान पर बैठी चित्रित की गई हैं, वे स्वाभाविक रूप से गान मे रत हैं। कोई वीणा बजाती है कोई किसी न किसी रूप मे अपने भावो को सगीत के माध्यम से प्रकट करती है।

रागिनी दक्षिण गूजरी मलयागिरि के वन म पल्लवो की सेज बिछा कर बैठी है। अपने 'मनभावन के गुण गाने के लिए 'प्रवीणतिया' ने हाथ में वीणा धारण कर ली है[6]। राग हिंडोल स्त्रियो के साथ केलि क्रीडाएँ करता हुआ झूला झूल रहा है और कर में वीणा धारण किए रस रीति में डूबा हुआ है।[7]

सारग नट रागिनी अभी किशोरी है, परन्तु चपा के पुष्पो की द्युति का मानो चुरा कर उसने शरीर की कान्ति मे अभिवृद्धि कर दी है। वेनी ऐसी सुन्दर गूथी है जैसे 'मदनमन'

---

१. 'चपक तें अति चारु लसें तन हारु धरै सत पत्र को छाजै।'
सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

२ सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

३ 'सुरभि गौर तन मदन छवि कुसुम मुकुट सुप रग
पुष्प धनुष केदार मिल बिलसित मधुर विहग।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

४. 'राजै तहाँ सिखि पक्ष धरैं सिर, श्रौन रसाल की मजरि भाई
नील सरोजहु तें अभिराम लसें तन स्याम की सोभा सुहाई।'
सगीत दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

५. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

६. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

७. सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

की 'छवि छीन' ली हो। 'तरु के तरे' बैठ कर वीणा बजाती है और सभी का मन आकर्षित करती है।

'वैस किसोरी है गोरी तिया, दुति चोरी है चंपे के फूलन की।
केस सुदेसनि बैंनी गुही छवि छीनि लई मप तूलन की।
करवीन लिए तरु के तर बैठति साजु सजे सुप मूलन की।
हरिवल्लभ सारंग नाट के नाटन और लगै सब फूलन की।'[1]

संगीत काव्यकारों ने नैसर्गिक शृंगार में प्रकृति से राग तथा रागिनी का तादात्म्य दिखाया है, अतः राग पशुओं और पक्षियों के सान्निध्य से आनन्द प्राप्त करते हैं। रागिनी सोरठी कानन में 'नील सरोजों में बैठी है, जहाँ भ्रमर आकर गुंजार करने लगते हैं, और नायिका उसको सुनकर बड़ी प्रसन्न होती हैं।

'कानन के नील सरोजनि में अलि गुंज सुनै अति ही सुप माने।'[2]

'चंपक से चारु देह' वाली भूपाली की 'मंद गति' देखकर 'मराली' भी लजा कर रह जाती है।[3] मधु माधवी अपने 'कंत' के साथ सुन्दर हरिण पर बैठी है।[4] पक्षियों में विरहिणी के स्वर से साम्य रखने वाला स्वर भी 'पिक' का है और उमंग में भी 'कोकिल के कल कंठ' से साम्य हो जाता है।

ककुभ रागिनी

'रोवति चंद मुखी वन में पिक नाद सुने दुख पावति तैसे।'[5]

और गौरी

'कांन रसाल की मंजरि राजति कोकिल के कल कंठ गही है,
गौरी सी मूरति मोदनि पूरति आनन्द में अति ही उमही है।'[6]

अन्य पक्षियों में कपोल, खंजन, चकोर व पशुओं में मृग और नाग का आश्रय लिया गया है। नागों को आभूषण के रूप में भी धारण किया जाता है और केशों के लिए उपमान रूप में भी उनका वर्णन होता है। भैरव, भैरवी, आसावरी और केदारा नागों को आभूषण के समान धारण करते हैं।

सुख और दुख दोनों की अनुभूति इन राग और रागिनियों को प्रकृति की गोद में बैठकर सुन्दर जान पड़ती है, अतः मलयागिरि पर कदंब के नीचे, श्वेत शिला पर, पल्लव

---

१. राधा कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. वही।
३. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'ऊचा कुरंग सुरंग पर बैठे त्रिय अरु कंत।
सेत चीर मधु माधई नीरद कथा जपंत।'
रागमाला, हरिश्चन्द्र, मुनि कांति सागर जी का संग्रह, उदयपुर।
५. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. वही।

शय्या पर अथवा इसी प्रकार के किसी प्राकृतिक रम्य स्थान पर वीणा बजाकर मनोरंजन करती हुई दिखाई देती है।'

उदाहरण काव्य में वर्णित अलंकरण-सामग्री में राग मालाओं की अपेक्षा अधिक विविधता प्राप्त होती है। सौंदर्य वृद्धि की सहायक वस्तुओं में राजसी वस्तुओं का प्रयोग अधिक है। नैसर्गिक दृष्टि से स्वभावत अलंकरण कम किया गया है। उदाहरण काव्य के नायक और नायिका अधिकतर वैभवपूर्ण वातावरण में ही रहते हैं अतएव पुरुष रूप में सिर पर पगड़ी कलगी सेहरा माथे पर कुमकुम केसरादि का तिलक नगमणि के आभूषण स्वर्णखचित झीने वस्त्रों का प्रचार है।'

स्त्री रूप में भी वेणी से लेकर पैरों के बिछुओं तक रत्नों से जटित स्वर्ण आभूषण पहनाए गए हैं। अंगों में सुवास जड़कर, मुख पर बेंदी, सिर में तिलक, आभूषणों के साज-शृंगार कर चरणों में पायल बजाती हुई स्त्रियाँ गोकुल में नंद के घर बधावा गाने जाती हैं।' इनका स्वरूप सुंदर है। कानों में कर्णफूल मोहिनी अलकें तन पर नीली साड़ी शोभायमान है।

करज फूल प्रतिबिंब कपोलन

---

१ 'मलयागिर माह कदंब के मूल बिराजत बैठी लये संग आली।'

+ +

'गिरि कैलास में विलास हास बनि बैठी फटिक चौकी पर गिरिजा सी जानी है।

+ +

पल्लव आसन बैठी तिया वन चदन के है सुवास मई।'

+ +

'कर बीन लए तरु के तर बैठति साजु सजे सुप भूषन की।

संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

२. 'लटपटी पाग झुकी सिर कलगी अंग अनग सजीलो।

सेहरा बिराजे है कुमकुम तिलक सुभाल। यो तो हरियालो बनो।

भूषण सोहैं हे नगमणि जोति सुभाल। यो तो हरियालो बनो।

झीने तन बाग हे सुंदर ताको धाम। यो तो हरियालो बनो।'

रस तरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३ 'हेली नंद घरन आज बधायो।

अगन साज सुवास जरी हैं।

मुख बेंदी सिर तिलक करी हैं।

भूषन साज सिंगार उजेरो।

बाजत चलो चरनन मे नेरो।' आदि

रस तरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

अलक मोहिनी करत कलोलन
तन सुप सारी नील निचोलन।"[1]

वस्त्रों में कवियों ने अपने अपने देश के अनुसार वेष धारण कराया है। राजस्थान के महाराजा कवियों ने कंचुकी, लहँगा और चूनर पहना दी है। जयपुर की रँगाई प्रसिद्ध है, अतः नायिका अनेक बार अपने प्रिय से चूनर को रँगाने के लिए कहती है।

'राग भांड ताल होरी री
ल्याओ रंगरेजा चुंनर सारी
कंचुकी कसूंभी हर्यो लहँगा घुंमाला कलीदार'।[2]

उस समय के प्रचलित वेश का स्तर भी इन गीतों से विदित होता है। साधारण लहँगा नहीं, वरन् बहुत से घूमवाला, कलीदार, हरा लहँगा होना चाहिए।

पैर के अँगूठे में पहना जाने वाला अनवट घूंघरूदार अच्छा समझा जाता है और नूपुर (बिछवा) रत्नों से जड़ा हुआ, हल्का बजने वाला पायल, हीरे, मोती, पन्ने से जड़ा हुआ होना चाहिए।

'राग सिंदूरी ताल दीपचन्दी
कनइया मोरे अनवट बिछवा समेत ल्यादे
मोरे पैरू कु रतन नुपरवा। अस्ताई।
फगवा में पेलत बाजत नीके सौत का कलेजा
जलाऊंगी सुना के।
झीना झीना बाजना गुघरवा हीरा मोती पंनडवा में
मानक लगा दे।
रसीला राज पिया लटुवा भयो जो तुं अपने करन सों बेसर
पहरा दे।"[3]

शृंगार का दूसरा विभाजन रस की दृष्टि से किया जा सकता है। छः राग और तीस रागिनियाँ तथा उनके पुत्र और पुत्रियाँ किसी न किसी रस विशेष को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। राग स्वयं भी किसी न किसी रस में डूबे रहते है। इनमें तीन प्रकार के विभाग हो सकते हैं।

१—शृंगार रस से युक्त
२—वीर रस से युक्त
३—शान्त रस से युक्त

अधिकांश राग और रागिनी शृंगार रस से ही ओतप्रोत हैं। शृंगार के दोनों रूप संयोग और विप्रलंभ प्राप्त होते हैं। संयोग और वियोग में रत रखना कवि की अपनी

---

१. रस-तरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।
२. मानसिंह का बनाया 'ध्रुपद और ख्याल', मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।
३. वही।

रुचि है, परन्तु कुछ रागिनियाँ ऐसी मान ली गई हैं, जिनको वियोग मे दुखी माना है, इसका कारण उनमे प्रयुक्त कोमल स्वरा का होना नही है, केवल गाने के प्रभाव की कल्पना करके कवियो ने ऐसा किया है।

भैरव स्वय योगी है, परन्तु उसकी भार्याओ म मध्यमा, भैरवी, बराटी सम्भाग म रत रागिनियाँ हैं।[1] भैरवी का स्वरूप कुछ भिन्न है। कही वह योगिनी के समान श्वेत सारी धारण किए, फूलो का शृगार किए शिव की आराधना म रत रहती है[2] और कही 'चन्द्रमुखी चपला तें चारु देह द्युति' वाली भैरवी शिव की अर्चना म लीन रहती है।[3] हर स्थान पर भैरवी का रूप गिरिजा के समान है। योगिनी का रूप धारण करत हुए भी शिव के प्रति 'रस रीति' हृदय मे है उसी के सुख मे मग्न स्फटिक शिला पर विराज रही है।[4]

मालवकौशिक (मालकौंस) स्वय वीर रस म मस्त है, परन्तु उसकी रागिनिया म टोडी, पद्मावती और गारी सम्भोग शृगार म रत है और गुणकरी तथा ककुभ वियोगिनी है।

हिंडाल स्वय सखिया के साथ झूला झूलता रहता है और सम्भोग म रत रहता है। उसकी पत्नियो म बिलावली, रामकरी तथा ललित, सयाग शृगार के अन्तर्गत आती हैं और पटमजरी वियोगिनी है।

दीपक राग केलि कला मे प्रवीण है, देसी सयाग शृगार म रत रागिनी है तथा कामोदी वियोगिनी।

श्री राग किशोरावस्था का शृगारी राग है। उसकी रागिनियाँ बसन्त, मालव, मारसिरी, सयोगिनी हैं। आसावरी, मल्हारी और धनाश्री विरहिणी हैं।

मेघ मल्हार अनुरागी है, उसकी रागिनियाँ देसकारी और टक और दक्षिण गूजरी

---

१ सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

२. 'प्रात समै प्यारी उठि उठी, स्वेत सारी भारी कैसो
मुख चद की उजारी जोति जागती।
गोरे भुज मुल सिव पुजि के चढ़ाय फूल दोउ कर ताल
बजावे प्रेम पागती।'

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर जोधपुर।

३ 'चद मुखी चपला तें चारु देह दुति दिपं कौल कुस मनि
सिव अर्चा उठानो हैं।'

सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मदिर जोधपुर।

४ 'गिरि कैलास मे बिलास हास बनि बैठी फटिक चौको पर
गिरजा सो जानो है।
चदमुखी चपला तें चारु देह दुति दिपं कौल कुस मनि
सिव अरचा उठानो है।

संयोगिनी हैं और मल्हारी और भूपाली, वियोगिनी हैं।

सारंग नट, सोरठी, त्रिवनी, पहाड़ी, पंचम, स्याम, सुद्ध बंगाल, सामंत, तुरक तोड़ी, जेत श्री, सारंग सभी राग संयोग शृंगार के अन्तर्गत हैं।[1]

शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष के अनुसार पुरुष राग और स्त्री रागिनियों के शृंगार (सजावट) में कुछ विशेषताएँ आ गई हैं। संयोग शृंगार में रत राग और रागिनी अनुराग और उल्लास से संयुक्त रंगों का चयन करते हैं। अधिकतर लाल रंग का वस्त्र पहनते हैं। पीत वस्त्र भी उल्लासपूर्ण है। नीला और श्वेत वस्त्र भी जहाँ पहनाया गया है, वहाँ द्युति और चमक को महत्त्व दिया गया है। हृदय के अनुराग की अभिव्यक्ति जिस रूप में हो, उसी के अनुकूल वस्त्रों को धारण किया है, अतएव आभूषणों में मणियों को स्थान मिला है। रागिनियों ने सखियों के मध्य बैठकर, अथवा एकान्त में प्रिय की प्रतीक्षा करके, प्रिय के विलम्ब से आने पर मान करके, वीणावादन में अपने हर्षातिरेक को छिपा कर, किसी न किसी रूप में सम्भोग और रति-भावना का प्रदर्शन किया है। पुरुष राग काम-केलि में प्रवीण है। किसी न किसी रूप में प्रियाओं के संग क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। सभी हास और विलास में संलग्न हैं। संभोग का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने के लिए 'रति-मंदिर' की योजना की गई है और 'फूलों की शय्या' बनाई गई है।

राग हिंडोल अत्यन्त रागी है।

'झूलत झूला, झुलावति है रवनी कमनी नृप रूप लह्यो है।
काम कुतूहल केलि करै अति कंचन के रंग चीर गह्यो है।
लोनी लसै दुति देह की यों लखि गोत कपोत को लाजि रह्यो है।
वीना लयें कर में रस रीति सो वल्लभ रागु हिंडोल कह्यो है।'"[2]

मध्यमा रागिनी कुछ 'हँस कर', 'प्रीतम' को आलिंगन और चुंबन देकर आनन्दित करती है।[3] वराटी 'कंकण की झनकार' से तो चित्त को चुराती ही है, 'बिथरी सुथरी अलकों' से 'छबीली छवि-रास' को बढ़ाती है। 'श्रोन में सोहते हुए फूलों से प्रिय के चित्त को ललचाती' है।[4] पंभावती 'मृदुल कंठ' से 'कमनीय तान गान' कर के मुस्कुराती हुई

इंदीवर दलहू तें दीरघहि देषे द्रग करि धरि ताल बाल
मृदु मुसक्यानी है।
जिय करि प्रीति हरि वल्लभ यों सुख जीति ऐसी रस
रीति करि भैरवी बषानी है।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।
३. देत आलिंगन चुंबन प्रीतम आनंद, सो जु कछु हसि के।'
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'चोर लिए चतुराचित चोरति कंकन की झनकार सुनावै।
बिथुरी सुथरी अलकें छव रास छबीली अनंद बढ़ावै।
श्रोन में सोहत फूल विचित्र दुकूल बना चित को ललचावै।

'मीठे वचनो' से 'मदन' उत्पन्न करती है।[1] रामकरी 'सब अगा मे जडाऊ आभूषण धारण करके', प्रिय के पैर पडने पर भी मान करने की 'निठुराई' करती है।[2]

देसी अलसाये हुए उनीदे नेत्रो से 'पिउ तन' की ओर मुख करती है, और सुन्दर गान करके 'भावन' को जगाती है।[3] गोरे शरीर पर हरी साडी पहने दीपक की पत्नी 'रति' में 'रति' रखती है।[4] ललित हाथ मे 'फूल छरी लिए प्रवाल की ज्योति का हरण करने वाले लाल वस्त्र पहन कर कमल माल पहने है। रात्रि भर प्रिय के साथ सुख से जगी है अत प्रातः ही मदिर स निकलती है। यौवन की सरिता सी 'ललिता मन म भी मोद और विनोद से भरी है।[5]

राग मालव सब शृगारो के साथ सन्ध्या समय 'रतिमदिर' म 'तिय' का देखकर 'अनग' से छक जाता है और 'तरुनी मुख' को चूम लेता है।[6] टक रागिनी अपने पति मघ मल्हार की प्रतीक्षा म 'पकज की सेज बिछाय धरी' है। चदन, जन आदि द्रव्य से ल विरहाग्नि से तप्त अगो को शीतल कर रही है, 'तभी मनभावन' आकर आदर स मनुहार' करता है। पति को देखते ही प्रिया का दुख भाग जाता है और 'हुलास से भर जाता है।[7] एक स्थान पर सयोग शृगार के रस से मत्त भैरव की रागिनी, बगाली विशेष

ऐसी बराटि बनी हरिवल्लभ, प्रीतम को बहु भाति रिभावें।'
सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

१. 'कठ सुर मृदु कोकिल ते कमनीय तान गान मे प्रवीन
जाने गुन जन को।
मीठे मीठे बैन चित चैन देन कहि कछु मुसक्याइ उपजावत
मदन को।'
सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

२ 'सोने ते लोनो बनो सब अगनि भूषनि भाइ जराइ पची है।

— — —

प्यौ परें पाइनि मानति मान सु नैननि में निठुराई मची है।
सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

३ वही।

४. वही।

५. 'कमनीय कलेवर कुंदन सो छवि सो कर राजत फूल छरी।
पट लाल प्रवाल की जोति हरै नव पकज माल विसाल धरी।
निसि प्रीतम सगि जगी सु तिय प्रात ही मदिर ते निकरी।
अति जोबन की सलिता तन में ललिता मन मोद विनोद भरी।'
रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

६ रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

७ 'विरहानल अंग अनग दही तिय पकज सेज बिछाय धरी।
घनसार गुलाब कि नीर धर्यो सबी सीतल साज बनाय धरी।

रूप में दिखाई देती है, जिसमें भैरव की स्त्री होने के कारण शिव के समान भाल में चन्द्रमा शोभित है। सौन्दर्य में कुछ पुरुष तत्व अधिक आ गया है, जिससे वचन पाषाण के समान हो गए हैं। तिरछे नेत्रों की मार मारती हुई भैरव के रस में मत्त, गोरे रंग की बंगाली रागिनी, वृक्षों के वस्त्र पहने है। शृंगार में योगिनी का स्वरूप सम्मिलित है।[1]

इस प्रकार संयोग शृंगार रस की दृष्टि से राग-रागिनियों के वर्णन में कवियों ने सभी आकर्षक वस्तुओं (वस्त्रों, आभूषणों, द्रव्यों) तथा अनुकूलित वातावरण की योजना की है।

वियोग शृंगार में डूबे हुए राग और रागिनियों का वेष संयोगी राग रागिनियों से भिन्न रहता है। वियोगी, जो अपने प्रिय अथवा प्रिया के विरह से तप्त है, उसे मणि तथा सुन्दर वस्त्रों को धारण करना रुचिकर नहीं होता, अतः आभूषणों की चिन्ता न करके, वे एकान्त में, प्रकृति के किसी ऐसे स्थान पर जाकर, जो उनके भावों के अनुकूल है, स्मृति में आँसू बहाते रहते हैं। अधिकतर पीत रंग के वस्त्रादि धारण किए सुन्दर जान पड़ते हैं, फिर भी उनका 'मुख-पंकज' मुरझाया रहता है। कोकिल के वचन सुनकर हृदय दुखी होता है। हँसी के स्थान पर उदासी आ जाती है। देह दीन, क्षीण हो जाती है, द्युति मलिन पड़ जाती है। केश बिखरे रहते है। वियोग के कारण जागने तथा रोने के कारण आँखें लाल रहती हैं। अपनी वेष भूषा की ओर से उदासीन रह कर प्रिय की स्मृति में दुखी होती रहती हैं।

'पट मंजरी रागिनी,
पी के वियोग बन्यो तन रोग इतो दुष कैसे सह्यो रे सुहागिनि।
बैठि रही सिरु नाइ तिया रज धूसरि आग महा अनुरागिनि।
सूकि गौ हारु कछु न विचारु, सपी समुझावती है बड़भागिनि।
बार लस बिथुरे हरि वल्लभ ऐसे कही पट मंजरि रागिनि।'[2]

कामोदी पीत वस्त्र पहने मुरझाई हुई बोलती रहती है। 'पिक बानी सुनकर प्रियतम का स्मरण हो जाता है', भामिनी भूली सी फिरती है, भवन को देखकर वियोग बढ़

तब ही मन भावन आय गयो अति आदर सौं अनुहारि करी।
पति देपति ही दुष दुरि गयो यह रागनि टंक हुलास भरी।'
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

१. 'गोरे रंग तरु वसन सुभ सेत संग चंदन को लेप अंग सुखद सुढारे हैं।
भाल में लसत चद गज गति चले मंद, अति सुष कंद अंग आरस अपार है।
लागत पपान के पयान ता समान सुर मैन बंक बाननि सों करत सुमार है।
अति मद माती तिय भैरव के रस राती बंगाली सुहाती गुनी गाइयहि वार है।'
राग सागर, भगवान दास 'चंद' कृत, विद्या मंदिर, नाथद्वारा।

२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

जाता है।[1] धनाश्री 'रीति मंदिर' के समीप बाग में जल की शीतलता के कारण आकर बैठती है।[2] ककुभ 'पीत वसन, पहने वन में चातक के बैन सुनकर विलाप करती है।[3]

इस प्रकार संयोग और वियोग भावों के अनुसार वेष-भूषा तथा सजावट में अन्तर हो जाता है।

शृंगार रस के अतिरिक्त कुछ रागों तथा रागिनियों को वीर रस में रंजित दिखाया है। भैरव राग की एक रागिनी सैंधवी वीर रस में रंगी है। मालवकौशिक राग, स्वयं 'वीर रस में मस्त रहता है', परन्तु उसकी पाँचों रागिनियाँ शृंगार रस से पूरित हैं। हिंडोल तथा उसकी अन्य चार रागिनियाँ अनुराग में लीन हैं, परन्तु एक रागिनी 'देसाख' 'वीर रस में छकी' है। दीपक राग की रागिनी, कान्हरा और नट रागिनी में 'वीर रस किलोलें' करता है। श्री राग न तो स्वयं वीर है और न उसकी रागिनियाँ। राग नट कल्याण भी वीर रस की छवि से पूर्ण हाथ में तलवार लिए घूमता रहता है।

वीर रस से ओत प्रोत राग और रागिनियों के शृंगार में उत्साह तथा उत्तेजना की वृद्धि करने वाले वस्त्राभूषणों का उल्लेख तो है ही, इसके अतिरिक्त राग-तत्त्व होने के कारण उनमें यौवन तथा आकर्षण शृंगार-रस पूर्ण रागों के समान ही है।

वीरता का द्योतक तथा उत्तेजक रंग भी लाल है, अतः ये राग लाल रंग के वस्त्र पहने, कपाल की माला धारण किए, हाथ में कृपाण, करवाल और गजदंत लिए सुशोभित हैं। वीरत्व में कुछ मात्रा तक कोप का होना भी आवश्यक है, अतः उत्साह और तेज के कारण 'गुलाल के समान लाल' शरीर वाले, क्रोध से अरुण नेत्रों वाले राग, भाल में टीका लगाए, तुरंग आदि पर सवार रहते हैं। इस शृंगार के साथ वीर रस युक्त राग-रागिनी अपने शरीर की कान्ति के कारण मन्मथ की छवि को छीन लेते हैं। अस्त्रों में त्रिशूल का प्रयोग अधिकाधिक मिलता है, क्योंकि वीर रस युक्त राग का काल्पनिक रूप योद्धा का होता है, उसमें शिव का स्वरूप झलकता रहता है। एक विशेषता इन वीर रसात्मक रागों की यह

---

१. 'पहिरे पट पीत प्रिया तन में जित ही तित बोलत है मुरझानी।
प्रीतम कौं सुमरैं मन में दुख दूनौ बढ्यौ सुनि कै पिक बानी।
भामिनी भूली फिरै बिभई न सुहात है मौन वियोग निसानी।
केस सुदेस लसे हरिवल्लभ ऐसी कमोदिनि भाँति बखानी।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. 'रति मंदिर के ढिग बैठि बाग तहाँ जल सीतलता सरसाय रहे।
तन की तिन पीर मिटावन को तिय बैठि कछू दुख नाहि कहे।'
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

३. 'पीत वसन सुभ के सजसु कानन ककुभा नारि।
मृगया चातक बैन सुनि बिलपति बनह मझारि।'
रागमाला, हरिचन्द्र, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

है, कि ये शरीर से सुन्दर हैं। 'राग' होने के कारण काम-कला में सभी प्रवीण हैं।[१] जीवन के प्रति अनुराग रखने के कारण अपने शरीर को विलास-प्रसाधनों से भी सुसज्जित रखते हैं, अतएव कपूरादि से शरीर को सुवासित किये हैं।[२] भूप का स्वरूप बनाकर 'मैन' की छवि को भी क्षीण कर देते हैं।[३] कहीं कहीं लाल वस्त्र सिर पर पगड़ी, पेच, जड़ाऊ कलगी धारण किए वीर रस से युक्त खड्ग धारण किए इधर उधर डोलते दिखाई देते हैं।[४]

मालव कौशिक युवा है, उत्साह और वीरता से पूर्ण है, धैर्यवान है। हाथ में तलवार लिए प्रवाल की ज्योति हरने वाले लाल वस्त्र धारण किए है, परन्तु कोक कला और रति में प्रवीण है। इस प्रकार तरुणी स्त्रियों का मनोरंजन करता है।

'तन जोबन जोर मरोरनि सो रस वीर छको मन धीर धरै।
कर में करवाल लिए छवि सों पट लाल प्रवाल की जोति हरै।
रति कोक कला परवीन महा द्रग देषत रूप अनूप भरै।
यह मालव कौस अनंग भरो तरुनी मन रंजन रंग करै।'[५]

राग नट वीर रस में छका रणक्षेत्र से हट नहीं रहा है। झुक झुक कर तलवार के घातों से शत्रुओं के 'शीश झराझर झार' रहा है। श्रोनित की धारों से लिपटे हुए वीर नट की 'तन की दुति कुंदन' सी हो गई है। 'उमंग' में भरा हुआ यह वीर, तुरंग पर चढ़ा, 'रण-रंग' अर्थात् रण-क्रीड़ा कर रहा है।[६] राग-कान्हरा 'दाहिने हाथ में तलवार और वाम-भुजा में गज दंत' धारण किए है, 'घन के समान तन की दुति नील' है, उस पर 'उज्जल वस्त्र तथा मोतियों की माला' पहने है। रणभूमि में देवताओं तथा चारणों से अपने कीर्ति-गान सुनकर 'मन में मोद' करता है।[७] देसाष 'तन रोम' में वीर से छकी, अंगों में कपूर का लेप किए, दीर्घ भुजाओं वाली, धैर्यवान, कुछ संकोची स्वभाव की सुन्दर

---

१. 'कंचनते कमनीय कलेवर काम कलानि में कोविद मानो
मातो महारस वीरहि में नित रातै रुचै वसनो जग जानो।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. राग देसाख, संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. वही (राग कान्हरा)।

४. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर। (राग नट कल्याण)।

५. वही।

६. 'रस वीर छकों रन धीर महा भट पेत परो लपि नाहि टरै।
झुकि बाहत हैं कर वाल झरा झरि सत्रुन के कर सीस झरैं।
लपट्यो अति श्रोनित धारन सों तन कुंदन सों दुति लाल धरैं।
नट राग उमंग भर्यो सव अंग तुरंग चढ्यो रन रंग करै।'
राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

७. 'कर दछिन में करवाल लिए भुजा वांम लसे गज दंत धरैं।
तन की दुति नील मनूं घन सी पट उज्जवल माल गरैं:
रस वीर छकें रन भोमि परो सुर चारन के गन गांन करैं।

स्त्री है।[1]

वीर रस के चार भेद, युद्धवीर, दान वीर, धर्मवीर, दया वीर में से केवल एक भेद युद्धवीर का उल्लेख यहाँ मिलता है। युद्ध वीर म अभी तक शस्त्र अस्त्र से सुसज्जित वर्णन अधिक प्रचलित रहा है, परन्तु राग मालाओं में कहीं कहीं 'मल्ल-वीर' के रूप म पहलवानों के समान रागिनी दिखाई देती है, जिससे विचित्रता का समावेश हो जाता है। राग देसाप का वीर स्वरूप इस प्रकार है।

'दीरघ स्यर रोमाच तनु बाहु प्रचड विशाल।
उडपति छवि देसाप की मल्ल भेष सुविशाल।'[2]

इसके अतिरिक्त वीररस का एक नवीन रूप इन रागिनियों के स्वरूप म प्राप्त होता है, जो अन्यत्र नहीं दिखाई देता। इसे 'प्रेम-वीर' के नाम से पुकारा जा सकता है।

प्रेम-वीर मे नायिका रागिनी वीर रस का वेष धारण किए है, परन्तु उसके हृदय मे अत्यन्त अनुराग है। प्रिय को रिझाने के लिए उसकी पूजा मे भी रत है और दूसरी ओर वीरता के कारण क्रोध भी उपस्थित है। दो विरोधी तत्वों का एक रागिनी के रूप मे समावेश किया गया है। मूल रूप मे उसके हृदय म प्रेम है, जिसके कारण आराधना भी करती है। पूजा के साथ ही क्रोधित भी होती है। पुष्प तथा त्रिशूल दोनों को धारण करती है। शृंगार के लिए उस पुष्प को चुनती है, जो उत्साह-वर्द्धक लाल रग का हो। भैरव की रागिनी सैंधवी प्रेम-वीर की वेष-भूषा मे है।

'अति लाल लसैं दुति अम्बर की, तन म तरुनाई कछू सरसे।
छवि सो धरि कानन बधुक फूल त्रशूल सदा कर सौ परसे।
सिव पूजि धरी तिय क्रोध भरी मुख पै रस वीर मनु बरसे।
यह सींधवी मन मरोरन सौं मन मैं पिय मारग को दरसे।'[3]

यह सारी रसात्मकता रागों के स्वरूप वर्णन में ही मिलती है। जहाँ तक इनके गेय रूपों का सम्बन्ध है, ये प्रभाव में विशेषरूप से कोमल ही हैं, परुष नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र बहुत कुछ अपने युग को प्रतिबिम्बित करने वाले हैं, जिनमे शौर्य और ललित कलाओं का बहुत सुन्दर समन्वय रहा है। तत्कालीन सामन्त और उनकी रानियाँ दोनों ही युद्ध में भाग लेते थे। इन चित्रों से उस युद्ध प्रियता का परिचय स्पष्टतः मिलता है। साथ ही जीवन के वैभव और सुख विलास का पक्ष भी उभर कर सामने आ जाता है।

शृंगार युक्त वेष भूषा और वीर तथा ओजपूर्ण शृंगार के अतिरिक्त कुछ राग और

अपनी जब कीरति कान सुनै तब कानरे को मन मोद करै।
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

२. रागमाला, हरिश्चन्द्र, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३. राग-रत्नाकर, राधा कृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

रागिनियाँ शान्त रस के अनुसार वेष धारण किए प्राप्त होते हैं।

शान्त रस के रागों में राग भैरव, उसकी रागिनी बंगाली, राग दीपक की रागिनी केदारा और मेघ राग की रागिनी भूपाली का वर्णन है।

शान्त रस के अनुसार शृंगार करने में राजसी वस्तुओं का निराकरण किया है, अतः शरीर में भस्म का लेप, नागों के आभूषण, सिर पर जटा धारण किए, कानों में कुंडल, त्रिशूल हाथ में लिए, डमरू बजाते हुए पुरुषों को वेष्टित किया है, जो शिव ही का योगी रूप है। स्त्रियों ने जटा के स्थान पर खुले केश रखे हैं, वृक्षों की छाल के वस्त्र पहने हैं, नागिनी के आभूषण धारण किए हैं।

भैरव का स्वरूप है
'लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति कुंडल
श्रवन सुप गोर बरन।
जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चंद्रमा लिलाट
सेत बसन बरन।
सोभित त्रिनैन सूल अभै कर डमरू बजावत व्याप्त
उर प्रिया करन।
कंवल अस्त्वर गान करेंगी व पूरन प्रकास दास
दोष हरन।'[1]

बंगाली रागिनी सुकुमार तन की होने पर भी 'ब्रह्मसूत्र मुंजी धरैं' और 'वलकल चीर बनाई, सुभग वेष' बनाए है।[2] केदारा भी योगिनी का रूप धारण किए है। सिर पर जटा तथा जटा पर शशि की ज्योति तथा गंगा की तरंगें शोभित हैं। शरीर पर नाग लपेटे हैं। योग का आसन धारण किए 'दृग-तारों' को एकाग्र कर समाधि लगाए बैठी है। यह वास्तव में पुरुष रूप है, पर स्त्री रागिनी के लिए भी यह वेष कवि ने उचित समझा है।[3] आसावरी, 'मलयागिरी के वन में, गले में गज मोतियों के हार पहने, मोर पंखों की सारी पहने, चंदन के द्रुम से नागों को कर में लेकर, पुष्पों का गजरा गले में डाले हुए श्याम घटा के समान शरीर वाली देह की कांति से ही दीप्त हो रही है।[4] भूपाली भी शांत रस में डूबी है, परन्तु भूपाली का शृंगार विचित्रता रखता है। यह शांत, वियोग शृंगार के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ शान्त रस, वियोग शृंगार के परिपाक का कारण बन जाता है और रागिनी को प्रेम की इन्द्रियातीत स्थिति में पहुँचा देता है। कवि भूपाली को प्रिय के विरह में अत्यंत डूबी रहने के कारण 'शांत रस में ढरी हुई' बताता है। हृदय में प्रेमाधिक्य के कारण, शान्त रस, उसे दुःख में भी आनन्द की

१. राग-निरूपण, पूर्ण मिश्र कविरागी, सरस्वती भण्डार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वही।
४. वही।

अनुभूति प्रदान कराता है। कवि नायिका की स्थिति में जड़ता आ जाने के कारण शान्त रस का वर्णन करता है, अतः ऐसी दशा में शृंगार प्रसाधनों का शृंगार और शान्त दोनों के अनुकूल प्रयोग किया गया है।

'चम्पक तैं चारु देह भरी अति पिय नेह अंग
अंग काम ग्रेह अधरन लालो है।
कुंकुम की धौरि धुलि रही है कुचनि पर मंद गति
देखि लजि रहति मराली है।
सांत रस मांह ढरी चित अति दुख भरी
उर आनि लगत विवोग बान भाली है।
नैन हर वल्लभ लसत इंदीवरहू ते आली संग
साहत यो राग भूपाली है।''[1]

अधिकांश रूप में भूपाली वियोगिनी ही मानी गई है। यहाँ शान्त रस मन्द आने के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

राग और रागिनियों के शृंगार (सजावट) का तीसरा विभाजन संस्कृति के आधार पर किया जा सकता है। शृंगार प्रसाधनों के रूप में प्रयुक्त सामग्री में दो संस्कृतियों का समावेश है।

(१) आर्य संस्कृति
(२) विदेशी संस्कृति

विदेशी संस्कृति में ईरानी, अरबी और फारसी तीनों का समन्वय है।[2]

संगीत काव्यकार तत्कालिक प्रचलित सौन्दर्य प्रसाधनों की सहायता से अपने रागों को सजाते हैं। सामान्य रूप से शृंगार के लिए प्रयुक्त सामग्री में कोई भेद नहीं किया जा सकता। यदि आर्य संस्कृति के अनुसार शरीर में चदन और कपूर का लेप किया जाता था, तो मुगल संस्कृति में भी नायिका को 'खुशबुओं' से बसाया जाता था। केशों को सँवारने में तेल का प्रयोग दोनों ही में होता था। दोनों में मणियों के जड़ाऊ आभूषण तथा स्वर्ण खचित वस्त्र पहने जाते थे।

कुछ वस्तुओं में दोनों संस्कृतियों में भिन्नता भी प्राप्त होती है। आर्य संस्कृति के अनुसार पुरुषों के सिर पर पाग[3], योगी रूप में शिव का स्वरूप, जटा, चन्द्रमा, मृग छाल

---

१ संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
२ यहाँ विदेशी संस्कृति के अनुसार प्रयुक्त उन वस्तुओं को लिया गया है, जिनको भारत में आकर विदेशियों ने अधिकतर जीवन में स्थान दिया।
३ 'ललित मारु युत पंकज नैन कुसुम पाग मुख रंग'।
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

अथवा वल्कल का प्रयोग, कानों में कुण्डल,[१] सिर पर मुकुट, तथा पीले वस्त्र आदि का प्रयोग होता है। जनेउ का भी प्रचार है।[२]

स्त्री रूप में केशों को सँवारने की विविध प्रणालियाँ आर्य संस्कृति की देन हैं। शीश में फूल टीका के रूप में जड़ाऊ आभूषण,[३] माथे पर बिंदी[४] नासिका में 'जराऊ लवंग',[५] हाथी दाँत की बनी हुई वस्तुएँ (चूड़ी आदि)[६] मुख में ताम्बूल,[७] ये सब आर्य संस्कृति के अनुसार पहनाई गई हैं। माथे की बिंदी कवि के परम्परा प्रेम के कारण लाल और श्याम रंग की लगाई गई है।[८]

मुस्लिम संस्कृति के अनुसार रागिनियों की नासिका के मध्य भाग में पहना हुआ आभूषण बेसर,[९] वस्त्रों में इज़ार (सलवार के समान एक वस्त्र जिसके पांयचे, पजामे के समान खुले होते हैं, स्त्रियों का वस्त्र है) का प्रयोग कराया गया है। एक विचित्रता जो इस संस्कृति के अनुसार आई है, वह यह कि राजसी ऐश्वर्य में मग्न 'तुरक तोड़ी' रागिनी मदिरा का पान करती दिखाई गई है।

'अंग लसे भूषन वसन तुरकाने की रीति
कहै तुरक तोडी यहै पिये सुरा करि प्रीति।'[१०]

रागिनी तुरक-तोडी ही इन कवियों के अनुसार शुद्ध तुर्क है। वही लहँगे के स्थान पर इज़ार पहनती है—

'पट केसरियां पिसवा ज़हरी मग लाल इजार सुगंध सनी।'[११]

---

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ; राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण तथा अन्य सभी रागमालाएँ।
२. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वही।
४. 'मृगमद बिंद ललाट पर मृग नैनी मुष चंद।
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'श्री लवंग नासाकरण पुटि लापु भी जराव।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. बांह चूड़ गज दंत छवि गूजर चला प्रभात।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. 'तोडी मुष तंबोल रंग गावत गुन गोपाल।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
८. 'श्री सुंद्र अंग भरी छवि स्यामल बिंदु बीराजत टोडी।'
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
९. 'स्वेत वसन बेसर झलकमति गुनकरी सुजान।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
१०. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
११. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

तुरंगमस्कंधनिबद्धरागः शोणप्रभाशोभितशोणगात्रः ॥ श्यामतनुर्मे
विचरन्धृतासिर्नेटोपमुक्तः किल माध्यमेन ॥१४॥

राग लंग मालवा शैली

(स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

हिन्दू संस्कृति में जो चौसठ कलाएँ वर्णित हैं, उनका प्रयोग इन रागमालाओं में पाया जाता है।

रागों तथा रागिनियों के शृंगार (सजावट) में स्पष्ट रूप से चित्रकला का प्रभाव है, अतः चित्र-शैलियों की दृष्टि से इनका चौथा विभाजन किया जा सकता है। 'मुगलकालीन चित्रों का तत्कालीन कविताओं पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा इसका मुख्य कारण मुगल सम्राटों की चित्रकला प्रियता थी।'[1] इन रागमालाओं का शृंगार वर्णन लगभग चित्रों ही के समान है, तभी इनमें चित्र शैलियों के अनुसार उनका स्वरूप, शरीर के भिन्न अवयवों का वर्णन तथा उनकी सजावट वर्णित है। इस दृष्टि से चित्र शैलियों के अनुसार अनेक विभाग किए जा सकते हैं, उदाहरणार्थ—

१—मालवा शैली	५—जयपुर शैली	
२—मुगल शैली	६—कांगड़ा शैली	
३—राजपूत शैली	७—बीकानेर शैली	आदि
४—बूँदी शैली		

मालवा शैली के अनुसार नायिका का गौर वर्ण, शरीर से चिपटा हुआ वस्त्र, जिससे अंगों का उभार स्पष्ट हो जाए, सोने के आभूषण, माथे पर बिन्दी, बाल छीटे तथा सुने हुए बनाए जाते हैं। रागिनी देसकार का वर्णन मालवा शैली में कवि करता है—

'कंचन सो गात तामें चदन चरचि राख्यो,
फैल्यो है प्रकास मुख चंद की उजारी को।
कारे सटकारे अति सोभित सुदेस केस
मोतिन की माल भाल व्यंदा छबि भारी को।'[2]

इस प्रकार रागिनी का वर्णन मालवा शैली के अनुरूप जान पड़ता है।

मालवा शैली के अनुसार बने हुए राग नट के चित्र से कवि का काव्य चित्र कितना साम्य रखता है—

'सोने के लोने बने सब अंग तुरंग चढ़्यो रन रंग में डोन।
लाल गुलाल सो लौहू लग्यो तन वीर महा रस माहू कलाने।'[3]

जयपुर शैली में बहुत सुन्दर शृंगार किया जाता है। श्वेत मोती के आभूषण सभी अंगों में पहनाए जाते हैं। एक सखी नायिका को दर्पण दिखाती है, उसमें देखकर नायिका शृंगार करती है। इसी से प्रभावित गांधार रागिनी का जयपुर शैली का काव्य चित्र इस प्रकार है—

'गंधार धुमा तनु स्याम मुकर लए साजे सकल शृंगार।

---

१. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ २४।
२. रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर। देखिए चित्र राग नट, मालवा शैली।

गावत हरि रस मन मगन सघन केश गंवार।"[1]

अथवा जयपुर शैली के कुछ चित्रों में नायिका या सखी हाथ में तोता लिए दिखाई जाती है। कहीं कहीं कवि ने ऐसा वर्णन भी किया है—

'देशकाल मिल कंज द्रिग गोर सुभूषन अंग
हरित वशन कर शुक सुघर भोर विभास सुरंग।'[2]

इस दृष्टि से देखने पर इन राग-चित्रों का लगभग सभी चित्र-शैलियों के अनुसार विभाजन किया जा सकता है।

रूप-वर्णन

वस्तु वर्णन के पश्चात् राग-रागिनियों का जो स्वरूप अंकित है, उनका रूप-वर्णन की दृष्टि से भी विचार करना होगा। उदाहरण-ग्रन्थों में जहाँ आलम्बन के रूप में कृष्ण और राधा अथवा साधारण नायक तथा नायिका को लेकर वर्णन किया गया है, वहाँ अन्य शृंगारयुगीन काव्यों के समान रूप-वर्णन में नख से शिख तक का सूक्ष्म वर्णन प्राप्त है। रागों तथा रागिनियों का भी रूप-चित्रण उसी प्रकार होता है। शास्त्रीय रीति पर नख से शिख तक का वर्णन एक ही स्थान पर नहीं प्राप्त होता, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य रागों का स्वरूप चित्रित करना है। इस काव्य में आंशिक रूप में नख-शिख वर्णन पाया जा सकता है। यह रूप-चित्रण अधिकतर, पारंपरिक मान्यताओं के आधार पर है। कुछ चित्र शैलियों से प्रभावित हैं, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। शरीर का वर्णन करते समय केश, माथा, नेत्र, कपोल, चिबुक, ओंठ, ग्रीवा, वक्षःस्थल, हाथ, कटि तथा चरण को लिया गया है। अधिकतर नासिका का चित्र कवियों ने अंकित नहीं किया। नासिका के आभूषण 'लवंग' को ले लिया गया है। यह मानना पड़ता है कि इन संगीत-काव्यकारों की रुचि रूप-वर्णन से अधिक वेष-भूषा के वर्णन में है, अतः जो विस्तार अलंकरण को प्राप्त हुआ है, वह रूप को नहीं। रूप का यह सीमित चित्रण केवल रागमालाओं में है, उदाहरण काव्य इसकी पूर्ति कर देता है।

केशों के शृंगार में पुरुष राग तथा शांत रस-युक्त रागिनियों में जटा बाँधने का प्रचार है।[3]

मुख चन्द्रमा के समान,[4] कपोत के रंग का,[5] पंकज के समान है।[6] विशाल नेत्र

---

१. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. वही।
३. भैरव राग, राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. राग गोरी, वही।
५. राग हिंडोल, वही।
६. राग कामोद, वही।

राग दरबार—जयपुर शैली
(स्टेट म्यूजियम लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)
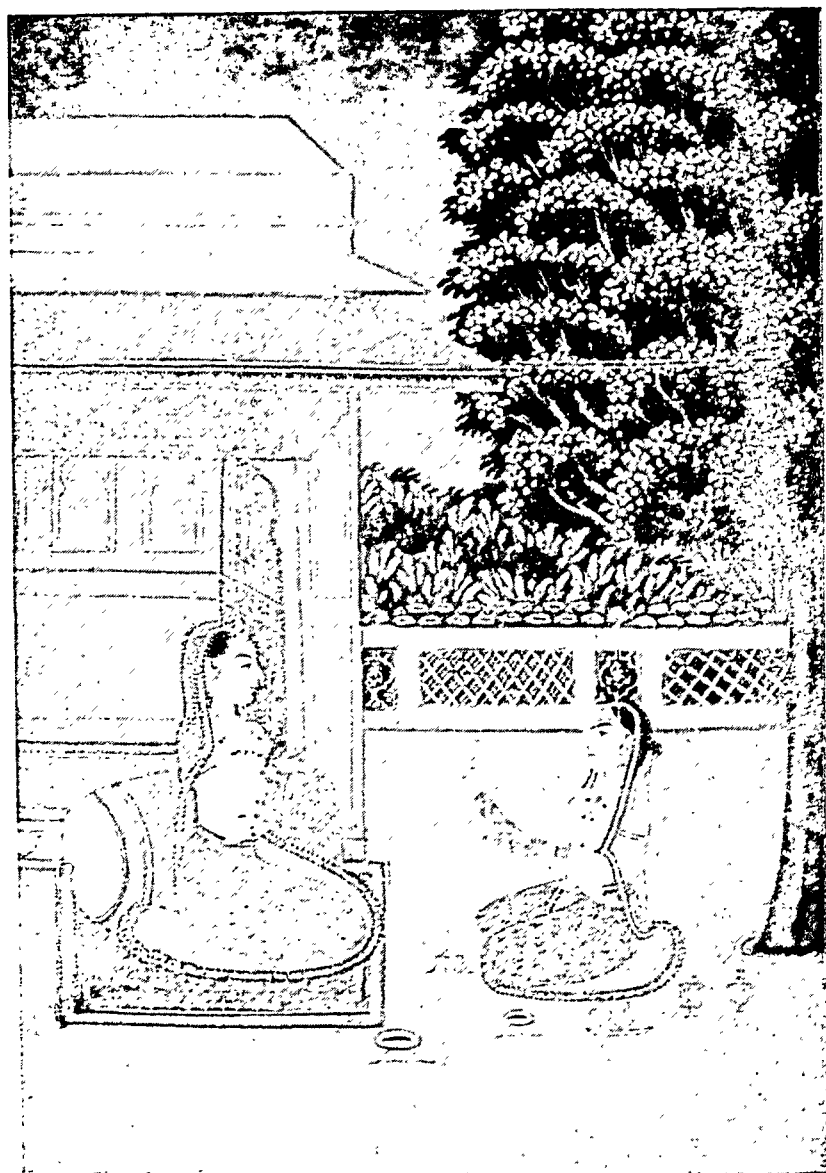
राग सारंग—जयपुर शैली
(स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

और पंकज के समान,' कभी उनींदे, अलसाए हुए, सुन्दर चिबुक, विशाल हाथ, श्वेत अम्बर के भीतर 'उनग उरोज' आदि अंगों का यद्यपि अलग अलग वर्णन हुआ है, परन्तु कवि की दृष्टि सदैव सम्पूर्ण शरीर की कांति युक्त सुन्दरता की ओर लगी है। परिणाम स्वरूप एक या दो अंगों का वर्णन करके, 'तन की दुति' को कुंदन, चंपक, कंचन, घन, दामिनी आदि के समान बताया है। शरीर मंजु, मनोहर, यौवन से पूर्ण, अनंग से भरी छवि तथा तरुणाई लिए हुए है। वीर रस से पूर्ण तन 'गुलाब सा लाल भी है'।

एक विशेषता जो इस वर्णन में आ जाती है, वह यह कि संगीत-काव्यकार का उद्देश्य *नायिका भेद या नख शिख वर्णन न होकर राग तथा रागिनी का काव्य-चित्र प्रस्तुत* करना है, अतएव, उपमान, अंगों के आकार सौन्दर्य की दृष्टि से नहीं ढूंढे गए, वरन् भाव सौन्दर्य के प्रदर्शन के हेतु रखे गए हैं, फलस्वरूप कवि नेत्र का वर्णन करते समय मृग, खंजन, पंकज आदि को अधिक महत्त्व नहीं देता, वरन् 'हास विलास मयी नित ही छवि लोचन की सबको सुख साजें', कहकर सन्तुष्ट हो जाता है। केशों का सौन्दर्य नागिनी के समान है अथवा घन-समूह से, इसकी चिन्ता इन कवियों को नहीं है, इनके लिए 'वियोग में भूली हुई सी, भवनों में घूमती हुई रागिनी के केशों में विशेष सौन्दर्य आ जाता है।'

'भामिनि भूली फिरै विभई न सुहातु है
मौन वियोग निसानी।
कंग सुदेस लसैं हरि वल्लभ जैसी कमोदिनि
भानि बखानी।'[1]

इसी कारण वश कवि *सदैव यह बताने का प्रयास करता है कि राग के सम्पूर्ण शरीर* की द्युति किस प्रकार बढ़ रही है। श्री राग 'मैन का मन मोहने वाला,' 'बैस किसोर मनोहर मूर्ति' का है।[1] मेघ मल्हार की 'देह-दीप्ति' है, और छवि अत्यन्त उज्ज्वल है, चन्द्रमा की उजियारी से भी अधिक है। राग देसकारी का प्रत्येक अंग सुन्दर है, परन्तु रागतत्त्व के कारण अंगों में आकर्षण आ गया है।

'प्रीतम के साथ केलि कौतुक करति अति
कारे सटकारे केस छवि होनि भारी है।
सरद सपूरण सुधाधर की सोभा जोति वदन की दीपति
दिपति उज्यारी है।
अंग अंग राजति अनंग भई अद्भुत कुचनि सों
कंचा कलस दुति हारी हैं।
कमल से नैन हरिवल्लभ है सुध दैन मृदु बैन

---

१. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वही।

बोलति यों राग देसकारी है।"[1]

राग-रागिनियों के सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त जो उदाहरण ग्रंथ हैं, उनमें नख-शिख वर्णन भी प्राप्त है। उसमें प्रयुक्त उपमानों में विविधता तथा चित्रोपमता भी है। अन्य रीतिकालीन काव्य के समान सभी विशेषताएँ प्राप्त हैं।

इस दृष्टि से रूप-वर्णन के दो भेद प्राप्त होते हैं।

१—संवेगात्मक

२—संवेदनात्मक

संवेगात्मक रूप-वर्णन का अर्थ है, जिस रूप वर्णन में ऐन्द्रियता अधिक हो। इसमें नख-शिख वर्णन सम्मिलित है।

संवेदनात्मक रूप वर्णन में हृदय के भावों के अनुसार शरीर के अवयवों का वर्णन किया जाता है।

इस दृष्टि से देखने पर हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त वर्णित राग-रगिनियों का रूप-चित्रण अधिक संवेदनात्मक और कम संवेगात्मक है, परन्तु उदाहरण-ग्रन्थों में वर्णित रूप में संवेगात्मकता अधिक है और संवेदनात्मकता कम है। दो एक उदाहरण कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त होंगे। जवानसिंह जी कृत 'रस तरंग' में एक लम्बे गीत में कृष्ण का नख-शिख वर्णन किया गया है। 'छबीली अलक सोंधे बोरी', मानों चँवर सा फहराती हैं। 'वंक रसीली भृकुटी' की शोभा अच्छी लगती है। 'कुरंग के समान रसमाते नैन' 'छवि ले चलते हुए सुहाते हैं, 'पंजर मीन विलोकते ही मन चुरा कर ले जाते हैं,' 'सुंदर विमल कपोल मन को ललचाए' रहते हैं। 'रूप के कूप, चिबुक, कवि के दृग-मीन को लुभाते हैं। 'कठहुलरी की सुषमा' बहुत सरस है और इसी प्रकार कृष्ण का मोतियों का जड़ाऊ हार, किंकिणी, नूपुर, पैंजनि, चरण सभी में कवि (जो राधा रूप में है) का हृदय रमने लगता है।[2] 'कृष्ण का अलंकरण से पूर्ण वर रूप ही कवि को मोहित कर लेता है। अंगों के सौन्दर्य में ही वह ऐसा रम जाता है कि उसे सादृश्य-मूलक उपमानों तथा काव्यालंकारों की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्णन की ऐसी सरलता में भी एक विशिष्ट सौन्दर्य निहित है।

---

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. अरी यह छैल रंगीलो नागर खेलत सरस सुहाय।

अरी यह रंजित सुभग सांवरो हेली। मोतिन निरखि लुभाय।

अरी यह अलक छबीलो सोंध बोरी। आली। प्यारी। मेंनहू चवर फहराय।

अरी यह भृकुटी वंक रसीली की सोभा। आली। प्यारी दरसत है इहि भाय।

अरी यह नैन कुरंगन से रसमाते। आली। प्यारी। छवि सों चलत सुहाय।

अरी यह पंजर मीन विलोकन। आली। प्यारी। मन लै गयो है चुराय।

अरी यह विमल कपोलन सुन्दर। आली। प्यारी। मो मन रह्यो ललचाय।

अरी यह चिबुक रूप के कूपहि। आली। प्यारी। मो दृग मीन लुभाय।

अरी यह कठहुलरी की उपमा सुषमां। आली। प्यारी। नींकी सरस सुहाय।

अरी यह पदिक सोंहने पन्नन। आली। प्यारी। मोतिन हार जराय।

'लाडलो वनो जो म्हारो नवण पनो।
दृग अनियारो अजन सोहैं लटकी अलक फलाइ।
कुमकुम पोर सवार सजीलो भौहैं नवल बनाह।
हारह मेल वसन तन मोहे, भूषण रतन धनाह
अग अग सोभा कही न जावै मोहे नवल बनाह।
सेंधों सरस सवार छवीलो मुप छबि सो लो नाह।
सरस रसीली वक विलोकन तन घर स्याम बनाह।
मसि भी नासा टूंना की छबि लपि मन मथ लई पनाह।
लपि निहारी नैन सिहावें मन वस कियो बनाह।
हरपि निरपि मैं मगन भई है पड़्यो कछु टोनाह।'

प्रकृति वर्णन

प्रकृति काव्य की मूल प्रेरणा है, यह एक निर्विवाद तथ्य है। सदैव से ही प्रकृति ने पूज्य, समान तथा लघु बनकर कवि के इगितो पर नृत्य किया है, अत प्रकृति का स्वरूप कवि की धारणाओ तथा भावनाओ के अनुरूप होकर काव्य म चित्रित होता रहा है। काव्य के आरम्भ काल से वर्तमान काल तक प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। कही आलम्बन रूप मे, कही आध्यात्मिक शिक्षिका के रूप मे तथा कही पृष्ठ भूमि के रूप में वर्णित है। कहीं आलकारिक चमत्कार का प्रदर्शन करती हुई कहीं कवि के भावो के अनुरूप सवेदनात्मक रूप म तथा कही छायावादी, रहस्यवादी तथा प्रगतिवादी कवियो के काव्य मे समयानुकूल वेष धारण करके उपस्थित होती रही है।

शृगार-युगीन सगीत काव्य म वर्णित प्रकृति के प्रधानतया दो रूप उपलब्ध होते है।

१—उद्दीपन रूप
२—आलकारिक रूप

नाना भावों तथा रसो की उद्दीप्ति म सहायता प्रदान करने वाला प्रकृति का रूप उद्दीपन की श्रेणी मे आता है। इस वर्ग का प्रकृति-चित्रण सगीत-कवियो म प्रचुरता के साथ दृष्टिगत होता है। उद्दीपक प्रकृति कभी पृष्ठभूमि की सज्जा करती है, कभी वातावरण की सृष्टि करती है, कभी भावोत्कर्ष मे सहायक होती है।

अरी यह किकिन मदन बधाई को। आली। प्यारी। सो बदन वार बधाय।
अरी यह नूपुर पंजनि नीलम। आली। प्यारी। जटित जराव बनाय।
अरी यह मनहु मनोभव डरपि शभु सों। आली। प्यारी। चरन रह्यो लपटाय।
रसतरग, जवान सिह जी, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर। मुनि कांति सागर-सग्रह, उदयपुर।

१. रस-तरग, जवानसिह जी महाराज, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

आलंकारिक रूप विभिन्न दृश्यों तथा आलंबनों के रूपोत्कर्ष, चित्रात्मकता तथा नाटकीयता का प्रदर्शन करने में सहायक होता है। सादृश्यमूलक तथा विषमतामूलक दोनों प्रकार के अलंकारों में इसका प्रयोग होता है।

इन रूपों में कवियों ने प्रकृति के दोनों रूपों जड़ तथा चेतन दोनों को लिया है। जड़ प्रकृति में वृक्ष, गिरि, मेघ, सरिता, पवन, पुष्प, पल्लव तथा शाखा आदि का वर्णन है। चेतन प्रकृति में पशु तथा पक्षियों को लिया गया है।

अधिकतर प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में ही प्राप्त होता है। पृष्ठभूमि की सज्जा करना प्रकृति का धर्म ही है। कवि को जो भी वर्णन करना है, उसके अनुरूप प्रकृति का रूप दिखलाता है, जिसके कारण आगे आने वाले चित्रण में सौन्दर्य की वृद्धि हो जाती है। पाठक वर्णित रस की अनुभूति के लिए अपने हृदय में पृष्ठभूमि बना लेता है, जिसके फलस्वरूप साधारणीकरण को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, संगीतकाव्य में इसका विशेष महत्त्व है। उदाहरण रूप में लिखे गए गेय पदों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि गायक अपने गीत अथवा पद से श्रोता को प्रभावित कर ले।

पृष्ठभूमि की सज्जा

कवि की संकेतात्मक अभिव्यक्ति के कारण पृष्ठभूमि के रूप में वर्णित प्रकृति का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ जाता है। राधा और कृष्ण के मिलन का दृश्य सरस बनाने के लिए, कवि फागुन के महीने का 'मुकुलित वन अरु मालती' 'फूले तमाल', भ्रमरों के गुंजन के साथ 'जुही निवारी केतकी', पिक तथा भौरों के शोर के साथ, सोन, जुही और मल्लिका कदली, कदम्ब, फूले कमल आदि का पृष्ठभूमि के रूप में आश्रय लेता है। साथ ही प्रच्छन्न रूप में इसके भीतर जिन संकेतों की ओर कवि इंगित करता है, वह शृंगार युगीन काव्य की विशेषता है। कृष्ण की सखी दूती बनकर राधा से कहती है कि 'छबीली री यह रितु ओसर फाग के यह गन्यो कहा अयान री।' श्याम तुम्हारे बिना छिन भर भी धीर नहीं धर सकते। प्रकृति किस प्रकार आकुल बना रही है। तमाल वन और फूली हुई मालती का वर्णन कर, सखी यौवन की आकांक्षा का संकेत देती है, जुही केतकी पर भ्रमरों के गुंजन से प्रिय के गुंजन की इच्छा का संकेत करती है। कदली और कदम्ब झुक झुक कर जल-तीर का स्पर्श कर रहे हैं, यह प्रकट रूप में प्रकृति वर्णन है, पर प्रच्छन्न रूप में कृष्ण के स्पर्शेच्छा का संकेत है।

राग सारंग धमार

'रंगीली री तुव मुष चंद चकोर वह यह देषै बिन अकुलाय री।
छबीली री मुकलित वन अरु मालती सो फूले सबै तमाल री।
रंगीली री जुही निवारी केतकी जहां भ्रमरन की अति गुंज री।
छबीली री सोंन जुही अरु मल्लिका तहां पिक मोरन को सोर री।
रंगीली री कदली अंब कदम्ब हू यह झुकि परसैं जल तीर री।
छबीली री फूले कमल तनजा जहां कुमुद भए बृज चन्द री।'[1]

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

इतना प्रकृति वर्णन करने के पश्चात् सखी राधिका से अनुरोध करती है कि 'तुम मान तजो और हरि को जाकर भेंट लो, वह तुम्हारा पथ निहार रहे हैं। फागुन के समय का विचार करके, रग भरे चलकर भेंट लो।' यह सुन कर राधिका उठ जाती है और कुञ्ज द्वार पर हँसकर भेंट करती है। कृष्ण जो 'मिलन के लिए अकुला रहे थे, भुजा के पास ले आते हैं और अनुराग से मिलते हैं।'

'रगीली री मान तजो हरि भेंटिये वह तव पथ रह निहार री।
छबीली री गिरधर मेघ बरन से तू दामनि निहार री।
रगीली री वह तन स्याम तमाल है यह लपटनि किन छवि बलि री।
छबीली री कुज महल चलि भेंटिये जहा नागर नदन नद री।
रगीली री रग भरे किन भेटिहौ यह फागन समय विचार री।
छबीली री यह सुनि उठि चली भावती, जहा प्रीतम नवल किसार री।
रगीली री कुज द्वार हसि भेंटि के यह गहि लीनी भुज पास री।
छबीली री नगधर के अनुराग सौं यह मिलि है आय अकुलाय री।'

यह स्पष्ट है कि यदि इसी मिलन का वर्णन उपरिलिखित पृष्ठभूमि स्वरूपा प्रकृति वर्णन से रहित होता तो इसके भीतर छिपी व्यथा की अनुभूति पाठक को नहीं हो सकती थी।

दृश्य को सुन्दर तथा प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए जो प्रकृति वर्णन हुआ, उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है।

'धुवपद। राग सारग चौताला।
मजर फूल तैसे ही फल फूर। अस्ताई।
कलिया विकास पनवा दुहरी से नीके सोहत मूल।१।
पल्लव मृदु तर सोहत डारन म सरसी साखा अकुरेन।
बीने मन्जुल तैसो भूर।
जैसे ब्रजवलि के कुंज म झूलै रह है दोउ भूल।'[2]

वातावरण

वातावरण की सृष्टि करने मे सगीत-काव्य की प्रकृति ने बड़ी सहायता की है। कवि पाठक को स्वय अनुभूत रस की अनुभूति कराने के लिए पृष्ठभूमि के रूप म प्रकृति का यथातथ्य वर्णन करता है, परन्तु मादक वातावरण की सृष्टि के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रकृति का प्रकृत रूप ही सम्मुख आए। वर्णन के बीच बीच म प्राकृतिक वस्तुओं का आश्रय लेकर कवि वातावरण अनुकूल बना लेता है। घटाओं का अकस्मात् घिर आना, बूंदों का गिरना, पक्षियों का बोल उठना, मृगों का ठगे से रह जाना, पवन का मन्द होकर बहना, नदी का बहते रहना, वृक्ष की छाया तथा कुंजों का वर्णन, ये सब वातावरण के सृष्टा हैं। रागिनी पहाड़ी 'मैन छबरे सखियों के मध्य बैठी बीना बजा रही है', वहाँ कवि 'मलयागिरि

---

१. रस-तरग, जवानसिंह जी पुरातत्व मदिर, जोधपुर।
२. 'ध्रुपद और ख्याल, मान सिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

की कदम्ब की छांह' का वर्णन करके वातावरण को शीतल बना देता है,[1] त्रवणी रागिनी 'लाल दुकूल पहने हार गले में पहने सुकुमार तन से कदली की छांह में बैठी रहती है' तो दिन भर की गर्मी के पश्चात् पेड़ की छाया में जो विश्रांति प्राप्त होती है, उसकी अनुभूति होती है। इस राग को गाने का समय तीसरा पहर है।[2] यहाँ प्रकृति के शान्त तथा स्निग्ध वातावरण का चित्रण है। झूला झूलते समय जमुना के किनारे लता और तरुओं का झमना झूले की आनन्दानुभूति के लिए अनुकूल वातावरण बना देता है।

देखो रंग हिंडोरे झूलनि।
झूमि झूमि झुकि रहे लता तरु श्री जमुना के कूलनि।[3]

कुंजमहल की ओर मधुर मुरली को सुनते हुए राधिका सखियों के साथ जा रही है, तभी बीच में 'मोर कुहुक' उठते हैं, जिनसे और भी अधिक बरसने लगता है।[4] 'शरद की खिली जुन्हाई, वृंदावन में यमुना के तीर पर राधा की छवि और प्रफुल्लित तरु-वल्ली-सोभा' को देखकर ही कृष्ण राधा को रास करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

'सरद की निर्मल खिली जुन्हाई।
वृंदारण्य तीर यमुना के राका की छवि छाई।
प्रफुलित अरु-वल्ली सोभा लखि रास करन सुधि आई।
'ब्रजनिधि' ब्रज जुवतिन मन-मोहन मोहन बेन बजाई।'[5]

भावोत्कर्ष

प्रकृति हृदय में उठने वाले नवों स्थायी भावों को उद्दीप्त कर रस में परिणत करने में सहायक होती है। प्रकृति का ऐसा वर्णन काव्य में अत्यन्त प्रचलित है। संयोग में नदी, वन, तरु, पल्लव, पुष्प, कीर तथा मोर आदि के साहचर्य से सुख प्राप्ति और वियोग में इनके प्रसन्न दिखाई देने पर नायक अथवा नायिका को पीड़ा का अनुभव शृंगार कालीन

---

१. 'तिय मेंन छकी मलयागिरि की कदम्ब की छांहि विराजि रही।'
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. '————————————
तीनि प्रहर में गाइये त्रवीनि दिवस प्रवीन ।४०।
बैठी कदली छांह में कर सरोज को फूल
हार गरे सुकुमार तन त्रवणी लाल दुकूल ।४१।'
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, प्रतापसिंह जी महाराज, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २१०।

४. 'कुंजमहल की ओर सुनियत मधुर मुरलिका घोर।
रस बरसत घनस्याम मनोहर कुहुक उठे री मोर।'
ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०८।

५. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृष्ठ २०६।

काव्य मे विस्तार से वर्णित है। शृगार काव्य के उदाहरण-काव्य मे भी प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है।

दीपक राग नायक के रूप मे रति के समान रमणियो के सग केलि क्रीडाएं करता है, उसी समय निशा मे घन घोर घटाम्रो के अन्धकार मा जाने से रसोद्दीप्ति हो जाती है।

'युग जाम निसा घन घोर छयो, अधियार घनो सरसावत है।
रति सी रमनी रति मन्दिर में पति केल कलानि रिझावत है।'[1]

झूला झूलने समय कृष्ण और राधा अनुराग के हिंडोले मे तो झूल रहे हैं, प्रकृति के उपकरण और भी उनके अगो मे रग बढाते हैं। 'लता लहक लहक कर सुमनो की सुगध से भर जाती है', जिससे 'श्याम और श्यामा दोनो के हृदय सरस हो उठने हैं।'

'प्रीतम निकुज मजु कालिंदी के कुज जहा झूलत हिंडोरे पिय प्यारी
छवि पावें हैं।
लहकि लहकि लता सुमन सुभार रही महकि सुगन्ध अग रग
उपजावे है।
सुन्दर सरस अग रग सो रगीली स्यामा स्याम सग भूलन म सबै
मन भावे है।
मचक रगीली मैं दामिनी तरस रही नगधर पै कोटि काम मूरति
लजावे है।'[2]

वियोगिनी कामोदी कोकिल के सुन्दर वचनो को सुनकर दुख पाती है, क्योकि कामदेव जग जाता है, अत कोकिल के वैन सुनकर हँसी छोड कर उदास हो जाती है और नायक को कुजो मे ढूढने लगती है।"

आलकारिक रूप

आलकारिक रूप म जहाँ प्रकृति का आश्रय कवि लेता है वहाँ सौन्दर्य के प्रतीक उपमानो को हेय अथवा समान दिखाकर नायक अथवा नायिका के रूप को अतीव सुन्दर अथवा विशिष्टतामय दिखाता है। यह वर्णन पारम्परिक है। प्रकृति के कुछ उपमान है, जो अपने क्षेत्र म सर्वोच्च समझे गये हैं तथा जिनका वर्णन सस्कृत काव्यो स होता आया है। गौर वर्ण के लिए कुद, चम्पक आदि, नेत्र के लिए मृग, खजन, मीन, कपोत, हस्त, चरण के लिए कमल, मुख के लिए चन्द्र, गति के लिए मराल, गज, शरीर के सौन्दर्य के लिए रति कामदेव आदि का वर्णन होता आया है। इसके लिए कवि सादृश्यमूलक तथा विषमतामूलक

---

१ राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।
२ रस-तरग, जवान सिंह, पुरातत्व मदिर, जोधपुर तथा मुनि कान्ति सागर-सग्रह, उदयपुर।
३. 'पिय कोकिल के वस बैन सुनें दुख पावत मैन जगे मन मे।
लजि हासि उदासि कमोद परी मुनि हारति नायक कुंजन मे।'
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

दोनों ही अलंकारों को अपनाता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के सहारे रूपोत्कर्ष दिखाया जाता है। यह आलंकारिक वर्णन चित्रात्मकता की सृष्टि भी करता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं नाटक के समान चलना, उठना आदि का वर्णन भी इस रूप में किया गया है, जिससे अलंकारों के कारण नाटकीयता का समावेश हो जाता है।

प्रकृति अधिकांशतः रूप-उत्कर्ष के रूप में प्रयुक्त हुई है। प्रकृति के उपमान की शोभा उपमेय से कम करके दिखाने में उसकी द्युति को नायक अथवा नायिका के सम्मुख हीन, म्लान दिखाने में कवि का उद्देश्य अलंकार-प्रदर्शन से अधिक रूप को उत्कर्ष देना रहा है। फलस्वरूप मेघमलार 'चन्द उज्यारिहूं, तें अति उज्ज्वल है,'[1] देसकारी 'सरद के संपूरन सुधाधर की सोभा को जीत लेती है'[2] तथा भूपाली की 'मन्द गति को देखकर मराली लजा कर रह जाती है,'[3] पंचम चन्द्रमा की द्युति मंद करता है,'[4] तथा श्याम राग के तन की 'श्याम छटा श्यामे घन घटा की छवि को छीन लेती है'।[5]

इसी प्रकार वियोगिनी कामोद का 'मुख पंकज सो मुरझाय' रहा है।[6] वसंत राग के 'श्याम तन की शोभा नील सरोज से भी अधिक अभिराम' लगती है।

'नील सरोजहुं तें अभिराम लसैं तन स्याम की सोभा सुहाई।'
गावैं नचैं युवती हरिवल्लभ राग बसंत की रीत बनाई।'[7]

नीलाम्बर में चमकता हुआ गौर शरीर ऐसा लगता है, मानों घन में दामिनि चमक रही हो।

'वर अम्बर नील मनो घन में तन की दुति दामिनि सी झलकैं।'[8]
'बिज्जुलता तिय दमकि कैं मिली स्यांम घन आई हो।
नगवर स्यांम तमाल के मनु लपटी हैं बेल सुहाई हो।'[9]

---

१. 'अति उज्जवल चंद उज्यारिहूं तें उपरैं ना महां छवि छाजतु है।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. 'सरद संपूरन सुधाधर की सोभा जीति वदन की दीपति दिपति उज्यारी है।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. 'कुंकुम की घोरि घुलि रही है कुचनि पर मंद गति देषि लजि रहति मराली है, संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'उमगे तन जोवन जोति जगै मुष चंदहु की दुति मंद करै।' राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'छीन लई छवि स्याम घटानि की स्याम बनो तनु है अति नीको।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. 'मुख पंकज सों मुरझाइ रह्यो, जित ही तित डोलति है बन में।' राग-रत्नाकर, राधा कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
८. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, वहीं।
९. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर तथा पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

रूपक तथा उत्प्रेक्षा का आधार लेकर कभी कवि 'तिय' को 'विज्जुलता' तथा 'स्याम' को 'घन' का रूप देता है, और कभी उस गौर-स्याम तन के सम्मिलित रूप की कल्पना मे कवि 'तमाल' से लिपटी हुई 'बेल' की कल्पना करता है। प्रकृति की इस रम्यता के सादृश्य पर कृष्ण तथा राधा का स्वरूप और भी अधिक निखर उठता है।
उपमान के रूप मे प्रयुक्त प्रकृति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के आलकारिक वर्णन ने काव्य में चित्रात्मकता का समावेश कर दिया है। चित्रकला से न केवल प्रभावित वरन् उसके पूर्ण ज्ञानी मे कवि वर्ण योजना मे दक्ष हैं। प्रकृति के रगो मे साम्य तथा वैषम्य दिखा कर किस प्रकार काव्य-चित्र सा अकित हो जाता है, इसका इन्हें बडा अच्छा ज्ञान है। प्रात कालीन शुभ्रवेला मे श्वेत रग की साडी का पवित्रता से युक्त बडा तीक्ष्ण प्रभाव पडता है, अत भैरवी 'प्रात समै प्यारी उठि उठी श्वेत साडी भारी फैलौ'[1] जिसके कारण उसके 'मुख चन्द की उजारी जोति जागती' है,[1] अथवा मलयागिरि के वन (मलयागिरि का रग नीले, बैंगनी आदि पर्वतीय रगो की कल्पना लिए है) का घनत्व आसावरी के श्याम वर्ण के 'देह की दीप्ति' को और अधिक 'दीपित' बना देता है।[2]

चित्रात्मकता के अनेक उद्धरण इस काव्य मे प्राप्त हैं। परस्पर साम्य रखने वाले रग तथा विरोधी रगो को साथ साथ दिखा कर वर्णन को चित्रित किया है। केसरिया रग का दुपट्टा पीला जरी तथा लाल रग की इजार पहना कर कवि तुरुक तोडी को चित्रित करता है।[3] सोरठी सुरग (लाल रग) की साडी के साथ, हरे रग का लहँगा पहने है, जो अत्यन्त सज रहा है, कचन से शरीर मे चन्दन का रग तथा चन्द्रमा का रग मिल कर काति बढ़ा रहे हैं। काले बाल तथा श्वेत मोती, लाल बिन्दी की छवि बढा रहे हैं। इन रगों से पूर्ण देवकारी रागिनी चित्रवत् दिखाई देती है।[4]

चित्रात्मकता लाने के लिए केवल रगो की योजना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् अगो का सूक्ष्म वर्णन इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि नायिका का चित्र स्पष्ट होकर सामने आ जाए। 'वृषभानु-सुता की छवि को देखकर सकल दुख दूर हो जाते हैं।'

'नैन उनींदें अग अरसाने पिय सग सब निसि जागे।
छूटे बार हार उर उरझे अरुन अधर रग पागे।

---

१. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
३. 'पट केसरिया पिसवा जहरी, मग लाल इजार सुगंध सनी।'
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'कंचन सों गात तामें चन्दन चरचि राख्यो
फैल्यो है प्रकास मुख चन्द की उजारी को।
कारे सटकारे अति सोभित सुदेस केस
मोतिन की माल भाल ब्यंदा छवि भारी को।'
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

झुकि झांकनि मुसकानि मनोहर मनहुं मैन सर लागे।
'व्रजनिधि' लखि वृषभानु-सुता-छवि निरखि सकल दुख भागै।'[1]

इस काव्य में उपलव्ध आलंकारिक प्रकृति-चित्रण स्पंदन से युक्त और सजीव दृष्टिगोचर होता है।

ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रकृति का स्पन्दन स्पष्ट होता है। बादलों का झूमकर आना, नन्हीं बूंदों का वरसना, तथा पवन से वृक्षों की लता का झुक झुक पड़ना, प्रकृति चित्रों को गत्यात्मक बना देता है।

झुक झूम झूम वदरा
वरसन लागे नांनी नानी वूदन तें। अस्ताई।
रसराज पिय्या अजहुँ नही आए।
विरछ लता रही लूंम लूंम।'[2]

नायिका के हृदय में कृष्ण के प्रति मिलन की आतुरता है। उसकी पीड़ा को समझ कर कामदेव के दूत के रूप में मेघ आते हैं और विरहिणी को धैर्य वँधाते हैं। कृष्ण की आकुलता का भी परिचय देते हैं। मेघों की चल-चित्र की सी छवि अंकित की गई है।

'राग मलार'
काम के आये मेघ नकीव
गरज गरज कैं कहत वाम सौं उदयो तोही नसीव।
दामिनि दीप दिपावत भामिनि चलहु वेग करि पीर।
घन वूंदन में देप सकत नंहि तुम प्रिय प्रान अधीर।
स्याम निशा मधि स्याम भेप सजि देपहु स्याम शरीर।
तुव देपैं विन आकुल नगधर अरी धरैं नंहि धीर।'[3]

राधिका के 'मनोहर तीर पर स्थित वाग के मध्य झूला झूलते' हुए प्रकृति भी इतनी आनन्द मग्न हो जाती है, कि 'घन मधुर ध्वनि करने लगते हैं, पिक, मोर चातक शोर करते हैं।' 'अलि रस से पूर्ण वहुत सी तानों का गान करने लगते हैं।' 'हरित वन-भूमि लताओं पर झूम झूम कर, दूर से प्रिया की विहार-स्थली को देखकर मुदित होती हैं।

'मनोहर तीर मधि वाग झूला रच्यै
तहां झूलति ललित भानु नृप की लली।
मधुर घन घोर पिक मोर चातक सोर
करत अलि गान वहु तान रस की रली।
हरित वन भूमि रहे झूमि झूमि लतन पर

---

१. व्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२०।
२. 'ध्रुपद और खयाल', मान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।
३. रस-तरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

जहा खेलति प्रिया निज विहार स्थली।"[1]

ऐसा प्रकृति वर्णन नाटकीय, सजीव और सप्राण दृश्या की सृष्टि करता है। पाठक के समक्ष प्रकृति अपने कार्य व्यापारो मे लीन चल चित्र सी चलती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति का स्वरूप बहुत कुछ परम्परा ही है अधिकतर के उद्दीपन के रूप मे ही प्रकृति का वर्णन किया गया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपने चारो ओर विकसित और विस्तृत प्रकृति वैभव की ओर से इन सगीतकारो ने अपनी दृष्टि बन्द नहीं रखी। प्रकृति के साथ मनोभावो का साम्य उपस्थित करना उनका उद्देश्य रहा है और उसम उन्हे सफलता भी प्राप्त हुई है।

कल्पना तत्व

काव्य म कल्पना का विशेष स्थान है। कल्पना के आधार पर ही कवि ज्ञात जगत के चित्रो को नीरस धरातल से उठाकर उस स्थान पर पहुँचा देता है, जहाँ वह चित्र एक नवीन रूप लिए तथा नए रगो से चित्रित पाठक के समक्ष आ जाता है। कवि की प्रतिभा के अनुसार कल्पना के अनेक रूप बन जाते है। साधारण से साधारण वस्तु भी कल्पना का आवरण पहन कर सौन्दर्य की प्रतिमा जान पडती है। सगीत-काव्य, जो सगीत तथा शृगार रस दोनो से समन्वित है, ऐसे आलम्बनो से भरा हुआ है, जिन्हें कल्पना के इन्द्रधनुषी रगो मे रग कर अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जा सके। सौभाग्यवश शृगार युग के प्रतिभावान तथा रसिक कवियो मे कल्पना की विचित्रता भी प्रचुर मात्रा मे थी, अत सगीत-काव्य कल्पना के सुन्दर चित्रो से भर गया।

कल्पना के सहारे कवि प्रस्तुत दृश्यो का अप्रस्तुत उपमानो तथा दृश्यो से साम्य तथा वैषम्य दिखाकर अपने वर्णन मे सजीवता लाता है। इसके लिए उसे अलकारों की सहायता लेनी पडती है।

शृगार युगीन सगीत-काव्य मे जहाँ वस्तु वर्णन तथा रूप वर्णन हुआ है, वहाँ अधिकतर परम्परा से आए हुए उपमानो का ही प्रयोग हुआ है, नवीनता का अभाव सा है। कवि केशो के लिए नाग तथा घटाओ के अतिरिक्त तीसरा उपमान कठिनाई से ढूँढ़ पाता है। नेत्रों के लिए खजन, मीन, कमल तथा मृग आदि पारपरिक उपमानो को छोडकर कवि कहीं नहीं जा पाता। मुख की दीप्ति चद्रमा, कुन्दन, चपक तथा स्वर्ण के ही समान हो सकती है। नवीन काल्पनिक उपमानो का प्रयोग कवि के लिए असम्भव सा जान पड़ता है। इसी प्रकार अगों के वर्णन मे अन्य शृगारिक कवियों के समान सौन्दर्य के मान्य प्रतीकों की तुलना मे नायक तथा नायिका को ऊँचा दिखाना ही पर्याप्त है। इसका उल्लेख पहले वस्तु-वर्णन मे किया जा चुका है।

रास-केलि मे सग्राम का रूपक बाँध कर, कवि नायिका तथा नायक दो प्रतिद्वन्द्वियों का मिलन दिखाता है। शरद पूर्णिमा की निशा है। वन मे मलय समीर प्रवाहित हो रहा

---

1. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २५१।

है। यमुना के किनारे वेणु की ध्वनि हो रही है। 'वंसी धुनि' दूती वनकर ब्रज वाला के समीप जाती है। 'समर-विजय' आरंभ होता है। एक ओर से 'ब्रज वाला परम प्रेम के रथ पर आरूढ़ होकर, विपम पंथों की ध्वनि' करती जाती है। रास-केलि रूपी संग्राम करके 'मदन रूपी गढ़ को जीतना' है। मार्ग अवरुद्ध करने के लिए 'विमल जुन्हाई जगमगाती' है, सभी ओर वेणु ध्वनि छाई है। प्रेम रूपी नदी में 'तिय रगमगी है।' वृंदावन भी आ गया। 'तिय' उत्साह वश गृह काजों को छोड़कर चलती गई, रुकी नहीं। अन्त में श्याम रूपी रस मिला। सिंधु रूपी मन में सरिता रूपी प्रेम का प्रवाह हो रहा है। हाथों से हाथ मिलते हैं, मानों 'कमलों के वीच जुन्हाई की ज्योति' मिल रही हो।

इस प्रकार राधा कृष्ण से मिलती है और तव रास प्रारंभ होता है।[1] स्त्रियों के मध्य शोभित यह श्याम-समन्वित समूह 'कंचन मणियों के वीच श्याम मणि से पूर्ण कामदेव की माला' सी जान पड़ती है।

'अति दरसी सरसी जु छवि छै तिय मधि नंद लाला हो।
कंचन मणि विच स्याम मणि मनी मैन की माला हो।[2]

इस प्रकार की कल्पना पूर्णतया नवीन नहीं है, फिर भी सुन्दर है।

अरुण चरणों में मेंहदी लगी हुई ऐसी शोभित होती है, मानों 'पंकज दल मंगल मान' कर वैठ गये हों।

'चरन हरन मनि नहनि में दी मंहदी सुपदान।
वैठे पंकज दलनि मनो मंगल मंगल मान।[3]

चरणों ने 'सहज अरुणाई' प्राप्त की है, मानों अनुरागी दृगों का रंग लिपट

---

१. 'पूरन ससि निस सरद की चलि वन मलय समीरा हो।
होत वेण रव रास हित तरनि तनैया तीरा हो।
वंशी धुनि दूती पठै वोली है व्रज वाला हो।
समर विजै आरंभ रस रास करन नंद लाला हो।
पूरन प्रेम आरूढ़ रथ विषम पंथ धुनि वैना हो'
रास केलि संग्राम हित चली मदन गढ़ लेना हो।
विमल जुन्हैया जग मगी रही वैन धुनि छाया हो।
प्रेम नदी तिय रंग मगी वृंदा कानन आया हो।
रुकी न कापे तिय गई छांड़ि काज गृह चाहा हो।
मिल्यो श्याम रस सिंधु मन सलिता प्रेम प्रवाहा हो।
जुरें करनि कर कंवल विच अमल जुन्हैया जीती हो।
हाव भाव वहो गान गति रास रंग अति होती हो।'
रसतरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह उदयपुर।
२. रसतरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
३. वही।

गया है।[1]

कहीं कहीं विचित्र सी कल्पनाएँ भी मिलती हैं। 'सुंदर श्याम सुजान' की छवि वर्णन करते हुए जवान सिंह जी कहते हैं—

'प्रेम गली बिच रूप की थमा थसी ह्वै पूर
लोचन दुर्बल वायु रे भए जात है चूर।'[2]

प्रेम की गली के बीच रूप के स्तम्भ के समान मुखहँसी से पूरित है, जिसे देखकर लोचन दुर्बल वायु के समान उसी से चूर हुए जा रहे हैं। कृष्ण के हँसते हुए मुख की शोभा का वर्णन है।

कल्पना-वैचित्र्य का एक उदाहरण नागरीदास जी द्वारा लिखित दोहों में प्राप्त होता है, जिसमें अंगना के आंगन में 'पेमा' सजाया गया है और प्रिय के मन पर शासन करने के लिए 'अदालत' की योजना की गई है।

'अंगना अंग आगी तनी औपी लाल सुरंग
मनौ मैन पति स्याह के पेमा पर उतंग
कुच कुरसी बिच उरवसी अवी अवी सु तौर
पिय मन पति स्याही करन रची अदालत ठौर।'[3]

एक स्थान पर नेत्रों को कथा बांचने वाला बनाया है, जो मोहन को 'सैनों' से विलोकन रहते हैं तथा श्रोतागण 'इकटक' देखते रहते हैं। अथवा मोहन के संकेतों को देखकर नेत्र भी वाचक बनकर कथा भी कहने लगते हैं। इस सांकेतिक प्रेमालाप का आनंद नागरीदास श्रोता बनकर ले रहे हैं।

'नैन कथक बाचत कथा मोहन सैन विलोक।
पीवत श्रोता नागरी इह रस इकटक ओक।'[4]

'मीन विमल कपोल पर अलकों की लट' आ जाने से कवि कल्पना करता है, मानों मदन सुंदर लेख लिखने वाला मुंशी है जिसने कांच पर काफ लिखा है।

'मीने विमल कपोल पर लगी छूट लट साफ
पुस नवीस मुनसी मदन लिख्यौ काच पर काफ।'[5]

---

१. 'रुचिर रूप कोमल विमल सहज अरुनई पाई।
मनु अनुरागी दृगनि को रंग रह्यो लपटाइ।'
रस-तरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर तथा पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

२. रसतरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।

३. रस तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

४. वही।

५. वही। इस दोहे का प्रथम चरण 'मुबारक' के 'अलक-शतक' में दूसरे रूप में मिलता है। "अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।" मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृ० ३६८।

दूती के लिए गेंद का उपमान बनाकर कवि एक सरस दृश्य की सृष्टि करता है। ज्यों ज्यों कृष्ण राधा के पास विनती का संदेश भेजते जाते हैं, त्यों त्यों राधा और भी अधिक मौन ग्रहण करती जाती है। बार बार संदेश लाने और ले जाने में दूती चागान की गेंद बन गई है। रात्रि बीती जा रही है। मिलन की कोई आशा न देखकर कुछ झुंझलाहट से भरे प्रेम-उपालम्भ में दूती राधा से कहती है।

'आवत जाति अरि हौं हारि रही री
ज्यों ज्यों पिय विनती करि पठवत त्यो त्यो तुम गढ़ मौन गही री।
तिहारे बीच परै सो बावरी हों चौगान की गेंद वही री।
कृष्णदास प्रभु गिरवर नागर सुखद जामिनी जात बही री।'[1]

जहाँ दृश्य वर्णनों की योजना है, वहाँ कवि की कल्पना अनूठी है। इस क्षेत्र में शृंगार युगीन संगीत-काव्यकार हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर सकता है। दृश्य चित्रों में जो विशेषता इन कवियों की है, वह यह है कि पाठक के सम्मुख दृश्य अपने वास्तविक रूप में खिच जाता है। उसकी स्थिरता जड़ न रह कर चेतना को प्राप्त हो जाती है, जिससे पाठक, दर्शक बन जाता है।

उमंग से भरे हुए कृष्ण-राधा झूला झूल रहे हैं। सभी सखियाँ गान करती हुए उन्हें झुला रही हैं। प्रारंभ में कवि झूले पर बैठे या धीरे धीरे झूलते हुए कृष्ण-राधा की मुस्कान तथा सुगन्धित शरीर आदि का वर्णन करता है। धीरे धीरे झूले की गति में तीव्रता आती है। विनोद तथा गति के कारण केश भी अस्त व्यस्त हो जाते हैं, और गति तीव्र होने पर श्रम-बिन्दु झलक आते हैं। प्रिय के 'अंगों से लगी' राग देश में गाती हुई राधिका अतीव सुन्दरी लगती है।

'झूलत रंग उमंग सूं नव जोवन सुकुमारी हो।
झूलन आई सबैं जु री कुंज भवत सुपकारी हो।
मृदु मुसकनि पिय भावती मुप सोभा सरसाती हो।
रंग रंगी पिय श्याम के नवल नेह हुलसाती हो।
सोधैं लपट मधुप गन आवत अंग सुगंध सुहाती हो।
नव नवला सी भावती स्याम संग रस भाती हो।
नव नव रूप उजागरी सुन्दर सोभत भेसा हो।
झूलत विविध विनोद सू छूट छूट गए केसा हो।
स्वेद पेद तन झलक ही स्याम सुमदन नरेसा हो।
अंग लगी पिय स्याम के गावत राग जु देसा हो।
गुन गरबीली भावती अति सोभा सरसाई हो।
ललित हिंडोरे छवि लसी प्रीतम के मन भाई हो।'[2]

---

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २२६।
२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

उपर्युक्त चित्र मे कल्पना के आधार पर चित्रण की सजीवता और गत्यात्मकता का अच्छा आयोजन हुआ है।

कृष्ण लताओ की ओट से राधा को अकेले झूलते देखकर मुग्ध होते हैं, यह दृश्य कवि की कल्पना को प्रसार देता है।

'नगधर रसिक लाल देयँ लतनि ओट वारें
तृन तोर तोर मति बिसराई है।
झूलत रंगीली की तरगन बढ़ी हैं यो घटा
ओट चद मानो घूंघट दरसाई है।"[1]

घूघट के भीतर दुलहिनी के विकल लोचनो की 'मीन केतु के मीन' से समता देकर, कवि नेत्रो की चपलता का दृश्य सम्मुख रख देता है।

'दुलहिनी लोचन विकल हैं मोहन मुख छवि लीन
घूघट मे अकुलात मनु मीन केतु के मीन।"[2]

दृश्य चित्रो की कल्पना म रास के चित्र विशेष रूप से सुन्दर बन पडे है। रास का वर्णन पढते समय, कृष्ण और राधा का सखियो के साथ किए गए रास नृत्य का दृश्य नेत्रो के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। नृत्य की गति मे क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से जान पडता है। सर्व प्रथम नर्तक और नर्तकी खडे दिखाई देते हैं। सगीत की ध्वनि सुनाई देती है। पैरो की गति, सपूर्ण नृत्य, सगीत की बढ़ती हुई लय के साथ नूपुरो की गति मे वृद्धि, नर्तकियो के उल्लास मे उमग, चरम सीमा पर पहुँचा हुआ मृदग का स्वर, नर्तको की नूपुर ध्वनि तथा एक दूसरे के प्रति अभिनयात्मक भाव आदि सब का चलित-चित्र सा खिचता जाता है। कवि की कल्पना मे ये चित्र इतने स्पष्ट रहते हैं कि सजीवता स्वाभाविक रूप मे आ जाती है।

रास मडल मे उधर कृष्ण की अलकें राधिका के कुडलों म उलझ जाती हैं, इधर राधिका की बेसर कृष्ण की बनमाला मे 'अरुझी' रह जाती है। इस प्रकार 'गौर और श्याम' एक दूसरे से उलझ जाते हैं। इतनी देर आवेश मे नृत्य करने के कारण पाँव डग-मगाने लगते हैं। मुकुट एक ओर झुकता है, चन्द्रिका दूसरी ओर जाती है, सिर के सकल शृगार रास के रस मे मग्न हो जाते हैं, स्त्रियो के अचल अपने स्थान से हट जाते हैं, केश गुथन से छूट छूट पडते हैं, हार टूट टूट कर गिर रहे हैं। यह सौन्दर्य राशि, नृत्य की इस श्रमित अवस्था मे बिखरी पड रही है, जिससे मन्मथ का भी मन मथ गया है, तो और किस मे सामर्थ्य है कि इसका वर्णन करे।

'उत अरुझी कुडल अलक, इत बेसर बन माला हो।
गउर स्याम अरुझे दोऊ मडल रास रसाला हो।
गर बहियां गति लेत मिल श्रम बस सिथलत माया हो।

---

१. रस-तरग, जवान सिंह जी, पुरातत्व मदिर जोधपुर।
२. वही। यह दोहा किसी अन्य कवि का जान पडता है, कवि ने इसे गीत की अन्तरा रूप में गाया है।

डारे मन लै सबनि के डगमग डगनि डुलाया हो ।
देत बलैया रीझ दोऊदोऊ पोंछत श्रम बारी हो ।
नचत सनी अति रंग सों बनी मदन अनुहारी हो ।
उते झुको हो जब मुकुट इते चंद्रिका बारा हो ।
भये रास रस मगन तन तर के सकल सिंगार हो ।
खूंटि खूंटि अंचर गए, छूटि छूटि गए बारा हो ।
अमिक रास रस रंग पै टूटि टूटि गए हारा हो ।
कहत कहत कहां लगि कहैं कवि मति मंद प्रकासा हो ।
तिन के भोंह विलास में कोरि कोरि कै रासा हो ।
नागरिया दये रास में अगनित कलप बिताया हो ।
मनमथ हू को मन मथ्यो कथ्यो कौन पै जाया हो ।"[1]

संगीत काव्यकारों ने अलंकारों के द्वारा काव्य में कल्पना का परिचय तो दिया ही है, कहीं कहीं ऐसे सरस प्रसंगों की योजना की है कि इनकी सूझ की प्रशंसा करनी पड़ती है ।

कृष्ण और गोपियों के प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए गोरस-लीला की कल्पना में एक चित्र उपस्थित किया है, जिसमें गोरस बेचने जाती हुई सखी को कृष्ण मार्ग में रोकते हैं तथा गोपी-कृष्ण का परस्पर संवाद होता है । यह गीत 'गरबा' के लिए लिखा गया है, अतः नृत्योपयुक्त सरस वार्तालाप है ।

'गोरस मांगत गोरसिक । हो । चलन देत मग रोंक ।
झगरत हैं किस दान कै । हो । पी रस नैनन ओक ।
बदत नांही ग्वालिनी । हो । अंग जोवन उफनात ।
मुसकनि महरि मजेजनूं । हो । सोभित सुंदर गात ।
जोवन माती फिरत है । हो । दान हमारो मार ।
गरब गहेली ग्वालिनी । हो । बोलत बचन सम्हार ।
रूप लालची लाल हो । हो । मांगत नाहिन दांन ।
चलत कछु तुम और हो । हो । मानत नांहिन आंन ।
जोवन गर्ब गहेलड़ी । हो । मानहु मेरी बात ।
गोरस मोहि चषाइये । हो । सैनन हाहा खात ।
लाल जु मानत नाहि हो । हो । मोहि हटकी मग मांह ।
लोक चतुर लप पाइये । हो । छाड़ों मेरी बांह ।
प्रेम छके दोउ विपन मधि । हो । झगरो दांन निवार ।

१. नागरीदास कृत, रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर । यह पद नागरि छाप से युक्त है, अतः नागरीदास कृत है, परन्तु जवान सिंह के रस संग्रह 'रस-तरंग' से उद्धृत है ।

नगधर प्यारी कुंज मधि । हो । प्रीन छके सुकुवार ।"[1]

कृष्ण और राधा के इस प्रेम भरे संवाद में बड़ी सजीवता है ।

गोपियों को मुरली से सदैव ही सौतिया डाह रहा है । सूर की गोपियाँ भी कहती थीं कि मुरली कृष्ण के अधरों पर लेट जाती है और अपने पैर दबवाती है, कृष्ण को टेढ़ा खड़ा कर देती है, इतने कष्ट देने पर भी 'मुरली तऊ गोपालहिं भावत' । रसखान की राधा मुरली को अधरों पर रखने को मना कर देती है, 'मुरली अधरान धरी अधरा न धरोंगी ।' लगभग वही भावना यहाँ मिलती है ।

> 'मुरलिया भार भरी री तैं मोहे नद लाल
> पिय रस अधर लगी निसदिन तू मोति सुहाग लहाय ।
> विहरत अधर पलव सय्या पर पिय मुप लगी सुहाय ।
> धुनि सुनि विकल भई हम तलफत लाग्यो विरह दहाय ।
> नगधर पिय मुष लाग लाग कैं तू बैरिन मति पाय ।"[2]

'मुख लगना' मुहावरे का बड़ा सुन्दर प्रयोग है । कष्ट देने वाले व्यक्ति के लिए स्त्रियों की भाषा में 'खाए जाने' का प्रयोग प्रचलित है । वही प्रयोग यहाँ है कि 'कृष्ण के मुह लग कर, तू हमें न खाए जा ।

सरस प्रसंगों के अतिरिक्त उचित चमत्कार भी इस काव्य की विशेषता है । यह भी कवियों की कल्पना शक्ति का परिणाम है । गोधूलि की वेला में घर लौटती हुई गोपी को कृष्ण मार्ग में रोक लेते हैं । गोपिका अपने आँचल को छुड़ाने के लिए अपनी सास का डर दिखाती है, ऊखल बंधन की याद दिलाती है और फिर कृष्ण को लज्जित करने के लिए बलि से दान माँगने की कथा पर व्यंग करती है । 'बलि से दान मांगा था, तब तो वामन (बौने) हो गए थे, अब देखो, हम से दान लेकर किस छवि को प्राप्त करते हो ।' कृष्ण को परास्त करने में यह उक्ति सहायक होती है ।

'राग गौरी चौतालो ।

> बैर गोधूरिक भई, रोकी लै मग माझ, छाड देहो अचरा ग्रह सासु सु पायो है ।
> नगधर रसिक लाल प्रेम मनवारे प्यारे, रूप रस भीजैं मोदान हटलाय हो ।
> साच हू कहूं हू स्याम मेरी यह मानो बात, आगें दधि चोमे मे, ऊखल बधाय हो ।
> बलहू पैं माग दान वामन भए हो देखो हम हू पैं दान लै के कौन छवि पाय हो ।"[3]

---

१. रसतरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर ।

२. वही ।

३. रस तरंग, जवान सिंह जी, मुनि शांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

संकेतों के द्वारा कृष्ण तथा राधा के भावों को बताने के लिए दूतियों ने विचित्र कल्पनाएँ की हैं। बन्द कमल से रात्रि का संकेत, पानी की बूँदों से आँसुओं की ओर संकेत प्रसिद्ध ही है। प्रतापसिंह जी 'ब्रजनिधि' की रचना में भी कुछ इसी प्रकार की कल्पना है।

'रागसारंग वृंदावनी, खयाल (जल्द तिताला)
पिय प्यारी भोजन भेलेहूं करत मनों मन हारे।
कांसों कनक रु सुवरन चौकी रचना रचि ललिता जु धरें।
भक्ष्य भोज्य अरु लेज्य चोज्य ओ चोस्य पेय लें अमित भरें।
गुपचुप लाय प्रिया मुख दीनी अर्द्ध पान ले आप करें।
समुझि सकुचि चतुराई को प्यारी नैनन मांझ लरे।
खांड खिलोना नटनी लेकरि प्रीतम के सनमुखहिं अरे।
नोक ठंठोलहिं समुझ लाल जू हसनि दसन से फूल झरे।
श्री राधे ब्रज-निधि को कौतिक सखियां अंखियन मांह चरें।"[1]

भाषा तथा शैली

काव्य का सौन्दर्य भाषा ही में निहित है। शृंगार युगीन संगीत-काव्य की विशेषता का सौन्दर्य है। ब्रज भाषा का जो रूप राजाश्रित कवियों के द्वारा निर्मित हुआ है, उसमें फ़ारसी के प्रभाव से विशेष माधुर्य आ गया है।[2] इन कवियों का शब्द-चयन संगीत से पूर्ण है, अतः नाद तत्त्व इसमें विशेष है। चित्रोपमता, गत्यात्मकता, आलंकारिकता, प्रभावोत्पादकता आदि इस काव्य की भाषा के गुण हैं। काव्य-गुण ओज, प्रसाद तथा माधुर्य, रसानुकूल प्राप्त हैं। शब्द शक्ति की प्रचुरता है। अनुकरण मूलक शब्दों के प्रयोग से ध्वन्यात्मकता की सृष्टि की गई है।[3] इस काव्य का साधन तथा साध्य दोनों ही संगीतात्मक होने के कारण इस काल की रचनाओं में अनुकूल छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

संगीत-काव्य की भाषा सर्वत्र ब्रज ही है। संगीत विषय के लिए प्रयुक्त ब्रज का ऐसा उपयुक्त स्वरूप इन काव्यों में देखकर यह भ्रम होने लगता है कि संगीतात्मकता ने

१, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६८।

२. "The sweetness and melody of Brij Bhasa appealed powerfully to the nobles of the imperial court at Agra, and their contact proved highly beneficial to its growth. In the hands of hindu officers who had learnt Persian, the language lost its old crudity, and became sweet, chaste, and artistic". History of Muslim Rule. Ishwari Prasad, p. 543.

३. "संगीतमयता के गुण की वृद्धि शब्दों की मैत्री तथा भावानुकूल ध्वनि वाले शब्दों की योजना से भी होती है।" अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीन दयाल गुप्त, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सं० २००४, पृ० ७६१।

ब्रज का यह स्वरूप बना दिया, अथवा ब्रज भाषा के स्वाभाविक माधुर्य ने कवियों में संगीतात्मकता ला दी। ब्रज भाषा का साहित्यिक रूप यहाँ पाया जाता है, अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग है। तत्सम का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है, अत कहीं भी काव्य में क्लिष्टता नहीं आने पाई है।

तत्सम शब्दावली में भैरव के रूप-वर्णन का एक चित्र है—

'उज्जल गात सोहात सुधा सम
उज्जल वस्त्र विराजत तैसो।
सीस जटा मनि कुंडल कानन
कण्ठ विषे विष सोम सो जैसे।'[1]

तद्भव शब्दों के निर्माण में इन काव्यों का शब्दा की कोमलता की ओर ध्यान रहा है। इस दृष्टि से भाषा में निम्न परिवर्तन दिखाई देते हैं। अधिकतर 'श' को 'स' तथा 'स' को 'श' में परिवर्तित कर अनेक शब्दों का तद्भव रूप बन गया है। 'विशाल' का 'विसाल', 'शीश का 'सीस', 'विश्राम का 'बिसराम' शब्द बन जाता है।

तत्सम शब्दों की मात्राएँ हटा कर तथा जोड़ कर भी तद्भव शब्द बनाए गए हैं। 'त्रिलोचन' के स्थान पर 'त्रलोचन', आनंद' का 'अनंद', 'ललाट का 'लिलाट' हो गया है। कहीं अक्षरों का लोप तथा वृद्धि भी हो जाती है। 'परिवार' का 'परवार', 'त्रिशूल' का केवल 'सूल', 'उज्ज्वल' का 'उज्जल', 'स्वरूप' का 'सरूप' हो गया है। 'मालव कौशिक' शब्द का रूप 'मालकोसिक' अथवा 'माल कोस' इसी प्रकार बन गया है।

संयुक्त वर्णों में कठोरता आ जाती है, अत एक संयुक्त वर्ण को तोड़ कर दो वर्ण बना लिए हैं, अथवा दोनों वर्णों में से एक ही रख लिया गया है। अतः 'धनाश्री' का 'धनासरी', 'मृदु' का 'मरदु,' चंद्र का 'चंद', उद्योत' का 'उदोत' 'वागेश्वरी' का 'वागेसुरी' अथवा 'वागेसिर', 'मूर्ति' का 'मूरति' बन गया है। इन शब्दों में कोमलता आ गई है। शब्द के प्रारम्भ में यदि संयुक्त वर्ण हो तो प्रारम्भ के अर्द्धाक्षर का अवश्य ही लोप हो जाता है, जैसे 'स्फटिक' का 'फटिक'। ध्वनि में कोमलता लाने के लिए अल्प प्राण से महाप्राण और महाप्राण से अल्पप्राण बना दिया जाता है, अत 'घ' के स्थान पर 'ग', 'क' के स्थान पर 'ग' बन गया है। 'प्रकाश' के स्थान पर 'परगास' 'प्रकट' के स्थान पर 'परगट' हो जाता है।

कोमलता लाने के लिए आवश्यकतानुसार कहीं कहीं स्वरों तथा व्यंजनों का योग कर लिया जाता है। 'उल्लास' का 'उल्हास', 'जरी का 'जहरी' 'मुसकान' का 'मुस्क्यान' बन जाता है।

'ज' का 'य', 'य' का हर स्थान पर 'ज', 'ण' का 'न', 'व' का 'ब', 'ब' का 'व', 'ड' का 'ड़' हो गया है। 'जवान सिंह' का 'यवान सिंह', 'योगिनि' का 'जोगिनि', 'युवती'

[1] राग विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

का 'जुवती', 'कल्याण' का 'कल्यान', 'मणि' का 'मनि', 'करुणा' का करुना,, 'तोड़ी' का 'तोडी', 'पहाड़ी' का 'पहाड़ी', 'वहुरि' का 'वहुरि', 'बंगाली' का वंगाली', 'वसंत' का 'वसंत' आदि शव्द इसके उदाहरण हैं।

शव्दों का वहुवचन वनाने में 'नि' का योग करके तत्सम शव्दों की कठोरता को कोमल कर दिया गया है। 'जटा' का 'जटानि', 'पक्ष' का 'पपौवन', 'तरंग' का 'तरंगन' आदि शव्दों को इसी प्रकार कोमल वनाया गया है।

इसके अतिरिक्त लोक-प्रचलित तद्भव शव्दों का भी प्रयोग है। 'वस्त्र' के लिए 'वसन', 'गर्जन' के लिए 'गाज', 'मस्तक' के लिए 'माथा' ऐसे ही प्रयोग हैं।

संगीत की लय के लिए आवश्यकता पड़ने पर दीर्घ मात्राएँ लघु और लघु मात्राएँ दीर्घ वन जाती हैं। 'गरे' को 'गरैं', 'आसावरि' को 'असावरि', 'यौवन' को 'जोवन', 'माथे' को 'माथै' का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है।

शृंगार-युगीन काव्य की भाषा मूलतः व्रज है, परंतु इसमें देशज तथा विदेशी दोनों भाषाओं के शव्दों का मिश्रण है। इसके दो कारण हैं। एक तो संगीत समस्त उत्तर भारत के राज्याश्रय में फैल गया था, दूसरे संगीत सीमा में वाँधी जाने वाली कला नहीं है, अतः शास्त्रों, ग्रन्थों अथवा गेय गीतों के द्वारा समस्त राज्यों में प्रचारित हो गया। यही कारण है कि प्रत्येक देश तथा गायक के अनुसार भाषा में परिवर्तन आ गया। जैसा शृंगार युगीन परिस्थितियों के अध्याय में वताया जा चुका है कि संगीत को न केवल दिल्ली दरवार में वरन् अधिकांश रूप में रियासतों के नरेशों तथा सामन्तों के दरवारों में आश्रय मिला था, अतः यह संगीत काव्य एक प्रदेश में सीमित नहीं रहा और सभी प्रदेशों के लिए लिखा गया। संगीत प्रेमी नरेशों के उत्साह के कारण संगीतज्ञों का एक से दूसरे राज्यों में आना जाना भी भाषा के मिश्रण का एक कारण वन गया। भाषा के व्रज रूप में उन प्रदेशों के शव्द आ गए, जिनमें कवि अथवा कवियों का संगीत पहुँचा, फलस्वरूप देशज भाषाओं में राजस्थानी, अवधी, वुंदेलखंडी, पंजावी तथा वंगाली सभी प्रभाव कहीं न कहीं पड़ा।

शृंगार युगीन संगीत काव्य का निर्माण मुग़ल बादशाहों के संरक्षण में विशेष रूप से हुआ, अतएव अरवी, फारसी तथा उर्दू के शव्दों का आ जाना स्वाभाविक था।

देशज शव्दों में सवसे अधिक राजस्थानी वोलियों का प्रभाव पड़ा है। अधिकतर संगीत काव्यकार भी राजस्थान में राजा हुए हैं, अतः कुछ पद तो केवल राजस्थानी ही में लिखे गये हैं।

'आज रंगभीनी है जी रात।
सुघड़ सनेही म्हारे महल पधार्‌या मिलस्या भर भर गात।
रंग महल में रंग सूं रमस्यां, करस्यां रंग री वात।
'वृजनिधि' जी ने जावा न देस्यां होवाद्यो नें परभात।"[1]

---

१. वृजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० ३८०।

राजस्थानी से प्रभावित ब्रज का प्रयोग तो बहुत अधिक प्राप्त होता है।

'पारोसन कु मैं अपनाई कबहु न लै कहु नांव।'[1]

'देख्यो नगधर छैल अनोखो जण जण को मन सोलें।'[2]

'पिय मन रो अधियारो दूर गया सुप सेजा री सैल मे।'[3]

उपर्युक्त उदाहरणो मे कु (को), जण जण (जन जन), रो (का) का प्रयोग राजस्थानी है।

राजस्थानी के अतिरिक्त पंजाबी का प्रयोग भी अधिकांशत दृष्टिगत होता है। केवल पंजाबी मे लिखे गए गीत भी प्राप्त होत हैं। पंजाबी तथा राजस्थानी दोनो से मिश्रित ब्रज मे भी और केवल पंजाबी मिश्रित ब्रज म प्राप्त होत हैं। केवल पंजाबी मे लिखा गया 'ब्रजनिधि' का एक पद है,

'ईमन

लपदे वखण नू मैंडे नैन।

दिल दे अदर हूका उठदी रैन दिहा नहि चैन।

बेपरवाही नद महर दा सुधि मैंडी नहि लैन।

किसनू आखा गल्ला सईये 'बृजनिधि' ब्रज सुख दैन।'[4]

पंजाबी के कारक-चिन्हो तथा शब्दो 'नू', 'दा', 'नाल', 'सानू', 'चगा' का प्रयोग तो पर्याप्त मात्रा मे मिलता है।

'मैनू दिल जानी मोहन भाव दानी।

'नद दानी गुर प्यारा भावदा।'

'ये तो मन भावदा सुजाण।' आदि[1]

मिश्रित भाषा का एक सुदर उदाहरण, मानसिंह जी कृत एक खयाल म प्राप्त है।

'चगी ए कलाल नी।

चगा दारुडा पिलाय दे। अस्नाई।

बाई घर आयो छै मारू मनवालडो।

ऊनै ज्यू रयू बिलमाय है।

बाई घर म्हारे के थारे बारणे।

तीजी ठौर न जाण दे।

बाई थारो ऊरे रो उणिहारो एक सौ जी मैं बिलम रह लो।

---

१. मान सिंह कृत ध्रुपद और खयाल, मुनि कांति सागर-सग्रह, उदयपुर।
२. गीत सग्रह, जवान सिंह, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।
३. मानसिंह कृत ध्रुपद और खयाल, मुनि कांति सागर-सग्रह, उदयपुर।
४. बृजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६८।

वाई जी सूंथीड़ी सो पिय्या मतवालो ह्वै इसो चौसरो कढाय दे ।'[1]

'चंगी' तथा 'नी' का प्रयोग पंजावी है तथा अन्य राजस्थानी शब्द प्रयुक्त हैं।

ब्रज में पंजावी क्रियाओं का प्रयोग भी प्राप्त होता है।

'सलौने स्याम ने मन लीता
रत्त दिहाडे कल नहि पड़दी क्या जाणां क्या कीता ।'[2]

इसी प्रकार वुँदेलखंडी, अवधी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

देशज भाषाओं के ग्रामीण प्रयोग भी यत्र तत्र प्राप्त हैं। 'गलवहियां', 'खरभरु', 'पीढाय', 'हरियाली वनो', 'वनड़ा', आदि शब्द इसी प्रकार के हैं।

फ़ारसी, अरवी तथा उर्दू के शब्दों का प्रयोग वहुत अधिक मात्रा में प्राप्त है। अनेक पद उन्हीं भाषाओं तथा शैली में लिखे गए हैं। उर्दू के शब्द तो ब्रज भाषा का एक अंग वन गए हैं।

फ़ारसी मिश्रित उर्दू का एक ध्रुपद कृष्णानन्द व्यास देव 'रागसागर' के 'राग-कल्पद्रुम' में संग्रहीत है।

'वैटुल्ला सरीक अल्ला अभी कुदरत ।
रट दुसरो कीनो रसूल जगत सुहाग ।
आप करतार कर सुत हैदर दीयो नवी को
तुम कर वसी सुधारो उमद को ।
दीन भजव तुम मदीन इलम आली ।
वहां हसन हुसैन दोउ करत सेवा वन्दगी ।
हक आरवदीन आंख दसा मुदवाकर ।
जाफर काज मरजात की हकीतकी न
कीतक वादी न अशकरी आश पूरण में
हदी महम्मद हादी रदनुमा ।'[3]

संगीत काव्यकारों को उर्दू भाषा इतनी प्रिय लगी कि ब्रज के समान ही उर्दू में एक वड़ी संख्या में 'रेपता' पद लिखे हैं।

'दर ख्वाव मुझे दाद सोच दई निर्दई ।
तड़फूं हूं वेकरारी में वस वावरी भई ।
खोया हवास होश-वजा किस सेती कहूं ।
आतिश विरह की मेरे तन मन में आ छई ।
पैग़ाम आया प्यारे का सुन खुरंमी हुई ।
सद शुक्र वजा लाई भला अव तो सुधि लई ।

---

१. मानसिंह कृत खयाल, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।
२. वृजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १६९ ।
३. लखनऊ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी; संगीत नाटक एकेडमी पुस्तकालय, न्यू देहली ।

पूछे थी हकीकत में 'ब्रजनिधि' की जुबानी।
कि इतने में कहा कि नहीं पाती पिया दई।
पाती लगाय छाती से बैठी थी बाचने
खुलने न पाई खाम मेरी आख खुल गई।"[1]

उर्दू शब्दों का प्रयोग ब्रज भाषा में बिखरा सा जान पड़ता है।

'प्रिय दृग विहरन का करी मनमथ फरस फिरास।'[2]
'कैफ भरी अखियन सू हेलो भारत छिन छिन गर्व गहेली।'[3]
हुस्न दिखाइ सावले प्यारे मन जबरी सैं लीया।"[4]

'दिल', 'सफा', 'बेवफा', 'महर', 'अजब', 'जुदाई', 'नजर' आदि उर्दू शब्दों का बाहुल्य है।

इन रचनाओं में खड़ी बोली के क्रिया रूप भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। यह अधिकतर उर्दू के प्रभाव के कारण आया है।

'सुनकर दिया जवाब विहसि 'ब्रजनिधि' प्यारे,
मुझको तो प्यारी एक तू ही क्यो अब रूठी।'[5]
'राधे पियारी तुम तो टोना सा कर गई हो।' आदि।

विदेशी भाषाओं में उस समय तक अंग्रेजी भी भारत में आ चुकी थी। अंग्रेजी से हिन्दी का सम्पर्क उस समय तक स्थापित नहीं हुआ था, अतः अधिक शब्दों का आना तो असम्भव था, परन्तु एक दो शब्दों का प्रयोग यह चरितार्थ कर देता है कि अंग्रेजी भाषा भी किसी सीमा तक इन कवियों को परिचित बना चुकी थी।

'राग सारंग (चौताल)

बैठे दोऊ उसीर—बगला में ग्रीषम सुख विलसत दंपति-वर'[6] में 'बगला' शब्द अंग्रेजी के 'बंगलो' शब्द से आया है।

संगीत-काव्य में शब्द-चयन माधुर्य तथा लालित्य की दृष्टि से किया गया है, अतएव अधिकतर कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है। संयुक्त तथा द्वित्त वर्णों का प्रयोग यथा सम्भव नहीं किया है। शब्दालंकारों के सहारे भाषा को सुन्दर बनाया है। संगीत सम्बन्धी रचनाओं में श्रुति माधुर्य है, अतः श्रुत्यानुप्रास का अधिकतर प्रयोग है।

---

१ ब्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० ३२१।
२ रस-तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३ रस-तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १६२।
५. वही, पृ० २५७।
६ वही, पृ० ३१३।
७ वही, पृ० १५६।

'अति लाल लसै दुति अंतर की, तन में तरुनाई कछू सरसै ।'
'भूपन भाई जनाई कछु मुस्कयाई तवै वहुते ललचानी ।'
'लौनी लसै दुति देह की यो लपि गोत कपोत को लाज रह्यो है ।'
'मीठे मीठे वैन चित चैन दैन कहि कछु मुस्कयाई उपजावत मदन को ।'

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ल, स, त, द, न, म आदि अक्षरों के बारम्बार प्रयोग से पदावली में लालित्य आ जाता है । यह श्रुति-माधुर्य संगीत-काव्य के लिए अत्यंत आवश्यक है ।

संगीत की सृष्टि करने के लिये शब्दों का चुनाव ऐसा किया गया है कि शब्दों में माधुर्य अवित होता सा जान पड़ता है ।

'निकसि निकसि मंडलनि तैं लेत ललित गति लाला हो ।
देखि देखि अंकन भरति रीझि रीझि वस वाला हो ।'[1]

ऐसे उदाहरणों से यह काव्य भरा पड़ा है । मधुर बनाने के लिए ही द्वित्त तथा संयुक्त वर्णों का प्रयोग नहीं किया गया है । अतः 'हर्ष' के स्थान पर 'हरप', 'सन्मुख' के स्थान पर "सनमुप' हो गया है ।

'सव जन हरप वधाई कीरत सनमुप गाई ।'[2]

इन रचनाओं की भाषा में संगीतात्मकता निहित सी हो गई है, अतः अक्षरों तथा शब्दों की आवृत्ति मात्र से ही काव्य में गेयात्मकता आ जाती है । शब्दों तथा अक्षरों के चुनाव में अधिकतर न, ल, स, त आदि कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है । संगीत इन शब्दों से झंकृत सा होता है । जहां ट, ज, क आदि कठोर अक्षर आते भी हैं, वहां उनको भी मधुर वर्णों के सहयोग से सरस बना दिया गया है ।

'जमुना तट वंसी वट छैया ठाढ़ो वैन वजावे हो हो ।
कोउ-इक नट नागर रस सागर गुन आगर गुन गावैं हो हो ।
गलवहियां दै के प्यारी को राग सुनाय रिझावैं हो हो ।
रसिक सिरोमनि स्याम सुंदरवर व्रजनिधि हियो सिरावैं हो हो ।'[3]

भाषा को संगीतात्मक बनाने में अनुप्रास सबसे अधिक सहायक होते हैं । छेकानुप्रास तो इतना अधिक है कि उसकी गणना ही व्यर्थ है । वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास सभी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है । अनुप्रास की विशेषता यही है कि एक अक्षर की वार वार आवृत्ति होने से स्वयं ही एक स्वर-लहरी का निर्माण हो जाता है । उसको पढ़ने से स्वाभाविक रूप से पाठक के स्वर में लय उत्पन्न हो जाती है । वही लय रचना को संगीत से पूर्ण बना देती है ।

'मुख दीन मलीन धरे पट को कर वीन लिये मुरझाई रही ।'
में 'ईन' की पुनरावृत्ति मधुर है ।

---

१. रस तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. वही ।
३. व्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १५६ ।

'रति सी रमती रति मदिर मे पति केलि कलानि रिझावत है ।'
'लागी जगावन भावन को जुरि आवन गावन तानन है मन ।'

मे क्रमश र, त तथा 'आवन' के बारम्बार प्रयोग करने स श्रुति-माधुर्य उत्पन्न हो जाता है ।

सगीत-काव्य को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अनुकरण मूलक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसम यह काव्य नाद-तत्त्व से सम्पन्न हो गया है । जो शब्द अपना अर्थ स्वय ही प्रतिध्वनित करते हैं, वह काव्य का सामर्थ्य तथा सगीत दोनो ही प्रदान करते हैं और इसी प्रकार काव्य की प्रभावोत्पादक शक्ति म भी वृद्धि हो जाती है । अनुकरण मूलक शब्द कार्य व्यापारों, वातावरण के सजक अवयवों तथा आभूषणो के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

रात्रि भर जागते रह कर पति के साथ केलि क्रीडाएँ करते रहने के कारण 'मधु माधवी' के शरीर म शिथिलता आ गई है, परन्तु प्रेम म पगी है, अत मानो मदिरा के बहुत अधिक पान करने से छक गई हो, ऐसी आकृति हो गई है । इसके कारण नेत्रो म आलस्य, निद्रा, प्रेम प्रसन्नता, प्रेम प्राप्ति का सन्तोष, आत्म विश्वास मदिरा का उन्माद तथा सब भावो के साथ प्रिय को फिर देखने की अभिलाषा, एक पक्ति म आ गई हैं ।

सब अग थकी, मधु माघ छकी, छवि देषन को अखियाँ ललकैं ।"[1]

इस पक्ति म 'थकी' शब्द सुनते ही नायिका का शिथिल होकर गिरता हुआ शरीर दिखाई देता है । 'छकी' शब्द सुनकर प्रेमोन्माद के आधिक्य से झूमता हुआ मुख सम्मुख आता है और 'ललकैं' शब्द से आखो म मुख देखने की अभिलाषा, लालच, अत्यन्त तीव्र चाह प्रेम आदि भावो का परिचय मिलता है । ये शब्द कार्य व्यापारो के अनुकरण पर रखे गए हैं । इसी प्रकार हृदय के उठते हुए आवेगो के लिए 'चरजत तरजन'[2] शब्द का प्रयोग, झुंड मे आती हुई स्त्रियो के लिए 'झुंडन घूमत आवैं'[3] अपना अर्थ स्वय ध्वनित करते हैं । आभूषणो से युक्त स्त्रियो के झूलने पर 'झूलत झमक झकोर नमै',[4] कहने से झूलेके हिलने पर आभूषणो से निकली हुई ध्वनि स्वय सुनाई देने लगती है । लता, सुमनो से भरे होने के कारण अपने यौवन का प्रदर्शन 'लहकि लहकि'[5] कर करती है । 'लहकि लहकि' शब्दों से आत्म प्रदर्शन, आत्म-सौन्दर्य का आभास, आनदानुभूति को अपने मे सीमित न रख सकने का अर्थ, ध्वनित होता है ।

---

१ राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मदिर, जोधपुर ।
२ "अरी यह मन चरजत तरजत हो । आली प्यारी । राख्यों नाहि रहाय ।"
रस-तरग, मुनि कांति सागर-सग्रह, उदयपुर ।
३ "झुंडन घूमत आवैं । वाह वा । फागुन रग बढावें । वाह वा ।" वही ।
४ "झूलत झमक झकोर नमै अलि नगधर पिय मन भाई ।"
रस-तरग, जवानसिह जी, मुनि-कांति सगर सगह' ईदयपुर ।
५ "लहकि लहकि लता सुमन सुनार रही महकि सुगध अग रग उपजावें है ।"
गीत सग्रह, जवानसिह जी, पुरातत्व मदिर' जोधपुर ।

लाक्षणिक प्रयोगों में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में देखने में आता है। 'बिक जाना' अपने आप को समर्पण करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, अतः गोपी कृष्ण से कहती है—

'कान्हां तैं मेरी पीर न जानी।
बिन देखे तलफों दिन-रैना छबि को निरखि लुभानी।
'अरे निरदई निठुर नंद के अंखियन बरसत पानी।
ब्रजनिधि तेरी चितवनि मांही को तिय नाहिं बिकानी।'[1]

कृष्ण ने 'शीश पर अमित दुति चंद्रिका' धारण की है। 'उर पर लाल बनमाल, कटि पर पीत पट' कसा है। 'गजगति, से चलकर बांसुरी बजाता है, फिर मुस्कुराकर ऐसी चितवन से देखता है कि 'जब से नैंनों ने निहारा है, तब से सुधि हार दी'। दुखी होकर नायिका कहती है 'यह बिहारी छवि देखकर तो मेरा मन, न घर का रहा न घाट का।'

'नैंननि निहारी सुधि हारी या बिहारी छवि
तब तैं न मेरो मन घर को न घाट को।'[2]

'घर का न घाट का' मुहावरे का सुंदर उदाहरण इस उक्ति में मिलता है।

'हाथ मलना' या 'हाथ मलते रह जाना' का प्रयोग तभी होता हैं, जब अपनी अधिकार-प्राप्त वस्तु किसी और के द्वारा ले ली जाए। इसका बड़ा सुंदर प्रयोग यहाँ मिलता है। श्याम के साथ नृत्य करती हुई राधिका जरतारी सारी में झिलमिलाते हुए शरीर के साथ ऐसी शोभायमान हो रही है कि दामिनी उस दृश्य को देखकर 'हाथ मलती' रह जाती है। श्याम घन में गौर-वर्ण के साहचर्य से उत्पन्न सौन्दर्य की अधिकारिणी अभी तक दामिनी ही थी।

'रास में रसीली राधे स्याम संग नाचे
जरतारी सारी लसैं झीना झिलमिल गात
नाचत श्याम संग भावती, मलैं दामिनी हाथ।'[3]

---

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० १७३।
२. 'सीस पर सोहत अमित दुति चंद्रिका को।
बानिक रह्यो है बनि ललित ललाट को।
राजत उदार उर पर बनमाल लाल।
कटि पट कसत पिछौरा पीत पट को।
गज गति ऐवो वर बांसुरी बजैवो मृदु।
मुसुकि चितैवो चित चेटक उचाट को।
नैंननि निहारि सुधि हारी या बिहारी छवि
तब ते न मेरो मन घर को न घाट को।'
ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २६१।
३. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

'भाड भोकना' का अर्थ होता है, समय व्यर्थ गवाना अथवा जो कुछ उपलब्ध किया, उसका कोई उपयोग नहीं किया, वह सब भाड मे ही भोक दिया। कवि इसका प्रयोग अपने मन को शिक्षा देते समय करता है।

'माज लौं तो तेरी कही कही सब हेरी अब
लोक लाज भार लै के भार ही म भोकिये।'[1]

लक्षणा तथा व्यजना का मिश्रित रूप इस उद्धरण म प्राप्त होता है।

प्रिय के मिलन की 'लगन' अग्नि म भी अधिक है, अग्नि तो जल से बुझाई जा सकती है, परन्तु 'लगन' तो तभी बुझेगी, जब प्रिय आकर मिलेंगे। कृष्ण स स्पष्ट रूप से यह न कहकर कि 'आओ, मेरी लगन को तृप्त करो' अपनी इच्छा का सकेत मात्र किया गया है।

लगनि अगनि हू तै अधिक निस दिन जारे जीय।
प्रगट अगनि जल तै बुझै लगनि मिल जो पीय।[2]

व्यग पूर्ण वचन बोलकर गोपिकाऐं कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती हैं, अत. ऐसे ही कथनो मे उक्ति चातुर्य भी मिल जाता है। बार बार रूठना और मनाना राधा के वश के बाहर की बात है, अत कृष्ण के प्रति व्यगोक्ति करती है।

'घरी घरी को रूसना हा कैसे बन आवे ?
है कोउ तेरे बबा की चेरी नित उठ पइया लागि मनावे।'[3]

'घडी घडी मे रूठने से कैसे काम चलेगा ? पाँव पड कर मनाने का कठिन कार्य नित्य प्रति नहीं हो सकता। कोई तुम्हारे बाबा की दासी तो नहीं हैं, जो नित्य उठकर पाँव पडकर *मनाए ?' राधा की भोली व्यगोक्ति सुनकर ही कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं और* 'गिरधर नागर राधे राधे राधे' गाने लगते है।[4]

कृष्ण और राधा के प्रेम वर्णन मे उक्ति-चमत्कार भी प्राप्त हो जाता है। पपीहा ऐसा निष्ठावान पक्षी है कि केवल स्वाति-नक्षत्र से ही तृप्त होता है, और कोई भी जल कण उसे सन्तुष्ट नही कर सकता, अपने प्राणो की पपीहे से समता करते हुए राधा कृष्ण से कहती है कि 'हम तो भोले हैं, तुम चतुर प्रेमी हो, प्राणो को पपीहा जान कर हो प्यासा मार रहे हो।' अपनी दुर्बलता प्रकट हो जाने पर राधा के मन मे हल्का सा पश्चाताप है। यही इस पक्ति से व्यजित हो रहा है कि 'जानते हो न ! कि तुम्हारे समान कोई और नहीं है, *जो इन प्राणों की प्यास बुझा सके।*'

---

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २८७।
२. वही, पृ० २८४।
३ कृष्ण दास कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२७।
४ 'अब तो कठिन भई मेरी आली तो बिन लालन और न भावें।
कृष्ण दास प्रभु गिरधर नागर राधे राधे राधे गावें।
कृष्ण दास कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २२७।

'हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची विधना यह आनि ।
आनंद घन ह्वे प्यासन मारत प्रान पपीहा जानि ।'[1]

उक्ति-चातुर्य कवि की प्रतिभा का परिचायक है । कवि साधारण सी बात को इस प्रकार कहता है, जिसमें कुछ चमत्कारिता आ जाए । वियोग की अग्नि ने बड़ी कठिनाई उपस्थित कर दी है । 'मन में रखती हूं तो तन जलता है, और कहती हूं तो मुख जलता है ।'

'सजनी बान वियोग की कठिन बनी है आइ ।
मन में राखे तन जरे, कहूं तो मुख जरि जाइ ।'[2]

यह तो सभी जानते हैं कि 'गांठ पड़ने' से सुख नहीं मिलता, परन्तु 'गंठजोड़े की गांठ' में रंग चौगुना हो जाता है । विरोधाभास अलंकार के आधार पर 'गंठ जोड़े की गांठ' अर्थात् विवाह के प्रेम बन्धन की ओर इंगित किया है ।

'गांठ परें सुख होइ नहिं यह सब जानत कोइ ।
गंठि जोरे की गांठि में रंग चौगुनो होत ।'[3]

कहीं कहीं साधारण रूप से कही गई उक्तियों में प्रच्छन्न भाव-संकेत के द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि हो गई है ।

गोपी को सिर पर पानी रखे देख कर कृष्ण उससे अनुरोध करते हैं कि 'नेक' पानी पिला दो । गोपी पानी पिलाने लगती है । कृष्ण 'ओक' (अंजलि) लगाते हैं, परन्तु उंगलियों को ढीली कर लेते हैं, जिससे पानी नीचे गिर जाता है और वह नेत्रों से गोपी की ओर संकेत करते जाते हैं । ग्वालिनी देख कर समझ जाती है, मुस्कुरा कर कहती है 'मैं तुम्हारी प्यास को जान गई ।' और सिर पर गागर रख कर घर की ओर चली जाती है ।

'प्यासन मरत री नेक प्यावो मोहिं पानी ।
लेहु जल पीवो लाल जब इन ओक कीन्हो ।
ढीली अंगुरिन जल चुचावत नैन सैन मिलावत
निरखि ग्वारि मुसकाय के कहत प्यास जानी ।
फिरि गागरि भरि सिर पर धरि घर चाली
तब लाल गैल रोक्यो मग भई बाल अनाखानी ।'[4]

काव्य में रस के उत्कर्ष के कारण गुण की स्थिति मानी गई है ।[5]

---

१. आनन्द-घन कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२५ ।
२. आनंद-घन कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २८१ ।
३. वही, पृ० २८१ ।
४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० १६७ ।
५. काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०७ ।

प्राचीन आचार्यों के अनुसार माने गए दस गुणों (श्लेष, समाधि, औदार्य, अर्थव्यक्ति, कांति, सुकुमारता, समता, प्रसाद, माधुर्य तथा ओज) में से केवल तीन गुण प्रसाद, माधुर्य और ओज परवर्ती आचार्यों के द्वारा माने गए हैं। 'शेष सात गुणों में से कुछ तो दोषों के परिहार स्वरूप होने से गुण मान लिये गये थे और कुछ का अन्तर्भाव तीन गुणों में ही हो जाता है',[1] अतः यहाँ इन्हीं तीन गुणों का वर्णन किया जा रहा है। इस काव्य में तीनों ही गुण प्राप्त होते हैं। प्रसाद गुण के अनुसार काव्य सरलता से युक्त होना चाहिये। 'जहाँ सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों के द्वारा वाक्य रचना की जाती है, वहाँ 'प्रसाद' गुण होता है।'[2] इस दृष्टि से लक्षण-काव्य तथा उदाहरण काव्य दोनों में 'प्रसाद' गुण सर्वत्र पाया जाता है।

'राग कामोद कल्याण—गाढ़ चौताला
गला लाग मिलूगी पीय स्या मे तारे।
रस राज तोरे कारण मैं रही हू
सारी रैण भर जाग जाग।'[3]

अथवा

'मोरवा बोले है। देखो नद कुमार।
मोरवा बोले है। देखो सुदरता की मार।
मोरवा बोले है। देखो अद्भुत रूप रसाल।
मोरवा बोले है। देखो अति अद्भुत नटराज।'[4]

सामासिक पदावली से युक्त काव्य-रचना में ओज गुण की स्थिति होती है।[5] इस दृष्टि से इस काव्य में ओज गुण कम मात्रा में पाया जाता है। सामासिक पद गायन की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते। गेय बनाने के लिए सामासिक पदों को विच्छिन्न करना आवश्यक होता है, फिर भी कहीं कहीं ओज कुछ मात्रा में प्राप्त हो जाता है।

'सरस भा सर-सरित निस-कमल दिन रमल
अलि-अवलि-गान-धुनि सुनत छकि छकि रहे।
नाना-खग-वृ द-कुल करैं चट चरचहु
लर्ता क्ल-कुज वहनवनि तकि तकि रहे।'[6]

---

१. काव्यांग कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०८।
२. वही।
३. मानसिंह कृत ध्रुपद तथा ख्याल, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।
४. जवान सिंह कृत रस तरंग, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'ओज समासभूयस्त्वमेद् गद्यादि जीवितम्।'
अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीय भाग, रामलाल शर्मा शास्त्री, पृ० ८३।
६. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०४।

अथवा

'फुलवन सों झूकि रही लता महिं
ठाढे जहां कुंवर नटनागर ।
नव द्रुम पल्लव नव कुसुमावलि नवफल वृंदावन गुन आगर ।
नव निकुंज अलि-पुंज गुंज नव मंजु कंज प्रफुलित नव सागर ।
नवल लाल नव बाल माल गल वसन नए भूषनहिं उजागर ।'[1]

अधिकतर ओज का वर्णन वीर तथा भयानक रस के अन्तर्गत होता है । संगीत-काव्य में इन रसों का प्रयोग नगण्यप्राय: है, अतः स्वाभाविक है कि ओज इस काव्य में अल्प मात्रा में प्राप्त है ।

'क्रोध, ईर्ष्या आदि अवस्था के समान गम्भीरता का जहाँ अभाव हो और धैर्य का समावेश हो, वहाँ माधुर्य गुण होता है ।'[2] संगीत-काव्य में अधिकतर शृंगार रस का ही वर्णन हुआ है । क्रोध, ईर्ष्या आदि भावों का वर्णन प्रेम के अन्तर्गत ही हुआ है, अतः माधुर्य गुण प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है । 'जहाँ लम्बे समासों को त्याग कर छोटे छोटे समासों के व्यवहार से मधुर रचना की गई हो, वहाँ माधुर्य गुण माना जाता है ।'[3] इस दृष्टि से भी संगीत-काव्य में माधुर्य गुण सर्वत्र व्याप्त सा जान पड़ता है ।

'हे री मनमोहन ललित त्रिभंगी ।
नूपुर बजत गजत मुरली धुनि ललित किशोरी जी री संगी ।
रास रसिक रस अद्भुत राजत तान तरंगन रंगी ।
ब्रजनिधि राधा प्यारी चित पर मननि भरे हैं उमंगी ।'[4]

कृष्ण के सांवरे रूप से प्रभावित गोपी सखी से जाकर कहती है कि कृष्ण की रूप-माधुरी ने मुझ पर तो जादू कर दिया है ।

'ए री ग्वाल सोहिनी मोहिनी सांवरे ग्वार ।
लालन मोहे मोहिनी कीनो विविध सिंगार ।
मृगमद आज लिलाट है छल्यो अजब पिलवार ।
पंजन नैंन चलाय के जकरे जुल्फ जंजीर ।
यह मोहन दिलदार को मारत सैनन तीर ।
फाग भरी अनुराग सो निकसीं गृह के द्वार ।
पिचकारी मुरसैन की लिये अजब सुकुमार ।
सुंदर विमल सुढार तन ओढ़ैं झीनी चीर ।

---

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०४ ।
२. 'क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्य माधुर्य धैर्यगाहिता ।'
अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ८३ ।
३. काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०९ ।
४. वही, पृ० १७५ ।

मोहे नगधर यार तू अरी धरै नहीं धीर।"[१]

भाव तथा भाषा दोनों ही के द्वारा माधुर्य से ये गीत पूर्ण हैं।

संगीत काव्य के प्रकृति चित्रण में भी कला का प्रभाव है। रूप-चित्रण तथा वस्तु-चित्रण सभी चित्रात्मकता लिए हैं, परन्तु भाषा में चित्रोपमता उपस्थित करने की क्षमता अद्वितीय है। ऐसे शब्दों का प्रयोग, जिससे चित्र सा अंकित हो जाए, यह भाषा के सामर्थ्य को बढ़ा देता है। ऐसे शब्द अपने किसी पर्याय से बदले नहीं जा सकते।

'रूप उमग सन्यो रहे मोहन प्रीत घनाह

उपमा को भटकत फिरै लोभी नवल बनाइ।"[२]

यहाँ पर 'सन्या' शब्द साहित्यिक न होते हुए भी, एक वस्तु का सभी ओर से किसी द्रव्य से लिपटे रहने का अर्थ ध्वनित करता है। 'सना' हुआ शब्द में सजावट नहीं है। कवि 'डूबा हुआ' भी वह सकता था, परन्तु 'डूबा हुआ' एक विशेष प्रक्रिया के द्वारा भिगोए जाने का अर्थ देता है। कवि स्पष्ट कर देता है कि यह प्रयत्न वश प्रेम में भिगोया हुआ हृदय नहीं है, यह तो अनायास ही 'रूप की उमग' से 'सन' गया है। 'लोभी' शब्द भी लोभ का परिचायक है। लोभ में संतुलन नहीं होता। सब कुछ ले लेना चाहता है। अदम्य रूप राशि का लोभी यह 'नवल बना' बना हुआ है।

'अलुसावत अग मुदी अंखियां पति सोवत है लखि नींद भरौं।

कर सो भजराय बडे सुर माय जगावन कौ यह भाव धरो।"[३]

में 'भजराय' शब्द, हाथ से पकड़ कर किसी व्यक्ति को भिंभोड़ कर उठाने का अर्थ देता है। इसको पढ़कर सामने एक अलसाये हुए अंगों वाली, मुंदतो आंखों से पति को सोये हुए देखकर, विचित्र भावों के साथ गा गाकर हाथ से पति के शरीर को भिंभोड़ कर जगाने का प्रयास करती हुई नायिका आकर खड़ी हो जाती है।

कवि के समर्थ शब्दों में पीत वस्त्र धारण किए, नटवर वेष से मुस्कुरा कर नैनों को नचाते हुए, माधुरी ध्वनि की वेणु बजाते हुए कृष्ण की सुन्दर मूर्ति नेत्रों के सम्मुख खिच सी जाती है—

'पट पीट कसे नट वेष लसे मुसकाय के नैन नचावन की।

गर गुंजन भाव विसाल दिनें कर में वर कंज फिरावन की।

मधुरी धुनि बेन बजावनि गावनि मानि परी तरसावन की।

निसि द्योस सदा मन माहि बसो छवि वा बन ते बनि आवन की।"[४]

शरद की रैन में मधुर वंसी की ध्वनि छाई थी। रसीली तान को सुनकर ब्रजबाला आकुल हो गई। वेदना इतनी बढ़ी कि गुणी, वैद, सभी हार गए, परन्तु राधा की व्यथा

---

१. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

२. गीत-संग्रह, जवान सिंह जी, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

३. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, । जोधपुर।

४. ब्रजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २९०

दूर नहीं हुई। अंत में चतुर सखियों के द्वारा कृष्ण बुलाए गए। रसिक बन कर कृष्ण सँजीवनी लाए, मुरली में 'कुछ' गाया और तभी—

'उठी तब चौंकि के प्यारी, लखै दृग खोली बनवारी।
गई बेदनि जु ही सारी, सखी मिलि लेत बलिहारी।
पिया ने अंग सिगारे, झमकि मंडलि पै पग धारे।
गए नूपुर के झनकारे, बजे बांजन तुम न्यारे।'[1]

इस वर्णन से राधा की वेदना, कृष्ण का उपचार, सभी चित्र के समान सम्मुख आ जाते हैं।

कहीं कहीं शब्दों का ऐसा सुन्दर प्रयोग है कि केवल एक शब्द से ही सम्पूर्ण चित्र खिंच जाता है।

'बिज्जुलता तिय दमकि के मिली स्याम घन आई हो।
नगवर स्याम तमाल के मनु लपटी है बेल सुहाई हो।'[2]

घन के समान श्याम से, बिजली के समान द्युतिमती नायिका के मिलन में तथा पुरुष के समान कठोर तमाल वृक्ष से नारी के समान कोमल बेल के लिपट जाने में एक ओर तो रूप-सादृश्य का सुन्दर चित्रण है तथा दूसरी ओर नायिका की प्रिय से मिलने की आतुरता 'दमकि कै' मिलने में विदित होती है। केवल बिजली ही 'दमकि कर' मिल सकती है, जिसका श्लेष के द्वारा अर्थ लेने पर 'चमक कर' और 'तेज़ी से' दोनों अर्थ लगाए जा सकते है। दोनों ही से नायिका की मिलने की व्याकुलता और दौड़कर प्रिय से मिलने का दृश्य उपस्थित होता है। इतनी अधिक प्रतीक्षा और विह्वलता के पश्चात् जो नायिका प्रिय से मिलेगी, वह केवल दूर से ही नहीं मिलेगी, बरन् बेल के समान लिपट जाएगी, जिससे शरीर और मन किसी में भी परस्पर दूरी न रह जाए। कलात्मकता इन पंक्तियों में पूर्ण पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

भाषा को अलंकारों से सुसज्जित करना शृंगार युगीन कवियों की एक प्रमुख विशेषता थी। संगीत-काव्यकार भी इसके प्रभाव से अपने को पृथक न रख सके। ढूंढने पर तो सभी प्रकार के शब्द तथा अर्थ अलंकार प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु इस काव्य में अलंकारों के प्रयोग में भी एक सीमित दृष्टिकोण रहा है। कवियों ने दो प्रकार से आलंकारिक वर्णन किया है। एक तो उन अलंकारों को चुना है, जो काव्य को संगीतमय बनाते हैं अर्थात् अनुप्रास आदि दूसरे, जो राग तथा रागनियों के स्वरूप को किसी भी प्रकार से उत्कर्ष देते हैं, ऐसे अलंकारों का विशेष प्रयोग किया गया है। फलस्वरूप, काव्य में कृत्रिमता तथा क्लिष्टता लाने वाले अलंकार अत्यल्प मात्रा में मिलते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि का अधिकतर प्रयोग है। रूपक तथा श्लेष, कहीं कहीं प्राप्त हो जाते हैं।

---

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० ३०६
२. रस-तरंग, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

केवल पाडित्य-प्रदर्शन के लिए इस काव्य की रचना नही हुई, इसीलिए काव्य कहीं भी अलकारो से बोझिल जान नही पडता।

सबसे अधिक प्रिय अलकार अनुप्रास है। छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से काव्य मे लालित्य तो आया ही है, दृश्य को सजीव भी बनाया गया है।

'गौर तरुण मूरत मदन कठ मुक्त मणि हार।'[1]

\+ + +

'कुसुमनि की माला गरैं धरैं मुकट मन सीस।'

छेकानुप्रास तो स्वाभाविक रूप से इनके वाक्यों म आ जाता है। वृत्यानुप्रास के अनेक उदाहरण प्राप्त है।

'अग अग अभग तरगन'

\+ + +

'कचन त कमनीय कलेवर काम कलानि मे कोविद मानो।'

\+ + +

अथवा

'चोर लिए चित ही चतुराचित चोरिनी कचन की भनकार सुनावैं' म वृत्यानुप्रास के अच्छे उदाहरण हैं।

श्रुत्यानुप्रास का आनन्द इन कवियो ने पूर्णतया लिया है। सगीतात्मक ध्वनियो का परिचायक यही अनुप्रास है, जिसके विशेषज्ञ सगीतकार ही हो सकते थे।

'सुन्दर सरस तन जोबन बनाउ बनी पूजति विरचि
की सजति मोद मन की।'

'निपुरे छबीले वेम लगत सुदेस भेस रातै
रात नैन रस करुना मे ठई है।'

\+ + +

'सुन्दर स्याम सलोने लोने करि राखे नैननि के तारे।'

\+ + +

अथवा

'मृदु मुसकान जात मन म सिहास, उर आनंद
न मात मीठी बात बतरात है।'

आदि अनेक उदाहरण दृष्टिगत होत हैं।

उपमा भी इन कवियो का प्रिय अलकार रहा है। 'रसाल' दुगचल सो, 'पीत दुकूलन की दुत दामिनि सी', 'बिजली सो सरीर', कह कर प्रकृति के उपमानो से शरीर के अवयवो की समता दी है।

---

१. राग माला, कल्याण मिश्र, पुरातत्व मदिर, जोधपुर।

२. सगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मदिर, जोधपुर।

रूपक का प्रयोग भी सौन्दर्य-वर्णन में अधिकतर मिलता है। जब वनिता पावस बनकर आती है, तब 'नीलाम्वर घन', 'अंगदुति दामिनी' 'मांग के मोती वग पांति', 'अलकावलि धुखाई', बन जाते हैं, 'नखमणि और मेहंदी इंद्रधनुष की छवि पाते हैं, नूपुर दादुर के समान बोलते हैं, चितवनि वर्षा की झड़ी लगा देती है।' इस प्रकार विरह का ताप मिटाया जाता है।

'मलार
वनिता पावस ऋतु वनि आई।
नीलांबर घन दामिनि अंगदुति चमकनि सरस सुहाई।
मुक्त मांग वग-पांति मनोहर अलकावलि धुखाई।
नखमनि मंहदी इंद्रधनुप मनो सोहत अति छवि पाई।
नूपुर दादुर बोलनि सोहै चितवनि झर वरसाई।
मेरी विरह ताप 'व्रजनिधि' सव मिलि कीनी सियराई।"[1]

रूपक के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

नैना अंचल रूपी पट में नहीं समाते, कजरा रूपी सांकर से बांध कर रखे, फिर भी अत्यंत चंचल हैं, भाग जाते हैं।

'नैना अंचल-पट न समाई।
कजरा सांकर से बांधे तउ अति चंचल भजि जाई।'[2]

उपमा और रूपक दोनों ही के आधार पर कवि कृष्ण रूपी पंकज के जन्म लेने पर व्रज वालाओं का भ्रमरी रूप वर्णन करता है।

'घन सी नौवत घुरत है, विज्जुलता सी वाल
इंद्रधनुप पट लसत हैं मनु वूंदनि वेंदी भाल
घन ज्यों वरपत नंद जू दान रंग झर मेह।
दादुर वंदा रटत है सोभा वढ़ी सुगेह।
वगदल से मुक्ता लसें भूपन रतन अपार
दान रंग सरिता चली सुवरन रज तन पार।
दधि कादो सरवर भरे वालहि हंस कलोल।
नगधर पंकज जन्म सुनि व्रज अलि वढ़ी अलोल।'[3]

यह स्पष्ट है कि संगीत-काव्य में अलंकारों के प्रयोग का उद्देश्य प्रदर्शन न होकर काव्य को मधुर तथा ललित बनाना रहा है, फिर भी अपवाद स्वरूप एक दो पद ऐसे प्राप्त होते हैं, जिनमें यमक तथा श्लेप के सहारे चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यमक का एक चमत्कार-पूर्ण प्रयोग यहाँ उद्धृत है।

---

१. व्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०७।

२. व्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, प्र०।

३. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

'राग कानरो – ताल फिरती
हरित कदंब भूमि हरियारी हरी भ्रमावन हरयो समान ।
हरी सवारी साज चल्यो है हरी गाज सब हिन मन राज ।
हरि तनया प्रफुलित हरि गुंजत हरि सोभा सुप दाम ।
हरित लतनि से हरित हिंडोरा हरि संग झूलत हरि मुप वाम ।
हरी कुंज गह्वर हरियारी हरि साभा वरनी नहिं जात
हरे रतन तन वसन हरे रंग हरी पहुप माला सरसात ।
हरी हरी पर सोभित अद‍्भुत हरि बरसत हरि लायो ।
हरी राग गावत मुरली म मधुरे मन हरि भायो ।
हरि वरनी हरि गवनी री तु हरि लावनि मदमातो ।
हरि कटि लचकन संग झूलन में हरि वेंनी उछरानो ।
हरिष हरिष गावत मधुरे सुर भई हरी रंग रानी ।
नगधर हरी हरष हरियारे हरा हरी सब हिन मन नाती ।'[1]

इस गीत म हरी शब्द को लेकर यमक का चामत्कारिक प्रयोग है ।

यहाँ सभी प्राप्त अलंकारों का प्रयोग दिखाना सम्भव नहीं है अन्य दो एक उदाहरण कवियों के कौशल को चरितार्थ करने के लिए पर्याप्त होंगे ।

जहाँ प्रसिद्ध उपमान का वर्णनीय उपमेय द्वारा निरादर किया जाय, वहाँ प्रतीपालंकार होता है ।[2] राग 'मालकोस की आर्या गौरी का वर्णन करते हुए कवि नायिका के मुख से चन्द्रमा का लज्जित होना बताता है यही प्रतीपालंकार है ।

'पवन वसन मुप देख चंद लाजों विधि रचि पचि
कै बनाइ मुप दानि है ।'[3]

अथवा राग हिंडोल के 'देह की दुति' को देखकर 'कपोल का गोल' लज्जित हो कर रह गया ।

लोनी लसै दुति देह की यौ लपि गात कपोल
को लाजि रह्यो है ।'[4]

जहाँ कारण का प्रतिबंध करने वाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाए वहाँ तृतीय विभावना अलंकार होता है ।[5] राधिका सखी से कहती है कि नार नार य कारण नेत्रों को मना करती रही फिर भी कृष्ण के पास बरजोरी करके चले गए ।

---

१ रस तरंग, अजीतसिंह, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर ।
२ काव्यांग कौमुदी, तृतीय कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६६ ।
३ सभाभूषण, गंगाराम कृत, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
४ संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ पुरातत्व मंदिर जोधपुर ।
५ काव्यांग-कौमुदी, तृतीय कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० १५२ ।

'आज अचानक भेंट भई री ।
हौं सकुचाइ रही अनबोली उनि हंसि नैननि
सैनि दई री ।
लोक लाज वैरिनि रही वरजति ये अंखियां वरजोर
गई री ।'[१]

कारण का प्रतिबन्ध होते हुए भी कार्य हो जाता है, यही विभावना है ।

इसी प्रकार यद्यपि संगीत-काव्य में लगभग सभी अलंकार प्राप्त हो जाते हैं, फिर भी अधिकतर अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक तथा श्लेष का ही अधिकांशतया प्रयोग हुआ है ।

छंद

छंद वह काव्यात्मक रचना है, जो किसी विशेष नियमानुसार मात्राओं में बद्ध हो ।[२] मात्राओं से रहित रचना भी अपना एक अलग नियम बनाने के कारण छन्द युक्त रचना कहलाती है । सभी प्रकार के छंदों में विशिष्ट यति तथा गति के कारण गीतात्मकता आ जाती है, अतः छंद मूलतः गेय होता है । 'किन्हीं छोटी बड़ी ध्वनियों के व्यवस्थित सामंजस्य का ही नाम छंद है ।'[३] 'सामंजस्य की प्राप्ति के लिए छन्द के भिन्न भिन्न ध्वनि समूह-खंडों में ध्वनियों का तोल माप या वज़न बराबर होना चाहिए ।'[४] यही ध्वनि संतुलन का नियम संगीत में भी आवश्यक होता है । छंद तथा संगीत के निर्माण-तत्त्व समान होने के कारण छंद तथा संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध स्वयं ही सिद्ध हो जाता है । संगीत की दृष्टि से छंदों में से कुछ अधिक, कुछ कम उपयुक्त होते हैं । संगीत-काव्यकारों ने उन्हीं छंदों को चुना है, जो बहुत अधिक संगीतात्मक थे । पिंगल शास्त्र का विषय होने के कारण छंद, शास्त्र की सामग्री बने रहे, संगीत में उनका कोई स्थान नहीं बन पाया । कुछ रचनाएँ इस प्रकार की प्राप्त होती हैं, जो छंद शास्त्र में वर्णित, छंदों से अधिक गेय हैं, जो मात्राओं में बँधी हैं, परन्तु संगीत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहने के कारण केवल संगीत की सामग्री समझी जाती रही हैं । संगीत-काव्यकारों ने इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग करके दिखा दिया है कि ये गेय छंद भी साहित्य के अन्तर्गत स्थान बनाने के पूरे अधिकारी हैं । साहित्यिक मात्राओं तथा सांगीतिक मात्राओं में कोई अन्तर नहीं है । साहित्य में लघु, दीर्घ और प्लुत के आधार पर संगीत में क्रमशः एक, दो, और तीन मात्राओं को गिना जाता है । संगीत में एक मात्रा, एक का अर्द्धांश, चतुर्थांश, अष्टांश, तथा एक मात्रा को विस्तार करके एकाधिक मात्राओं का

---

१. ब्रजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरी नारायण शर्मा, पृ० २२३ ।
२. अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है ।"
हिन्दी साहित्य कोष, डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित, पृ० २९० ।
३. हिन्दी छंद-प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० ४ ।
४. वही पृ० ५ ।